पूर्वाभास

इस पुस्तक का रूपरेखा एक दीर्घ निबन्ध की योजना से अपने आप नायास ही विकसित होगई।। यह रूप तथा कलेवर पूर्ण हो जाने पर सकी गति किसी नवीन पथ की ओर चल पड़ने वाले एकाकी पथिक की ो हो गई। इसके सभी समकक्ष बन्धु अँग्रेज़ी बाना धारण किए, बाजार ; गर्व बने, इस क्षेत्र का एकाधिकार सा प्राप्त किए हुए सुशोभित थे। उनके भिभावकों, संरक्षकों तथा प्रशंसकों की कमी न थी। एक बार तो इसे वयं अपना देशी परिधान कुछ विचित्र तथा असंगत सा प्रतीत हुआ ीड़ की आँखों का काँटा बन जाने की कल्पना-मात्र से क्षोभ तथा संकोच ा अनुभव हुआ, साथ ही कुछ ही हल्की सी क्षणिक घबराहट भी। परन्तु शीघ्र ो इसने देखा—सागर के उस पार सुदूरवर्ती पाश्चात्य प्रदेशों—स्वयं इस वदेशी भाषा की मातृ-भूमि में भी—यह प्रथा सर्वत्र प्रचलित है। अब स्तुनः यह कोई प्रतिक्रियावादी प्रयास नहीं, प्रत्युत एक प्रगतिवादी डग है। ब भारत-भूमि ही क्यों इसका अपवाद बने, और प्रगति की लहर से ञ्चित रह जाय ? यही सोच कर साहस का सञ्चार हुआ और राही दृढ़तापूर्वक क्ष्य की ओर अग्रसर हो सका। कालान्तर में इस पथ पर पथिकों की संख्या अवश्य बढ़ेगी।

अँग्रेज़ी-शिक्षण की विविध समस्याओं का विवेचन यहाँ सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों दृष्टियों से किया गया है। भारतीय शिक्षा के रंगमञ्च पर अँग्रेज़ी के नाटकीय प्रवेश, उत्थान, उत्कर्ष, पतन तथा अपकर्ष की अन्तर्कथा की चर्चा किए बिना यह चित्र अधूरा रह जाता। अतः संक्षेप में यह संकेत करना ड़ा कि किस प्रकार अँग्रेज़ी विदेशी व्यापारियों की अनबूझ बोली होकर भी ाजभाषा बनी, उसने राष्ट्र-भाषा के सुख-स्वप्न देखे, मातृभाषा को अपदस्थ ल्या, परन्तु अन्त में विदेशी भाषा के योग्य गौण पद पर स्थिर हो रही है।

पुस्तक के प्रथम चार अध्याय इन्हीं प्रारम्भिक विषयों तथा उनसे उत्पन्न होने वाली समस्याओं से सम्बन्धित हैं। तदुपरान्त चार अध्याय अँग्रेजी-शिक्षण की सामान्य विधियों का परिचय देते हैं। तत्पश्चात् चार अध्यायों में मौखिक भाषण तथा पठन-क्रिया के शिक्षण पर प्रकाश डाला गया है। तब पुस्तकों के पठन-पाठन को चार पृथक अध्यायों में लिया गया है। इसके बाद के चार अध्यायों में लेखन तथा व्याकरण-शिक्षण की समस्याओं का विवेचन है। अन्तिम चार अध्यायों में इस क्षेत्र के कुछ नवीनतम विकासों का दिग्दर्शन कराने के उपरान्त इस बहुमुखी समस्यापूर्ण विषय का हस्तामलक आभास दिया गया है। विभिन्न पक्ष की समस्याओं सम्बन्धी रचनात्मक सुझावों का उल्लेख यथास्थान किया गया है। वस्तु-विन्यास का यही क्रम पाठकों को सुविधाजनक सिद्ध होगा—ऐसा दृढ़ विश्वास है।

अँग्रेजी का पठन-पाठन, शिक्षा-संस्थाओं में उसका शिक्षण तथा अध्ययन, भारत की वर्त्तमान शिक्षा-समस्याओं का एक महत्वपूर्ण अङ्ग है। इसके सम्बन्ध में देश-व्यापी जिज्ञासा तथा चेतना है, परन्तु सर्वपक्षीय गहन विवेचन का अभाव है। हिन्दी भाषा में तो अभी तक इस प्रकार का एक भी ग्रन्थ प्राप्य नहीं, जो अँग्रेज़ी-शिक्षण की समस्याओं का यथार्थ चित्रण तथा मूल्यांकन करके तद्विषयक धारणाओं के परिष्कार तथा संशोधन में सहायक हो सके। अँग्रेजी में अवश्य इस प्रकार के कुछ ग्रन्थ हैं, परन्तु वे अधिकांशतः स्वतन्त्रता के पूर्व ही रचित हुए थे। अतः आज की परिवर्तित परिस्थिति में उनमें सन्निहित विचार तथा दृष्टिकोण देशकाल से अननुरूप हो चुके हैं। यह पुस्तक सम्भवतः इस अभाव की पूर्ति करेगी और अँग्रेज़ी-शिक्षण के विषय में जिज्ञासु सज्जनों, शिक्षाधिकारियों तथा शिक्षा-कार्यकर्त्ताओं को कुछ मूल्यवान विचारसूत्र प्रदान करके रचनात्मक, मौलिक, सन्तुलित चिन्तन के लिए प्रेरित करेगी। इस पुस्तक का वास्तविक उद्देश्य यही है। इसीलिए अध्यायों के अन्त में कुछ विचार-प्रेरक प्रश्न दे दिए गए हैं और तुलनात्मक अध्ययनार्थ ग्रन्थ-सूची भी। पुस्तक के अन्त में दी हुई पारिभाषिक शब्दावली भी तुलनात्मक अध्ययन व चिन्तन में अत्यन्त उपयोगी प्रतीत हुई।

एक बात अवश्य है कि यद्यपि पुस्तक की रचना में आद्योपरान्त अँग्रेज़ी-

शिक्षण की ही समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित रक्खा गया है, तथापि अन्य भाषाओं के शिक्षण की कुछ सामान्य समस्याओं पर भी यह अवश्य प्रकाश डाल सकेगी। परन्तु यह इसका प्राथमिक प्रयोजन नहीं है। प्रयास सफल रहा अथवा नहीं, पाठक-वृन्द ही निर्णय करें।

लखनऊ,
गणतन्त्र दिवस,
जनवरी २६, १९५८ ई०।

रामेश्वरप्रसाद गुप्त
उमापति मिश्र

विषय-सूची

प्रथम खण्ड—प्रारम्भिक तत्त्व-चिन्तन

द्वितीय खण्ड-अँग्रेज़ी-शिक्षण की सामान्य विधियाँ

अध्याय

तृतीय खण्ड-भाषण तथा पठन की शिक्षा

अध्याय

चतुर्थ खण्ड—पुस्तकों का पठन-पाठन

पञ्चम खण्ड—लेखन तथा व्याकरण

षष्ठम खण्ड—नवीनतम विकास-सूत्र

प्रथम खण्ड

प्रारम्भिक तत्व-चिन्तन

- भारतवर्ष में अँग्रेज़ी भाषा--भूत, वर्त्तमान तथा भविष्य।
- विदेशी भाषा तथा मातृ-भाषा।
- अँग्रेज़ी-शिक्षण के उद्देश्य।
- विदेशी भाषा की शिक्षण-विधि का निरूपण।

अध्याय १

भारतवर्ष में अँग्रेज़ी भाषा

भूत, वर्तमान तथा भविष्य

भारत में अँग्रेज़ी का विगत काल—

भारत में अँग्रेज़ों तथा अँग्रेज़ी का आगमन प्रायः समकालीन है। ज्यों-ज्यों देश की शासन-सत्ता का सूत्र अँग्रेज़ों के हाथ में पहुँचता गया, त्यों त्यों अँग्रेज़ी का प्रचार भी बढ़ता गया और सन् १८३५ के आस-पास वह समय आ पहुँचा जब यह निर्णय सरकार की ओर से घोषित हो गया कि अँग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोगों को ही सरकारी पद और नौकरियाँ मिल सकेंगी। सरकार जो-कुछ रुपया खर्च करेगी वह अँग्रेज़ी-शिक्षा पर ही, क्योंकि भारतीय भाषाओं के वाङ्मय में आधुनिक भौतिक, जीवात्मक तथा सामाजिक विज्ञानों के नाम की एक रेखा भी उपलब्ध नहीं। देश का कानून तथा संविधान, कचहरी, अदालत की कार्यवाही, ऊँचे स्तर का देशी तथा विदेशी व्यापार—सभी अँग्रेज़ी के माध्यम से ही सम्पन्न और कार्यान्वित होता था। महत्वाकाँक्षा के सभी मार्गों में अँग्रेज़ी फाटक पड़ता था और इसे पार किए बिना गुज़ारा नहीं था। अँग्रेज़ी सभी की मनोकामनाओं की कामधेनु तथा मनोरथों का कल्पवृक्ष सिद्ध होने लगी।

कोई आश्चर्य नहीं जो शिक्षा के क्षेत्र में अँग्रेज़ी को इतनी प्रधानता दी गई कि उसे सभी अन्य विषयों के अध्ययन का माध्यम बना दिया गया। सबसे अधिक समय अँग्रेज़ी के अध्ययन को ही दिया गया और तिस पर भी माध्यम होने का सम्मान। फलतः अँग्रेज़ी मातृ-भाषाओं के भी आगे बढ़ गई और कालान्तर में भारत की राष्ट्रभाषा होने का दम भरने लगी। ऐसी स्थिति में अँग्रेज़ी का मानस्तर वस्तुत बहुत ऊँचा रहा होगा

इसमें सन्देह नहीं। परन्तु उस ऊँचे स्तर के पीछे जो देश की नवयुवक-मानसिक शक्ति का अपव्यय हुआ है वह भी अपरिमेय है।

अँग्रेज़ी के इस प्रकार दृढ़ता-पूर्वक स्थापित होने से देश को हानि भी हुई और लाभ भी। हानि तो यह कि इस विदेशी माध्यम को अधिकृत करते-करते मौलिक चिंतन तथा रचना-शक्ति के लिए न तो साहस ही शेष रह जाता था और न आवश्यक पृष्ठ-भूमि ही तैयार मिलती थी। तभी, आधारभूत अन्वेषण-कार्य की नितान्त कमी बनी रही। देशी भाषाएँ भी पनप न सकीं। लाभ यह हुआ कि जन-जाग्रति की जो लहर और जनतन्त्रवाद की जो चेतना भारतवर्ष में इस काल में फैली वह अधिकांशतः अँग्रेज़ी के ही कारण, इसमें अतिशयोक्ति नहीं है। यह चेतना कुछ तो अँग्रेज़ी के पठन-पाठन से ही उत्पन्न हुई है और बहुत-कुछ उसका विरोध करते-करते। जितना इस काल में भारत देश एक सूत्र में आबद्ध हुआ उतना अन्य कालों में नहीं हुआ। साम्प्रदायिक कलह उत्तर-कालीन अपवाद-मात्र है।

धीरे-धीरे राष्ट्रीयता की लहर फैली और अपने अँग्रेज़ी पढ़े नेता लोगों ने ही अँग्रेज़ी का विरोध आरम्भ कर दिया। अँग्रेज़ी-शिक्षा-पद्धति के विद्यालयों को छोड़ कर नए भारतीय संस्कृति के विद्यापीठ तथा गुरुकुल स्थापित होने लगे। अँग्रेज़ी-शासन कुछ ढीला पड़ा तथा प्रान्तों में देशी मन्त्रिमण्डल बनने का समय आ गया। अब अँग्रेज़ी की वह हठ-धर्मी न चल सकी, यद्यपि सरकारी कार्यालयों में वह पूर्ववत् ही आसीन रही।

स्कूलों में माध्यम के रूप में अँग्रेज़ी वैकल्पिक घोषित हो गई; किन्तु द्वितीय भाषा के रूप में अनिवार्य बनी ही रही। बिना अँग्रेज़ी पढ़े और पास किए हाई स्कूल या इससे आगे की कोई उपाधि या प्रमाण-पत्र नहीं प्राप्त हो सकता था।

अँग्रेज़ी की वर्त्तमान स्थिति—

धीरे-धीरे देश को पूर्ण स्वतन्त्रता भी प्राप्त होगई; किन्तु जो अँग्रेज़ी अँग्रेज़ों के साथ आई थी, वह अँग्रेज़ों के साथ वापस नहीं गई। उनके

चले जाने पर हमने अनुभव किया कि वह अब हमारे सांस्कृतिक जीवन के ताने-बाने में बुन चुकी है और उसे यकायक उधेड़ने से हमारा सामाजिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक जीवन ही सङ्कट-ग्रस्त हो जाएगा। हाँ, एक परिवर्तन मुख्य हुआ। अब अँग्रेज़ी छठवीं कक्षा से और कुछ उदाहरणों में नवीं कक्षा से आरम्भ होने लगी। कुछ विषय-समूह लेने पर हाईस्कूल में उसे छोड़ा भी जा सकता था; परन्तु उस व्यवस्था को पुनः स्थगित कर दिया गया। इसका विशेष कारण है। आगे बढ़ने के लिए पुनः अँग्रेज़ी पढ़ना अनिवार्य हो जाता है—चाहे कला पढ़िए, चाहे विज्ञान, चाहे वाणिज्य, चाहे कानून, डाक्टरी, इञ्जीनियरी या चाहे अन्य कोई वैशेषिक या सामान्य पाठ्यक्रम, सब में अँग्रेज़ी की आवश्यकता अन्ततोगत्वा पड़ती ही है। यह वस्तुतः हमारी शिक्षा-व्यवस्था की बड़ी विषम परिस्थिति है। जितनी भारतीय देशी संस्थाएँ खुली थीं, धीरे-धीरे सभी को सरकारी मान्यता तथा सहायता दी गई; लेकिन वे सब विश्वविद्यालय तथा बोर्ड की परीक्षाओं के लिए परीक्षार्थी तैयार करने लगीं या उन्हीं के समतुल्य परीक्षाएँ लेने लगीं। अब भी सरकारी तथा गैर-सरकारी पदों के लिए अँग्रेज़ी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सभी उच्च पदों की सरकारी परीक्षाओं में अँग्रेज़ी अनिवार्य है। तब स्कूलों में वैकल्पिक होने से भी क्या अन्तर पड़ता है ?

भारतीय संविधान में हिन्दी राष्ट्र-भाषा स्वीकृत हुई; किन्तु १५-२० वर्षों तक अँग्रेज़ी भी समकक्ष माध्यम मानी गई। इस अवधि के प्रायः १० वर्ष पूरे हो चले हैं, किन्तु इस बीच में परिस्थिति में कोई विशेष अन्तर नहीं आया। अँग्रेज़ी के अधिक दिनों तक चलते रहने की सम्भावना है। अँग्रेज़ी को अपदस्थ करने में "धीरे चलो" नीति को अपनाया जा रहा है। क्या राधाकृष्णनन् विश्वविद्यालय-शिक्षा-आयोग, क्या माध्यमिक शिक्षा-पुनर्व्यवस्था-सम्बन्धी मुदालियर-आयोग तथा क्या भाषा-सम्बन्धी विशेष परामर्शदात्री-समितियाँ सभी एक मत से अँग्रेज़ी को यथावत् चलाते रहने के पक्ष में अपना निर्णय दे चुके हैं। इस वर्तमान स्थिति के आधार पर भविष्य पर भी दृष्टिपात किया जा सकता है।

भारत में अँग्रेज़ी का भविष्य—

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि विदेशी शासन-काल में अँग्रेज़ी को जो अनुचित महत्व प्राप्त था, उसमें उत्तरोत्तर कमी आती जा रही है और दिनों-दिन कमी होगी। परन्तु इधर कुछ समय से इस अनुचित महत्व की मात्रा इतनी कम रह गई है कि स्थिति में प्रायः स्थिरता आ गई प्रतीत होने लगी है। केवल शिक्षा के उच्चतम स्तर पर माध्यम के रूप में, सरकारी पदों की प्रतियोगिता परीक्षाओं के अनिवार्य तथा अधिक निर्धारित अङ्कों वाले विषय के रूप में, केन्द्रीय सरकार से विनिमय तथा जनसेवा आयोग के इन्टर-व्यू में तथा सामान्य परीक्षाओं में अनिवार्य विषय के रूप आदि में अब भी इसका प्रयोग होता है—यह अनुचित है और धीरे-धीरे यही समाप्त होगा अन्यथा अँग्रेज़ी अपनी समुचित सीमाओं के भीतर संकुचित हो चुकी है और इसी रूप में यह भारत में बहुत दिनों तक चलती रहेगी। इसे पूर्णतया हटाने का कोई उपाय नहीं और न इस प्रकार हटाने से कोई लाभ ही। अँग्रेज़ी का विगत-काल अतिशय प्रकाशपूर्ण था। वर्त्तमान काल में उसकी वह चकाचौंध करने वाली ज्योति मन्द अवश्य हुई है; परन्तु एकदम क्षीण नहीं हो गई। उसकी प्रखरता का लोप हो गया है न कि उसकी आभा का। भविष्य में भी उसकी यही निर्मल प्रभारश्मि ज्योतित रहेगी, वह निश्चित है।

शिक्षक तथा स्तर एवं शिक्षण-विधि पर प्रभाव—

अँग्रेज़ी की इस निरन्तर परिवर्तनशील स्थिति का सबसे अधिक प्रभाव जिस व्यक्ति पर पड़ता है वह है अँग्रेज़ी का शिक्षक। विदेशी शासकों के समय में अँग्रेज़ी-शिक्षक का पद गौरवपूर्ण तथा गर्व का साधन था। परन्तु उसके साथ ही साधारण विद्यार्थी की ओर से भय तथा घृणा के मिश्रित भाव उसके प्रति बने रहते थे। भय तो इसलिये कि वह इस शिक्षक को अन्य शिक्षकों की अपेक्षाकृत अधिक विद्वान, अधिक क्रूर तथा अपने से अधिकतम दूर का अनुभव करता था। उसके द्वारा दिया

हुआ कार्य अधिक क्लिष्ट तथा कष्ट-साध्य होता था और उसकी बातें तो अधिकाँश समझ में ही नहीं आती थीं और घृणा इसलिये कि जनसाधारण के साथ ही विद्यार्थी तथा अन्य शिक्षक-वृन्द भी उसे अराष्ट्रीय प्रतिक्रियावादी व्यक्ति समझते थे। विशेषकर यदि अँग्रेज़ी-शिक्षक अपने विषय के प्रति अधिक उत्साही तथा कर्त्तव्यनिष्ठ हुआ तो सभी लोग प्रकट या अप्रकट रूप से उसकी इस मनोवृत्ति को राष्ट्रविरोधी समझते थे। एक ओर तो उसकी विद्वत्ता तथा योग्यता की धाक मान कर सराहना में सिर हिलाने लगते थे और दूसरी ओर देश-द्रोही समझ कर उसकी ओर मुँह बिचकाते थे।

इसी विषम परिस्थिति का एक और भी अधिक मार्मिक पक्ष था, ज्ञानस्तर तथा परीक्षा-परिणाम सम्बन्धी। यदि उच्च-स्तर की मर्यादा रख कर कड़ी परीक्षा ली गई तो असफल विद्यार्थियों की संख्या अधिक बढ़ जाती है। अन्य विषयों में सफल विद्यार्थी सैकड़ों तथा हजारों की संख्या में केवल अँग्रेज़ी में फेल होकर कलंकित तथा हतोत्साह होते थे और होते हैं। यह तो विद्यादान की अपेक्षा विद्यादंड हो गया और अँग्रेज़ी विद्यावर्ग का आततायी विषय हुआ। उधर यदि परीक्षा का मानस्तर ढीला करके अधिक प्रतिशत लोगों को पास कर दिया जाय तो इस विषय का निम्नकोटि के स्तर का ज्ञानोपार्जन भी निन्दा का साधन बन जाता है। बहुधा सुनने में आता है कि आजकल के ग्रेजुएट पुराने मैट्रिकुलेट की अपेक्षा कम अँग्रेज़ी जानते हैं। माना, बिलकुल अक्षरशः सत्य है। किन्तु इसको न्यायोचित ही समझना चाहिए। छठवें दर्जे से लेकर बी० ए० कक्षा तक कुल मिला कर जितना समय और श्रम अँग्रेज़ी में अब व्यय किया जाता है उससे कहीं अधिक वस्तुतः कई गुना अधिक श्रम तथा समय गतयुग में कक्षा ३ से लेकर कक्षा १० तक के काल में अँग्रेज़ी के लिए व्यय किया जाता था। माध्यम के रूप में अँग्रेज़ी प्रायः दिन भर ही पढ़ी-पढ़ाई जाती थी। यह अलग प्रश्न है कि इतना समय तथा परिश्रम व्यय करके जो स्तर आजकल प्राप्त हो पाता है क्या उसे और ऊँचा नहीं किया जा सकता? अवश्य किया जा सकता है—अधिक उपयुक्त विधियों का

प्रयोग करके, अधिक सुन्दर वातावरण उत्पन्न करके, अधिक विशेषज्ञ तथा शिक्षाकार्य-कुशल अध्यापकों की नियुक्ति करके, अधिक सतर्कता-पूर्वक योग्य तथा रुचि रखने वाले विद्यार्थियों का चुनाव करके और अधिक सुचारु कक्षा-परिस्थिति, शिक्षण-सामग्री तथा पाठ्य-पुस्तकों आदि के योग से।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उपरान्त इस विषमता की तीव्रता बढ़गई है, घटी नहीं। एक बात कुछ अप्रत्याशित तथा विचित्र घटित हुई है—वह यह है कि अँग्रेज़ी-शिक्षक के प्रति वह भय तथा घृणा का भाव धीरे-धीरे लोप होता जा रहा है; परन्तु उसकी प्रतिष्ठा कुछ बढ़ ही गई है, कम नहीं हुई। यह नहीं कि उसे किसी से अधिक योग्य समझ कर कुछ बड़ा पद या अधिक वेतन दिया जाय प्रत्युत उसकी माँग अधिकाधिक बढ़ती जा रही है। पिछले दो-तीन वर्षों के विज्ञापन उठा कर देखने पर पता चलता है कि शिक्षकों की अधिकाँश, विज्ञापित आवश्यकताएँ अँग्रेज़ी ग्रेजुएट तथा पोस्ट-ग्रेजुएट को प्राथमिकता देने का वचन एवं आश्वासन देती हैं। इस दृष्टि से अँग्रेज़ी-शिक्षक को डरने की आवश्यकता नहीं। उसकी स्थिति सदावत् ठोस तथा सुरक्षित है और भविष्य उज्ज्वल है। लेकिन साथ ही उसको अपना कार्य कुछ अधिक कौशल-पूर्वक सम्पन्न करना पड़ेगा। समय की कटौती, वातावरण की कमी, बाह्य प्रकट पारितोषिक का अभाव और सहायक परिस्थितियों की समाप्ति—इन सब तत्त्वों से उत्पन्न खाई को अपने कार्य-कौशल द्वारा तथा अधिक मितव्ययशील एवं उपादेय विधियों का प्रयोग करके ही पाटना पड़ेगा।

किन्तु अँग्रेज़ी-शिक्षक को हताश होने की आवश्यकता नहीं। अधिक सुविकसित मानसिक स्तर के छात्रों से कार्य करने का अवसर उसे प्राप्त होगा। वे छात्र अब अवस्था में तीन वर्ष अधिक बड़े तथा समझदार होंगे। साथ ही मातृभाषा पर उनका पर्याप्त अधिकार हो चुकेगा और इन अनुभवों का उपयोग नवीन भाषा सिखाने के कार्य में कर लेने में ही अँग्रेज़ी-शिक्षक की कला की वास्तविक सफलता है।

तुलनात्मक अध्ययनार्थ ग्रन्थ-सूची

Champion : Lectures on Teaching English in India, Lectures I and V

Thompson and Wyatt : The Teaching of English in India Chapters I, XII and XIV

Mehta : Teaching of English in India, Chapters I, II and III

Godfrey D' Souza : The Teaching of Engiish Chapter I

Ryburn : Suggestions for the Teaching of English in India Chapter I

V. S. Mathur : Studies in the Teaching of English in Indian Schools, Introduction.

Central Pedagogical Institute, Allahabad Pamphlet No. 8 on Teaching of English in the Junior High School Articles I, II and IV.

अभ्यासार्थ प्रश्न

वर्तमान भारतीय शिक्षा-व्यवस्था में अँग्रेजी की क्या स्थिति है ? और वह विगतकालीन स्थिति से किस प्रकार भिन्न है ? भारत के लिये अँग्रेज़ी ही क्यों सर्वोपयुक्त विदेशी भाषा मानी गई है ?

अध्याय २

विदेशी भाषा तथा मातृभाषा

अन्तर्विरोध का भ्रम—

कुछ राजनैतिक जटिलताओं के कारण भारतवर्ष में भाषा-चिन्तन के समय विदेशी भाषा अर्थात् अँग्रेज़ी और मातृभाषा या किसी भी देशी भाषा जैसे हिन्दी आदि के बीच स्वाभाविक अन्तर्विरोध अनुमान कर लिया जाता है। अब तो यह प्रवृत्ति कुछ कम हो गई है; परन्तु विगत काल में यह धारणा बहुत प्रबल थी और बहुत-कुछ वर्तमान समय में भी जीवित है। अँग्रेज़ी को अनुचित महत्व देकर प्रथम अनिवार्य भाषा तथा अन्य विषयों का माध्यम बनाया गया था, और देशी तथा प्रान्तीय मातृभाषाओं को गौण-पद देकर वैकल्पिक विषय के रूप में स्वीकार किया जाता था। इसी असह्य विषम परिस्थिति की स्थायी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप इन दोनों भाषाओं के स्वाभाविक अन्तर्विरोध की मानसिक ग्रन्थि का उद्भव और विकास हुआ है।

इसका एक और भी सहायक कारण था—दोनों भाषाओं का पठन-पाठन बहुत प्रारम्भिक कक्षाओं से ही एक साथ प्रारम्भ कर देना। मातृभाषा का ज्ञान भी अर्द्ध निर्माणात्मक स्तर पर होता था, तभी से दूसरी नई विदेशी भाषा अँग्रेज़ी सिखाई जाने लगती थी। इससे इन दोनों सम्बन्धी अनुभूतियाँ तथा संस्कार भलीभाँति स्थापित होने का अवसर पाए बिना ही एक दूसरे से सयुक्त होकर विचार-विभ्रम तथा भाषा-ज्ञानात्मक-अव्यवस्था जनित करने लगते थे। इससे या तो दोनों को ही सीखने में अधिक देर लगती थी, और या फिर एक की ओर अधिक ध्यान तथा रुचि लग जाने पर उसमें कुशलता तथा दूसरे में अरुचि, लापरवाही तथा असफलता प्राप्त होती थी। अतएव जो विद्यार्थी अँग्रेज़ी की ओर प्रवृत्त हो गया उसकी मातृभाषा की ओर उदा-

सीनता सी रहती और जो मातृभाषा की ओर प्रवृत्त हो गया वह अँग्रेज़ी की ओर विरक्त-सा रहता।

फलतः अँग्रेज़ी-पाठन की नवीन सुधार-विधि का अनुसरण करने में इस बात का विशेष ध्यान रक्खा जाने लगा कि मातृभाषा का शब्द अँग्रेज़ी कक्षा में भूल कर भी न बोला जाय। इस परिस्थिति के पूर्व विदेशी भाषा-शिक्षण अनुवाद विधि से पूर्णतया मातृभाषा के सहारे सम्पन्न हुआ करता था। परन्तु वैसे प्रयोग पाश्चात्य विदेशों में ही असफल हो चुके थे। अतः नवीन विधि में मातृभाषा का पूर्ण बहिष्कार करने की परम्परा चल पड़ी। इससे भी उन दो भाषाओं के बीच की बनावटी खाई अधिक चौड़ी होती गई है।

नवीन मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण—

भाषा-शिक्षण के क्षेत्र में इससे अधिक घातक भूल और कोई नहीं हो सकती। वस्तुतः आधुनिक मनोविज्ञान के नवीनतम अन्वेषणों का निष्कर्ष इसके प्रतिकूल है। पृथक मानसिक शक्तियों (Faculties) के सिद्धान्त का खण्डन करके मानसिक अनुशासन (Mental Discipline) या आकारिक दीक्षा (Formal Training) तथा दीक्षा संक्रमण के विश्वासों को निमूॅल ठहरा चुकने के उपरान्त भी मनोवैज्ञानिकों ने भाषा योग्यता (Verbal Ability) नामक मानसिक तत्त्व का अस्तित्व एकमत से स्वीकार किया है। बहिरङ्ग मानसिक तथा बुद्धि-परीक्षाओं के तत्त्व-विश्लेषण से भी इस तत्त्व का अस्तित्व प्रमाणित हो चुका है। भाषा सम्बन्धी सामान्य क्षमता को स्वीकार कर लेने पर भाषा सम्बन्धी अन्तर्विरोध की धारणा हमें त्याग देनी पड़ेगी, क्योंकि यह दोनों विचार परस्पर असङ्गत हैं। आधुनिक मनोविज्ञान संचालित शिक्षण में तो समन्वय सिद्धान्त का अनुसरण किया जाता है अर्थात् सब विषयों में अन्तर्सम्बन्ध स्थापित करते हुए। कुछ विशेष वर्गों में अधिक घनिष्टता स्थापित हो जाना स्वाभाविक है यथा गणित तथा विज्ञान आदि की विभिन्न शाखाओं उप-शाखाओं के मध्य या विविध भाषाओं तथा उनके विविध पक्षों के

मध्य। इस दृष्टि से तो विदेशी भाषा तथा मातृभाषा में पूर्ण सहयोग होना चाहिए, विरोध नहीं।

परीक्षणात्मक समर्थन—

अँग्रेज़ी तथा मातृभाषा की योग्यता का अन्तर्सम्बन्ध नापने का प्रयास अङ्गोरा नामक स्थान के श्री बी० के० बनर्जी महाशय ने किया है। १०० विद्यार्थियों के अँग्रेज़ी व मातृभाषा के परीक्षा-प्राप्ताङ्क लेकर उन्होंने इन दोनों विषयों की सहचारिता मात्रा सङ्गणित की है। उन्होंने इन दोनों भाषा विषयों के मध्य बहुत उच्च धनात्मक सहचारिता मात्रा पाई है। वास्तविक प्राप्त सहचारिता गुणक था + ०.६५। अध्ययन किए गए विद्यार्थी वर्ग में ५२ विद्यार्थी अँग्रेज़ी में फेल थे तथा ५७ मातृभाषा में, और १० मातृभाषा में फेल होते हुए भी अँग्रेज़ी में पास थे। लेकिन इन आखिरी दस में से केवल एक ही विद्यार्थी अँग्रेज़ी में अच्छे नम्बरों से पास था। शेष अन्य सभी विद्यार्थियों के दोनों विषयों के प्राप्ताङ्कों में पर्याप्त समानता थी। इससे भी संकेत मिलता है कि ये दोनों विषय तत्त्वतः मिले-जुले हैं, परस्पर विरोधी नहीं, जैसा कि साधारणतया भ्रमवश अनुमान कर लिया जाता है।

सौभाग्यवश इस समय अब वह परिस्थिति नहीं रही जिससे इस अन्तर्विरोधी भावना का उदय हुआ था। अब "मातृभाषा या अँग्रेज़ी" वाली विकल्पात्मक विचारधारा के स्थान पर "मातृभाषा तथा अँग्रेज़ी" की युग्मात्मक विचारधारा अपनाई जा रही है। अब वे दोनों प्रतिद्वन्द्वी नहीं प्रत्युत सहयोगी बन कर बालकों के ज्ञानक्षेत्र तथा अनुभव क्षेत्र में पदार्पण करेंगी। इस सहयोग को ठोस आधार देकर उपादेय तथा चिर-स्थायी बनाने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि उन दोनों की समानतायें तथा असमानताएँ भलीभाँति समझ ली जायें। सच्चा तथा टिकाऊ समझौता तभी हो सकेगा जब दोनों के स्वरूप भेद को सम्यक मान्यता दी जाए, अर्थात् दोनों को अपनी भिन्नता का निर्वाह मैत्रीपूर्वक कर लेने की पूर्ण स्वतन्त्रता हो न कि दृष्टिकोण सम्बन्धी

तादात्म्य की चेष्टा करते हुए निरन्तर मतभेद बना रहे। पृथक तथा विभिन्न बने रहने का मतैक्य अच्छा, परन्तु एकाकार होने में सतत मत-भेद अच्छा नहीं।

दोनों भाषाओं की आधारभूत समानता—

विदेशी भाषा तथा मातृभाषा दोनों ही भाषाएँ होने के नाते कुछ आधारभूत पक्षों में तो बहुत समान होती हैं। दोनों के सीखने या प्रयोग करने में कुछ शारीरिक तथा मानसिक क्षमताएँ, गुण तथा आदतें आवश्यक होती हैं यथा—शब्द-चेतना, प्रतीक-परिचय तथा ध्वनित कर सकने की क्षमता, प्रतीक परिवर्तन की क्षमता आदि। दोनों ही भाषाओं में तीन प्रकार के प्रतीक प्रयुक्त होते हैं—ध्वनित, लिखित तथा अर्थगत। इन तीनों प्रकार के प्रतीकों का परस्पर परिवर्तन निरन्तर कर सकने की क्षमता से भाषा सम्बन्धी विविध प्रक्रियाएँ सम्पन्न हो पाती हैं। उदाहरणार्थ सस्वर पठन-प्रक्रिया में लिखित प्रतीकों को ध्वनि-प्रतीकों में परिवर्तित करना पड़ता है तथा मौन पठन में लिखित को अर्थ प्रतीकों में, भाषण प्रक्रिया में अर्थ या तात्पर्य प्रतीकों को ध्वनि प्रतीकों में परिवर्तित करना होता है, तथा इसी प्रकार श्रुत लेख में ध्वनि प्रतीकों को लिखित प्रतीकों में परिवर्तित करते हैं और कथा श्रवण या वक्तृता श्रवण में ध्वनि-प्रतीकों को अर्थ-प्रतीकों में परिवर्तित किया जाता है। यह दोनों ही भाषाओं के लिए एक रूप से आवश्यकीय क्षमताएँ हैं।

दोनों ही भाषाएँ शब्दों तथा उनसे बोधित वस्तुओं, भावों या पदार्थों को भिन्न या पृथक ज्ञात कर लेने की चेतना उत्पन्न करती हैं। शब्दों का जगत भिन्न है तथा वस्तुओं का जगत भिन्न—यह आधारभूत अनुभव हमें सभी भाषाओं के क्षेत्र में समान रूप से होता है, चाहे वह विदेशी भाषा हो और चाहे मातृभाषा। शब्द-जगत के अपने अलग नियम, उपनियम तथा अपवाद होते हैं। वे वस्तु-जगत के नियमों से स्वतन्त्र होते हैं, अतएव वस्तु-जगत के अनुरूप भी हो सकते हैं और उसके प्रतिकूल भी या उससे सर्वथा उदासीन भी रह सकते हैं। जब तक

यह चेतना पूर्णरूपेण उत्पन्न नहीं हो जाती तब तक वस्तु-जगत से भिन्न होने की परिस्थिति में शब्द-जगत अर्थात् भाषा के नियम हमें अत्यन्त विचित्र तथा अविवेकशील प्रतीत होते रहते हैं। किन्तु दोनों के पृथक होने की चेतना के स्थिर हो जाने पर हम अभ्यस्त हो जाते हैं और हमें विचित्रता का कोई आभास नहीं होता। उदाहरण-स्वरूप अँग्रेज़ी के put तथा but शब्दों का उच्चारण तथा हिन्दी भाषा के सङ्कट तथा आपत्ति शब्दों का लिङ्ग अपरिचित लोगों को विचित्र प्रतीत होगा, परन्तु चिरपरिचित लोगों को इसमें कोई विचित्रता नहीं।

यह तो हुई दो भाषाओं की या सभी भाषाओं की आवश्यक समानता। परन्तु कुछ समानता संयोगवश भी हो सकती है। दो भाषाओं के शब्दों या अक्षरों में कुछ समानता हो सकती है या अभि-व्यक्ति शैली, व्याकरण के नियम, मुहाविरे आदि समान हो सकते हैं। यह समानता उनके उद्‌गम की समानता पर निर्भर रहती है। एक ही परिवार की भाषाओं में इस प्रकार की समानता अधिक मात्रा में मिलेगी, लेकिन भिन्न परिवार वाली भाषाओं के बीच कम। इस प्रकार अँग्रेज़ी तथा जर्मन भाषाओं में अधिक समानता है या हिन्दी तथा गुजराती में भी; परन्तु हिन्दी तथा अँग्रेज़ी में इस प्रकार की बहुत कम समानता मिलती है, यद्यपि भाषा-विज्ञान-विशेषज्ञों के मतानुसार ये दोनों भाषाएँ एक ही भाषा-परिवार की सदस्या है।

दोनों का अन्तर

मातृभाषा तथा विदेशी भाषा में समानता की अपेक्षा असमानता होने की अधिक सम्भावना रहती है। यह असमानता या अन्तर दो प्रकार का हो सकता है—एक तो भाषा के रचना-संगठन सम्बन्धी और दूसरा उसके सीखने की परिस्थितिसम्बन्धी। रचना-संगठन का अन्तर एक तो प्रतीक शृँखला सम्बन्धी होता है। दो भाषाओं में भिन्न-भिन्न अक्षर ध्वनियाँ तथा शब्द होते हैं। दूसरा अन्तर होता है उनके शब्द निर्माण तथा वाक्य विन्यास के ढंग में। व्याकरण के नियम शब्दों के रूप-

भेद आदि उनके उच्चारण, लिंग, वचन, काल, धातु, प्रत्यय, उपसर्ग, प्रयोग आदि सभी में अन्तर होता है। हर एक भाषा का अथवा एक अलग अभिव्यक्ति का ढँग होता है—उसके मुहाविरे, शब्द-समूह, बोलने तथा प्रगट करने का समस्त क्रिया व्यापार ही किसी अन्य भाषा से नितांत भिन्न होता है।

हमारे दृष्टिकोण से इस रचना-संगठन सम्बन्धी अन्तर की अपेक्षा सीखने की परिस्थिति सम्बन्धी अन्तर अधिक महत्वपूर्ण माना जायेगा। इसका मुख्य कारण यही है कि इसी अन्तर का अधिक प्रभाव अँग्रेज़ी शिक्षण की पद्धति पर पड़ेगा। इन दोनों भाषाओं के सीखने की परिस्थिति का सबसे बड़ा अन्तर तो यह होता है कि मातृभाषा हम नितान्त स्वाभाविक ढँग से बिना कोई सचेतन प्रयास किए ही सीख लेते हैं, जबकि विदेशी भाषा सीखने के लिये निरन्तर सचेतन चेष्टा करनी पड़ती है। मातृभाषा के सीखने की क्रिया हमारे जीवन के आरम्भ काल से ही हमारे जाने-अनजाने चलती रहती है। हमारा वह समय अत्यन्त लचीला निर्माण-काल होता है और उस समय नवीन ज्ञानोपार्जन सहज सम्भव रहता है। उस समय चाहे जो भी आदतें डाली जा सकती हैं; क्योंकि उनका प्रतिरोध करने वाली कोई अन्य आदतें पहले से स्थापित नहीं रहतीं। विदेशी भाषा सीखने के समय तक हमारे मनोशारीरिक संस्थान का लचीलापन तथा उसकी निर्माणशीलता कम हो जाती है। इसके अतिरिक्त भाषा सम्बन्धी अनेकों पूर्वस्थापित आदतें तथा संस्कार या अनुभूतियाँ अपने नवीन प्रतिस्पर्धी प्रतिरूपों की स्थापना में बाधक सिद्ध होते हैं। अतएव शिक्षार्थी का समस्त आन्तरिक वातावरण मातृभाषा सीखने में तो अत्यन्त सहायक सिद्ध होता है; परन्तु विदेशी भाषा सीखने में उतना नहीं सिद्ध हो पाता।

इस आन्तरिक वातावरण के साथ ही बाह्य वातावरण भी अधिकांशतः मातृभाषा सीखने में सहायक बन जाता है। शिक्षार्थी के जीवन में सभी ओर मातृभाषा के माध्यम से ही विचार-विनिमय होता है। परिवार में, मित्र तथा सहपाठी-वर्ग में, बाजार तथा राजमार्ग में वह इसी भाषा में विचारों का आदान-प्रदान करता है। यदि

वह किसी कक्षा का विद्यार्थी हुआ तब तो वह प्रायः सभी विषयों का ज्ञानोपार्जन करते समय मातृभाषा का अभ्यास करता ही रहता है; परन्तु इसकी अपेक्षा विदेशी भाषा के अभ्यास तथा अनुभव का क्षेत्र अत्यन्त सीमित तथा कृत्रिम रूप से प्रबन्धित रहता है। अधिकांशतः कक्षा के समय विभाग-चक्र के अनुसार प्रदत्त एक-आध घंटा दैनिक ही इसके सीखने-सिखाने का एकमात्र अवसर है। बहुत कुछ प्रयत्न करके पाठ्येतर क्रियाओं के रूप में कुछ अवसर उत्पन्न कर लेते हैं, यथा वादविवाद, नाटकीय कथोपकथन, भाषण या कवितापाठ आदि, आदि। किन्तु मातृभाषा के लिये प्राप्त अवसरों की तुलना में यह नगण्य ही है।

सीखने के अवसरों की ही भाँति प्रयोग के भी अवसर मातृभाषा के लिये बहुसंख्यक तथा स्वाभाविक होते है, और विदेशी भाषा के लिए न्यून तथा अस्वाभाविक। प्रयोग की सम्भावना के अनुसार ही सीखने की प्रेरणा तथा रुचि और प्रेरणा तथा रुचि के अनुसार परिश्रम तथा सफलता होती है। मातृभाषा में सफलता से अधिक अवसर रहते हैं और इसीलिए उसमें बालक की निजी चेष्टा के आधार पर बहुत-सा कार्य सम्पन्न किया जा सकता है। विदेशी भाषा में निजी चेष्टा के आधार पर सफलता के अवसर कम होने के कारण शिक्षक की सहायता तथा उसका पथप्रदर्शन अधिक मात्रा में आवश्यक है।

शिक्षण-कार्य के लिये निष्कर्ष

इस प्रकार संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मातृभाषा विद्यार्थी के जीवन में अधिक पहले आती है और उसका प्रभाव-क्षेत्र अधिक व्यापक तथा उसकी अनुभूति अधिक मार्मिक एवं गहरी होती है। फलतः उसके संस्कार अधिक प्रबल एवं स्थायी होते हैं। इसकी तुलना में विदेशी भाषा सभी पक्षों में पिछड़ी रह जाती है। परन्तु उसके लिये दो तिनकों का सहारा अवशेष रह जाता है। एक तो देर में आरम्भ करके अधिक परिपक्व मस्तिष्क जो अधिक समझदारी से सीखने की क्रिया में अग्रसर हो सकेगा और जो समयानुसार अपने पूर्व संचित मातृभाषा के अनुभवों

का लाभ उठा सकेगा। दूसरा यह लोभ कि उसके व्यक्तित्व के प्रकाशन के लिये एक नवीन मार्ग खुल रहा है। ये दोनों तिनके साधारण तिनके नहीं हैं। कुशल अध्यापक शीघ्र ही अपनी कला से इन्हें विदेशी भाषा की डगमगाती नाव से पतवारों में परिणत कर लेता है और विद्यार्थी में इस नवीन विद्या के उपार्जन में भी पारंगत होने का विश्वास उत्पन्न कर देता है।

मातृभाषा तथा विदेशी भाषा की समानताएँ विदेशी भाषा के सीखने में सहायक सिद्ध होती हैं; परन्तु उनकी असमानताएँ उसमें बाधक सिद्ध होती हैं। अतः इस ओर से अत्यन्त सावधान रह कर कार्य करे। आधार-भूत या संयोगजन्य समानताओं का पूरा लाभ उठाते हुए भी प्रतिवर्तनात्मक निरोध के अवसरों का यथाशक्ति निराकरण करता रहे। अनुवाद-विधि तथा प्रत्यक्ष विधि का समन्वय करने में भी इसका पूर्ण ध्यान रक्खा जाय। दोनों भाषाओं के इस तुलनात्मक विवेचन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि मातृभाषा की अपेक्षाकृत विदेशी भाषा में हमें कम महत्वाकाँक्षी उद्देश्यों से ही सन्तोष करना पड़ेगा। मातृभाषा में हम अधिकतम सुचारुता उत्पन्न करने का लक्ष्य लेकर अग्रसर होंगे, जबकि भाषा में न्यूनतम आवश्यक योग्यता का उद्देश्य ही पर्याप्त कष्टसाध्य सिद्ध होगा। अतएव सर्वप्रथम तो इसी ध्येय की पूर्ति की जायगी, तदुपरान्त कुछ और साथ ही यह भी स्पष्ट हो गया कि विदेशी भाषा का शिक्षण अधिक सुनियोजित तथा संचालित ढँग से सम्पन्न करने की आवश्यकता है। अतः इसकी विधियों तथा पद्धतियों का गहन अध्ययन और विवेचन किया जाय और अधिक प्रभावोत्पादक सहायक सामग्री का चयन एवं उपयोग किया जाय। तभी इष्ट ध्येय की प्राप्ति समय पर हो सकेगी।

तुलनात्मक अध्ययनार्थ ग्रन्थ-सूची

Thompson and Wyatt : The Teaching of English in India, Chapter I

Champion : Lectures on Teaching English in India, Chapter I, II & V.

French : The Teaching of English Abroad, Book I, Chapter I.

Morris : The Teaching of English as a second Language, Chapter III.

Incorporated Association of Assistant Masters in Secondary Schools : The Teaching of Modern Languages. Chapter I.

Godfrey D' Sourza : The Teaching of English. Chapters I & II.

अभ्यासार्थ प्रश्न

भारतीय स्कूलों में अँग्रेज़ी पढ़ाने की क्या आवश्यकता है ? स्वतन्त्रता के पश्चात् अँग्रेज़ी पढ़ाने के उद्देश्यों में क्या अन्तर आ गया है ?

;

अध्याय ३

अँग्रेज़ी-शिक्षण के उद्देश्य

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि—

भारत में अँग्रेज़ी-शिक्षण का विषय आरम्भ से ही विवाद-ग्रस्त रहा है और अब भी है। सन् १८३३ के चार्टर में शिक्षा पर एक लाख पौंड व्यय करने का आदेश हुआ था। तभी प्राच्यवादी तथा पाश्चात्यवादी दलों का विचार-संघर्ष उठ खड़ा हुआ। सन् १८३५ में लार्ड मैकॉले ने अँग्रेज़ी-शिक्षा के पक्ष में अपना निर्णय देकर उस विवाद का अन्त किया। तब से आज तक अँग्रेज़ी भाषा का शिक्षण भारतवर्ष के स्कूलों तथा विद्यालयों में चल रहा है और वह भी अनिवार्य मुख्य विषय के रूप में। इस बीच सभी ने अँग्रेज़ी का अधिकाधिक लाभ उठाया और साथ ही यथाशक्ति उसकी निन्दा भी की। सन् १९४७ में भारत के स्वतन्त्र होने पर विदेशी शासकों की भाषा के परित्याग की भी पूरी आशा जनसाधारण को थी, किन्तु ऐसा न हो सका। अँग्रेज़ी अब भी देश के विद्यालयों में पढ़ाई जा रही है। अतः प्रश्न उठता है कि अँग्रेज़ी क्यों पढ़ाई जाय? और यदि पढ़ाई ही जाय तो कैसे?

उद्देश्य, स्वतन्त्रता के पूर्व—

यह प्रश्न बड़ा स्वाभाविक है तथा जटिल भी। जब तक देश का शासन-सूत्र विदेशी हाथों में था तब तक शासकवर्ग की भाषा होने के नाते अँग्रेज़ी का महत्व कुछ और ही था। सरकारी पदों में नियुक्ति पाने की लालसावश अँग्रेज़ी का पठन-पाठन होता था। रोटी का प्रश्न तो था ही, किन्तु साथ ही सामाजिक प्रतिष्ठा का भी प्रश्न था। जो लोग अँग्रेज़ी पढ़ कर अच्छे पदों में नियुक्ति प्राप्त कर लेते थे, निश्चय ही उनके परिवार अधिक प्रतिष्ठित तथा सुसंपन्न समझे जाते थे। देश का

संविधान भी अँग्रेज़ी भाषा में ही था तथा उच्च न्यायालयों एवं दफ़्तरों की भाषा भी अँग्रेज़ी ही थी। अतः कानूनी कार्यवाही में, या सरकार से अपने अधिकारों के अनुसार सुविधाएँ प्राप्त करने में, अँग्रेज़ी भाषा बहुत सहायक सिद्ध होती थी। इन्हीं सब उपयोगितावादी तथा अवसरवादी भावनाओं के वशीभूत होकर भारतीय जन अँग्रेज़ी भाषा पढ़ने में दत्तचित्त रहते थे। किन्तु स्वतंत्रता-प्राप्ति के उपरान्त स्थिति बिलकुल बदल गई है। इस अवसर पर अँग्रेज़ी-शिक्षण की इतिश्री तो नहीं की जा सकी; परन्तु उसके प्रति दृष्टिकोण नितान्त परिवर्तित हो गया है।

उद्देश्य, स्वतन्त्रता के उपरान्त—

अँग्रेज़ी भाषा की पढ़ाई अब जीविकोपार्जन के लिए नहीं, अपितु व्यक्तित्व के समुचित विकास के लिए सम्पन्न की जाती है। प्रायः सभी प्रगतिशील देशों की शिक्षा-व्यवस्था के माध्यमिक स्तर पर किसी न किसी विदेशी भाषा का समावेश अवश्य होता है। इसका मुख्य कारण है, व्यापक दृष्टिकोण उत्पन्न करके विश्वमैत्री तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के विशाल आदर्शों की स्थापना द्वारा व्यक्तित्व-निर्माण में योग देना। अपनी भाषा तथा अपने साहित्य के अध्ययन द्वारा अपने राष्ट्रीय जीवन का परिचय प्राप्त होता है। बिना दूसरों के विचारों तथा जीवन के आदर्शों का उसी भाँति परिचय प्राप्त किए यह भावधारा अत्यन्त संकुचित रह जाती है और व्यक्तित्व का विकास एकाङ्गी तथा अधूरा हो पाता है।

आज अन्तर्राष्ट्रीयता का युग है। कोई भी राष्ट्र स्वयं को विश्व के अन्य राष्ट्रों से सर्वथा अप्रभावित नहीं रख सकता। बिना अन्य राष्ट्रों से समुचित राजनैतिक तथा सांस्कृतिक सम्पर्क बनाए किसी भी राष्ट्र की आर्थिक, राजनैतिक तथा सामाजिक प्रगति अवरुद्ध हो जाती है। अतः इस दृष्टि से भी विदेशी भाषा का पढ़ना अच्छा माना जाता है; क्योंकि इससे अन्तर्राराष्ट्रीय सम्पर्क स्थापित करने में सहायता मिलती है। इस प्रकार अँग्रेज़ी-शिक्षण का उद्देश्य अब साँस्कृतिक तथा मानवतावादी सिद्धान्तों से अधिक प्रभावित है।

किन्तु अँग्रेज़ी की व्यावहारिक उपयोगिता भी भारतवासियों को इसे अपनाए रखने को बाध्य कर देती है। अँग्रेज़ी अंतर्राष्ट्रीय भाषा है। इंगलैंड, अमेरिका, कनाडा तथा आस्ट्रेलिया जैसे दूरस्थ देशों की यह राष्ट्र-भाषा है और लगभग २० करोड़ लोगों की मातृभाषा है। इसको बोलने तथा समझने वाले लोग दुनियाँ के सभी देशों में पाए जाते हैं। सभी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं में यह भाषा विचार-विनमय के माध्यम के रूप में मान्य है। अतः अँग्रेज़ी भाषा का पठन-पाठन अन्य भाषा की अपेक्षा अधिक उपादेय सिद्ध होता है। साथ ही साथ अँग्रेज़ी का साहित्य अत्यन्त समृद्ध है, विशेषकर विविध विज्ञानों से सम्बन्धित साहित्य, भौतिक, सामाजिक तथा जीवन विज्ञान-सम्बन्धी आधुनिकतम गवेषणावेषण का प्रकाशन अँग्रेज़ी माध्यम में होता रहता है। विश्व की अनेकों भाषाओं के बहुमूल्य ग्रन्थों के अनुवाद भी इस भाषा में प्राप्य हैं। विशेषकर पाश्चात्य दर्शन तथा विज्ञान वाङ्मय का जितना विशाल सँग्रह अँग्रेज़ी भाषा में उपलब्ध होता है उतना किसी अन्य भाषा में नहीं। लार्ड मैकॉले ने आज से सवा सौ वर्ष पूर्व अँग्रेज़ी की इस स्थिति की ओर संकेत किया था। प्राच्य तथा पाश्चात्य जगत के बीच की बढ़ती हुई खाई का एक-मात्र संभव सेतु अँग्रेज़ी ही है। प्राच्य जगत के प्रतिनिधि भारत को इसी अँग्रेज़ी के पठन-पाठन को प्रोत्साहन देना चाहिए। इससे विश्वशाँति की स्थापना संभव हो सकेगी तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग भी बढ़ेगा। अँग्रेज़ी अपनी राष्ट्र-भाषा के साहित्य को समृद्ध बनाने तथा विश्वसाहित्य से परिचय कराने का भी अद्वितीय साधन है।

राजनैतिक संयोगवश अँग्रेज़ी की जड़ें भारतवर्ष में जमी हुई हैं। अतः ऐसी स्थिति में इसके समृद्ध मौलिक, अनुवादित तथा वैशेषिक साहित्य का, तथा इसकी उत्तरोत्तर बढ़ती हुई सार्वभौमिक लोकप्रियता का पूरा लाभ उठा लेने में ही बुद्धिमानी है। अँग्रेज़ी के लिए शिक्षक तथा उसके प्रकाशन की सुविधाएँ देश में पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं। आर्थिक दृष्टि से इसकी अवहेलना करना भी सहज नहीं है। इस प्रकार ऐतिहासिक परम्परा तथा व्यावहारिक सुविधा की दृष्टि से भी उपर्युक्त उद्देश्यों

की पूर्ति के हेतु अँग्रेज़ी भाषा का शिक्षण भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में अभी बहुत समय तक के लिए आवश्यक प्रतीत होता है।

कक्षा-शिक्षक की दृष्टि से तात्कालिक उद्देश्य—

यह तो रही शिक्षा-नीति की बात, जिसके आधार पर देश के शासक-गण यह निर्णय करते हैं कि कौन सी विदेशी भाषा बालकों को किन कक्षाओं में कितने समय तक पढ़ाई जाय? किन्तु इस कार्य को सम्पन्न करने का भार शिक्षक पर पड़ता है। वस्तुतः कक्षा-शिक्षक को उपर्युक्त निर्णय के सम्बन्ध में कोई निजी मत रखने का अधिकार ही नहीं होता। उसका कार्य तो है, दी हुई परिस्थितियों में उस विषय को यथाशक्ति इस ढँग से पढ़ाना जिससे इन पूर्वलक्षित उद्देश्यों की पूर्त्ति हो सके। इस दृष्टि से अँग्रेज़ी भाषा के शिक्षक का मुख्य ध्येय चतुर्मुखी होगा-

(१) छात्रों में अँग्रेज़ी भाषा को बोलने की क्षमता उत्पन्न करना।

(१) छात्रों में अँग्रेज़ी भाषा को लिखने की क्षमता उत्पन्न करना।

(३) छात्रों में अँग्रेज़ी भाषा को पढ़ने की क्षमता उत्पन्न करना।

(४) छात्रों में अँग्रेज़ी भाषा को समझने की क्षमता उत्पन्न करना।

उद्देश्य और विधियाँ—

इन्हीं तात्कालिक उद्देश्यों के प्रति सजग रह कर शिक्षक इस पाठ्य विषय से सम्बन्धित अन्य महान् उद्देश्यों की पूर्ति भी परोक्ष रूप से कर सकेगा। अतएव हर प्रकार से अँग्रेज़ी को बालकों के लिए रुचिकर बनाना, इसके अध्ययन की ओर उन्हें आकर्षित करना, इसमें कुशलता प्राप्त करने के हेतु आवश्यक परिश्रम करने की प्रेरणा प्रदान करना, तथा उनके तत्सम्बन्धित प्रयासों को सम्यक् प्रोत्साहन देना, शिक्षक का प्रमुख कर्त्तव्य हो जाता है। अवसर अत्यन्त सीमित होने के कारण उसे अत्यन्त विधिपूर्वक तथा सुनियोजित ढँग से इस विषय के विविध पक्षों के पाठन में अग्रसर होना पड़ेगा। अतएव इन विधियों का परिचय प्राप्त कर लेना परम आवश्यक है।

किन्तु सर्वप्रथम हम इन विधियों के निर्धारक आधारभूत तत्त्वों पर

दृष्टिपात करलें तभी इनकी समुचित समीक्षा का कार्य सुचारुता के साथ सम्पन्न हो सकेगा।

तुलनात्मक अध्ययनार्थ ग्रन्थ-सूची

Jespersen : Language : Its Nature, Development and Origin.

Morris : The Teaching of English as a Second Language, Chapter VIII

Thompson and Wyatt : The Teaching of English in India Chapter IX

Ryburn : Suggestions for the Teaching of English in India, Chapter II

Godfrey D' Souza : The Teaching of English Chapter XII

अभ्यासार्थ प्रश्न

मातृभाषा तथा विदेशी भाषा सम्बन्धी अनुभवों में क्या समानता तथा अन्तर होने की सम्भावना है और क्यों ? वे एक दूसरे के अध्ययन में बाधक होंगी या सहायक ? सकारण बताओ।

अध्याय ४

विदेशी भाषा की शिक्षण-विधि का निरूपण

निर्धारक तत्त्व—

किसी भी विषय की शिक्षण-विधि का निरूपण करने में जिन तत्त्वों का ध्यान रखना पड़ता है उनमें से प्रमुख ये हैं—(१) प्राप्य उद्देश्य तथा वांछित ज्ञानस्तर (२) विषय-वस्तु का स्वरूप (३) सीखने के नियम (४) शिक्षार्थी की मनोशारीरिक अवस्था (५) अध्यापनकला के सर्वमान्य सूत्र (६) हर्बार्ट की पञ्चपदीय विकास-पद्धति (७) शिक्षण का माध्यम, तथा (८) शासनात्मक समस्याएँ। इन सभी निर्धारक तत्त्वों को सम्यक् स्थान दिए बिना कोई भी विधि सफल नहीं हो सकती। विदेशी भाषा-शिक्षण के सन्दर्भ में इन सभी तत्त्वों को संक्षेप में समझ लेने के उपरान्त ही इसकी शिक्षण-विधियों का अध्ययन तथा विवेचन सारगर्भित हो सकेगा।

प्राप्य उद्देश्य तथा वाञ्छित ज्ञान-स्तर—

इस के सम्बन्ध में यही कहना पर्याप्त होगा कि भारतीय बालकों को अँग्रेज़ी पढ़ाने में अँग्रेज़ी के सभी पक्षों में कुशलता उत्पन्न करनी होगी अर्थात् समझने, बोलने, पढ़ने, लिखने आदि में। कुशलता की मात्रा न्यूनतम आवश्यक सुचारुता तक ही सीमित रखनी पड़ेगी. अर्थात् साधारण अँग्रेज़ी समझना, पढ़ना, लिखना तथा बोलना सिखाना ही इष्ट है, किन्तु सर्वथा अशुद्धि-रहित तथा मान्य प्रचलित ढङ्ग की अँग्रेज़ी। वर्त्तमान परिस्थितियों में इससे अधिक आशा नहीं रखनी चाहिए।

विषय-वस्तु का स्वरूप—

जहाँ तक पाठ्य विषय-वस्तु का प्रश्न है, हमें यह ध्यान रखना

पड़ेगा कि अँग्रेज़ी भाषा तथा साहित्य दोनों ही इसमें सम्मिलित हैं। परन्तु प्रारम्भिक कक्षाओं में साहित्य का स्थान अत्यन्त गौण रहेगा और भाषापक्ष की प्रधानता रहेगी। यद्यपि यह ठीक है कि भाषा की खोज में साहित्य लुप्त हो जाता है; परन्तु विवशता तो यह है कि हमें इस विदेशी भाषा की ही आवश्यकता सर्व-प्रथम है, उसके ललित साहित्य की तत्पश्चात। और फिर बिना भाषा माध्यम पर न्यूनतम अधिकार किए साहित्य को समुचित रूप से हृदयङ्गम भी तो नहीं कराया जा सकता। इस दृष्टि से स्कूल की उच्चतम कक्षाओं में ही साहित्य पक्ष को कुछ स्थान दिया जा सकेगा, उसके पूर्व नहीं। परन्तु विशेष ध्यान देने की बात तो यह है कि यह भाषा एक जीवित भाषा है, जिसे व्यवहारिक अभ्यास द्वारा कौशल के रूप में सीखना पड़ेगा। केवल इसका ज्ञान ही नहीं प्रत्युत इसमें कुशलता प्राप्त करनी पड़ेगी। इसके सभी पक्षों—लिखित, ध्वनित तथा व्यञ्जित आदि का सक्रिय तथा निष्क्रिय दोनों प्रकार की सुचारुता अपेक्षित होगी—अर्थात् भाव-ग्रहणपक्ष तथा भाव-प्रकाशन पक्ष दोनों पर अधिकार कराना होगा। इन सभी पक्षों का पृथक परन्तु समन्वित अभ्यास देना पड़ेगा।

सीखने के नियम व शिक्षार्थी—

सीखने के नियमों में से अभ्यास, प्रभाव तथा तत्परता के नियमों का तो ध्यान रखना ही पड़ेगा, साथ ही साथ प्रेरणा तथा प्रोत्साहन, करके सीखने तथा स्वयं ज्ञान के उपाय, उपार्जन या विजय कर लेने के भाव तथा सामूहिक क्रिया आदि के द्वारा सीखने की प्रक्रिया में उच्चतम प्रयास तथा पूर्णसहयोग एवं ध्यान विद्यार्थी से प्राप्त किया जाय। प्रतिवर्त्तनात्मक निरोध की प्रक्रिया के अवसर न उपस्थित होने पायें। इस सब के लिए शिक्षार्थी की मनोशारीरिक अवस्था का पूरा ध्यान रखना होगा। उसके मानसिक तथा शारीरिक विकास एवं परिपक्वता के साथ-साथ उसके पूर्वार्जित मातृभाषा सम्बन्धी तथा अन्य संस्कार और उसकी भाषात्मक रुचि एवं अभिरुचि भी विचारणीय है। जैस्पर्सन-कथि

पाँच प्रकार की भाषायोग्यता वाले विभाजन को ध्यान देना सुविधा-जनक होगा अर्थात्—

(१) भाषात्मक प्रखर प्रतिभा सम्पन्न—जो स्वयं सूझ द्वारा सीख ले।

(२) भाषा-कुशल वर्ग—जो कुछ सहायता पाकर सिद्धान्त समझ आगे बढ़ जाते हैं।

(३) साधारण योग्यता वर्ग—जो पूरी कक्षा-काल की पढ़ाई के ही सहारे बढ़ पाते हैं, उसमें बाधा होने पर नहीं।

(४) मन्द भाषा योग्यता वर्ग—जिन्हें कक्षा काल के अतिरिक्त सिखाने की आवश्यकता पड़ती है।

(५) निकृष्ट भाषा योग्यता वर्ग—जो विशेष विधियों तथा व्यक्तिगत शिक्षण के उपरान्त भी अधिक नहीं सीख पाते।

साधारण कक्षा-शिक्षण में तो साधारण वर्ग का ही ध्यान रख कर अग्रसर होना पड़ता है; परन्तु अवसरानुकूल अन्य वर्गों का भी कुछ प्रबन्ध करने वाली विधि अधिक वांछनीय समझी जाएगी।

अध्यापनकला के सूत्र तथा हर्बार्ट के पाँच पद—

अध्यापनकला के सर्वमान्य सूत्रों का पालन तो पाठन-विधि की सफलता के लिए अनिवार्य ही है। इन सूत्रों का उल्लंघन करने वाली विधि हेय समझी जाएगी। इन सूत्रों में से मुख्य ये हैं—(१) प्रकृति का अनुसरण (२) ज्ञात से अज्ञात, (३) परिचित से अपरिचित, (४) सुबोध से कठिन, (५) सरल से जटिल, (६) समूर्त से अमूर्त, (७) विशिष्ट से सामान्य (८) अनिश्चित से सुनिश्चित, (९) समग्र रूप से अंशरूप (१०) अनुभव-जन्य से विवेक-जन्य तथा (११) मनोवैज्ञानिक से तार्किक की ओर अग्रसर होना। इन सभी सूत्रों की उपादेयता अप्रश्नीय एवं स्वयंसिद्ध है। इसी प्रकार हर्बार्ट द्वारा प्रतिपादित विकास-प्रणाली की पञ्चपदीय व्यवस्था की भी अवहेलना व्यवहारिक कक्षा-शिक्षण में नहीं की जा सकती। कोई भी विधि लेकर हम चलें, अन्ततोगत्वा कक्षा को पढ़ाए जाने वाले सफल पाठ में उद्देश्य

के अनुसार पूर्वज्ञान के आधार पर आरम्भ करके भूमिका प्रस्तुतीकरण, स्पष्टीकरण, सूत्रीकरण तथा प्रयोग के पाँचों सोपान पार करने ही पड़ते हैं। इस दृष्टि से सभी भिन्न-भिन्न विधियों को इस पञ्चपदीय साँचे में ढाल कर ही व्यवहारिक प्रयोग में लाया जाएगा।

शिक्षण का माध्यम--

माध्यम की समस्या पर तीव्र मतभेद फैला हुआ है। परन्तु दो ही सम्भव माध्यमों—अर्थात् मातृभाषा या स्वयं विदेशी भाषा में से हमें चुनना है। वस्तुतः यहाँ भी चुनने का प्रश्न नहीं, समाहार करने का प्रश्न अधिक है। किस प्रकार से इन दोनों का अधिकतम लाभ उठाया जाय—इसी की चेष्टा करनी चाहिए। हित तो इसी में है कि केवल अनिवार्य प्रतीत होने पर ही यदाकदा मातृभाषा का सहारा लिया जाय और इसे आवश्यकता से अधिक समय विदेशी भाषा की कक्षा का न दिया जाय। सर्वोत्तम पाठ तो वही माना जाएगा जिसमें स्वभावतः इसकी आवश्यकता ही न प्रतीत हो और न इसकी अनुपस्थिति में कोई अड़चन या कठिनाई ही प्रतीत हो। परन्तु यह आदर्श न पूरा हो पाने पर मातृभाषा का समावेश कोई कलङ्क नहीं। उसका न्यूनतम आवश्यक प्रयोग उस क्षण करके पुनः विदेशी भाषा के माध्यम का अनुसरण करने लगें। इससे वातावरण भी छिन्न-भिन्न न होगा और अड़चन भी दूर हो जाएगी।

शासनात्मक समस्याएँ--

शासनात्मक तत्त्वों में से प्रमुख हैं—(१) प्राप्त समय तथा साधन (२) निर्धारित पाठ्य क्रम, पुस्तक आदि या कार्य की मात्रा (३) परीक्षा का मानस्तर (४) कक्षा में विद्यार्थियों की संख्या, तथा (५) शिक्षक की योग्यता, अभिरुचि तथा कला-कुशलता। कोई भी शिक्षण-विधि इन शासनात्मक तत्त्वों की उपेक्षा करके सफल नहीं हो सकती। बहुधा तो वही तत्त्व अन्य तत्त्वों की अपेक्षा अधिक प्रधानता ग्रहण कर लेते हैं। परन्तु यह न्यायसङ्गत नहीं। बाह्यतः निर्धारित पुस्तक या

परीक्षा-स्तर वस्तुतः अपनी समस्त शिक्षा-व्यवस्था का सबसे बुरा अभिशाप है; परन्तु विधिवत शिक्षण इन तत्त्वों को अपने वशीभूत करे, स्वयं उनके वशीभूत न हो जाय। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, समय तो बहुत सीमित ही होगा और शायद दिन का कोई अनुपयुक्त काल ही इसे प्रदान किया जाएगा। कक्षा में विद्यार्थियों की संख्या भी अधिक ही होगी, प्रायः ४० के आसपास। साधन सब शिक्षक को ही जुटाने पड़ेंगे—अतएव शिक्षक की योग्यता, अभिरुचि या कला-कुशलता ही एकमात्र सहारा इन शासनात्मक दुस्तर तत्त्वों के मध्य अवशेष रह जाता है। शिक्षक यथाशक्ति अपनी योग्यता तथा कलाकुशलता का परिचय विधिवत शिक्षण के द्वारा ही दे सकेगा। इसमें वैशेषीकरण अत्यन्त सहायक होगा। अधिकांश विदेशी भाषा के शिक्षक इस वैशेषी-करण से युक्त नहीं होते। इस स्थिति को ध्यान में रख कर ही किसी शिक्षण-विधि का सुझाव देना व्यवहार-सङ्गत होगा।

क्या उपर्युक्त इतने सभी तत्त्वों का समावेश किसी एक शिक्षण-विधि में हो सकेगा? यह प्रश्न हमारे समक्ष उठाया जा सकता है। और हमारा उत्तर यही है कि हाँ करना पड़ेगा अन्यथा स्थायी सफलता नहीं मिल सकेगी। अभी तक कोई इन सभी दृष्टियों से सर्वथा पूर्ण प्रणाली विकसित नहीं हो सकी है इसीलिए नित्य नवीन प्रयोग हो रहे हैं और पुनः-पुनः विषय-विवेचन तथा मनन, अध्ययन की आवश्यकता भी पड़ती है। अब तक नहीं विकसित हो सकी तो यह निराशा का हेतु नहीं, उत्साह का हेतु होना चाहिए और नित्य नवीन अन्वेषण का क्रम निरन्तर चलता रहना चाहिए।

प्रकट व्यवहारिक रूप--

इस वृहत् निर्धारक तत्त्व समूह को टामसन तथा वायट महोदयों ने इन पाँच मुख्य सिद्धान्तों के रूप में सूत्रबद्ध किया है जिनका परिपालन वे विदेशी-भाषा-शिक्षण-विधि के लिए अनिवार्य समझते हैं—

(१) वह प्रधानतया अभ्यास-विधि हो।

(२) मौखिक कार्य उसका अभिन्न अङ्ग हो।

(३) सभी प्रकार की भाषा प्रक्रियाओं की प्रगति के लिए क्षेत्र हो।

(४) व्यक्ति के पूर्व अनुभवों का विशेषकर मातृभाषा सम्बन्धी अनुभवों का उपयोग हो।

(५) विद्यार्थी के व्यवहारिक जीवन से समन्वय हो। इन सिद्धान्तों के स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं क्योंकि वे स्वयं ही स्पष्ट हैं।

तुलनात्मक अध्ययनार्थ ग्रन्थ-सूची

Champion : Lectures on Teaching English in India, Lectures III & IV.

O' Grady : Teaching of Modern Foreign Language.

Thompson & Wyatt : The Teaching of English in India, Chapter II.

Morris : The Teching of English as a second Language, Chapters I & II.

Godfrey D' Sourza : The Teaching of English, Chapter III.

Harold E. Palmer : The Principles of Language Study.

अभ्यासार्थ प्रश्न

विदेशी भाषा की शिक्षणविधि के निर्धारण में किन तत्त्वों का योग आवश्यक है और कितनी मात्रा में ? उनका सापेक्ष महत्व स्पष्ट कीजिए।

द्वितीय खण्ड

अँग्रेज़ी-शिक्षण की सामान्य विधियाँ

- अनुवाद-विधि ।
- प्रत्यक्ष विधि ।
- अँग-परिवर्तन-विधि ।
- डा० वेस्ट की नूतन विधि ।
- पूर्ण विधि ।

अध्याय ५

अनुवाद-विधि

सामान्य तथा विशिष्ट विधियाँ--

अँग्रेज़ी-शिक्षण के लिए अनेकों विधियाँ समय-समय पर विशेषज्ञों द्वारा प्रस्तुत की गई हैं। उनमें से कुछ तो भाषा के प्रायः सभी पक्षों अर्थात् लेखन, पाठन, भाषण, व्याकरण, शब्दबोध, पठित, अपठित आदि में सामान्य रूप से व्यवहृत की जा सकती हैं। इन्हें हम सामान्य विधियाँ कहते हैं। इन सामान्य विधियों के अतिरिक्त भाषा सम्बन्धी उपर्युक्त भिन्न-भिन्न पक्षों में से किसी एक ही से सम्बन्धित विधियाँ भी प्रयुक्त की जाती हैं। इन्हें विशिष्ट विधियाँ कहना चाहिए। इन एक-पक्षीय विशिष्ट विधियों का विवेचन हम यथास्थान सन्दर्भानुसार करेंगे। यहाँ कुछ मुख्य सामान्य विधियों का ही अध्ययन किया जायगा।

अर्थ--

जैसा कि इस विधि के नाम से ही प्रगट होता है यह विधि विदेशी भाषा का शिक्षण मातृभाषा में अनुवाद कर-कर के सम्पन्न करने के पक्ष में है। चाहे पाठ्य-पुस्तक पढ़ाना हो, चाहे व्याकरण, चाहे लेख या निबन्ध सिखाना हो और चाहे शब्द-ज्ञान ही बढ़ाना हो, सभी प्रकार के पाठों की मुख्य क्रिया-विधि है मातृभाषा सम्बन्धी समानान्तर या समरूप अनुभवों या अभिव्यक्तियों को आधार बना कर विदेशी भाषा सम्बन्धी अनुभव प्रदान करना। प्रत्येक शब्द, प्रत्येक वाक्य, प्रत्येक भाव तथा प्रत्येक रचना का अनुवाद मातृभाषा में करके उसका बोध-स्पष्टीकरण और विवेचन किया जाता है और हर प्रकार से पद-पद पर विदेशी भाषा का शिक्षण मातृभाषा के माध्यम से ही किया जाता है।

उद्भव—

वस्तुतः भाषा-शिक्षण की परम्परागत विधि तो यही है। यदि शिक्षा का इतिहास देखा जाय तो प्राचीन काल तथा मध्यकालीन युगों में समकालीन विद्यालयों में प्रचलित भाषाओं के पठन-पाठन का अधिकांशतः अभाव दृष्टिगोचर होता है। युगों तक विद्यालयों ने प्रचलित भाषाओं की उपेक्षा करके पुरातन भाषाओं के पठन-पाठन को ही श्रेय दिया है—ऐसी पुरातन भाषाएँ जिनमें साहित्य तो बहुत सुन्दर रचा गया है, किन्तु जो अब प्रचलित बोलचाल की भाषाएँ नहीं रहीं। इन मृत पुरातन भाषाओं के अमूल्य साहित्य का अध्ययन मातृभाषा में अर्थ समझाकर या अनुवाद करके ही सम्भव था, क्योंकि अब वे स्वयं व्यावहारिक प्रयोग में तो थीं ही नहीं। इस प्रकार इंगलैंड के विद्यालयों में लैटिन तथा ग्रीक और भारतवर्ष के विद्यालयों में संस्कृत, पाली तथा प्राकृत भाषाएँ अनुवाद-विधि के द्वारा पढ़ाई जाती रहीं। हरएक देश में यही दशा रही। कालान्तर में समकालीन प्रचलित देशी तथा विदेशी भाषाओं के भी पठन-पाठन की आवश्यकता प्रतीत हुई, विशेषकर औद्योगिक क्रान्ति तथा वैज्ञानिक प्रगति के फलस्वरूप राष्ट्रीयता तथा अन्तर्राष्ट्रीयता की भावनाओं के प्रचार के कारण। ऐसी दशा में इन जीवित विदेशी भाषाओं के पाठन में भी उसी परम्परागत अनुवाद-विधि का अनुसरण किया गया। किन्तु दोनों स्थितियों में बड़ा अन्तर था। मृत भाषाओं में मुख्य समस्या थी, अर्थबोध तथा रसास्वादन की। उनका मौखिक तथा लिखित व्यवहारिक प्रयोग करने की कोई आवश्यकता ही नहीं थी। जीवित विदेशी भाषाओं के सीखने का मन्तव्य बिल्कुल भिन्न था—व्यावहारिक विचार-विनिमय की कुशलता लिखित तथा मौखिक दोनों रूपों में, जिससे व्यापारिक या राजनैतिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय सुचारु रूप से सम्पन्न हो। अतएव अनुवाद-विधि के स्थान पर अन्य विधियों का विकसित होना सर्वथा स्वाभाविक था और ऐसा ही हुआ भी। उनका विवेचन करने के पूर्व हम अनुवाद-विधि पर ही ध्यान केन्द्रित करेंगे।

अनुवाद-विधि के आधारभूत सिद्धान्त—

अनुवाद-विधि का दृढ़ विश्वास है कि विदेशी शब्दों तथा मुहावरों की सर्वोत्तम व्याख्या मातृभाषा में अनुवाद करके ही की जा सकती है। इस प्रकार अनुवाद द्वारा व्याख्या करने की प्रक्रिया से ही उस शब्द तथा सूक्ति-भंडार का बोध तथा उस पर सम्यक अधिकार भी प्राप्त होता है। इसी प्रकार किसी विदेशी भाषा की वाक्य-रचना या शब्द-रचना को ठीक से समझने के लिए मातृभाषा की वाक्य-रचना तथा शब्द-रचना से तुलना करना ही सर्वोत्तम है। अतएव व्याकरण के सिद्धान्तों को सर्वप्रथम अवगत कराना तथा उनकी सहायता से अनुवाद में कुशलता प्रदान करना आवश्यक है। इसी से भाषा-बोध में शीघ्रतम् प्रगति सम्भव है। इस प्रक्रिया को सम्पन्न करने में मौखिक भाषा कार्य की कोई आवश्यकता ही नहीं पड़ती, अतः उसे छोड़ देना ही ठीक है और सही अनुवाद कर लेने की क्षमता ही भाषा पर सच्चे अधिकार की द्योतक है—जैसा कि स्टॉर्म (Storm) नामक जर्मन विद्वान् ने कहा है—"जब तक कोई किसी शब्द का अनुवाद न कर दे तब तक उसका उस शब्द पर पूर्ण अधिकार नहीं कहा जा सकता, अर्थात् न केवल अर्थ-बोध ग्रहण करने की अपितु उसके साथ-साथ उसका प्रयोग कर लेने की योग्यता भी उसमें उत्पन्न हो जाय तब भाषा पर अधिकार समझना चाहिए। इस दृष्टि से अनुवाद भाषा-ज्ञान के साधन तथा मापदंड दोनों ही रूप में महत्वपूर्ण है। अनुवाद कठिन कला है, जिससे मानसिक अनुशासन प्राप्त होता है. अतएव इसका अभ्यास आरम्भ से ही कराना चाहिए। इसी अनुवाद-विधि के सिद्धान्तों पर आधारित कुछ पाठ्य पुस्तकें भी प्रचलित हैं—जैसे हिन्दी-अँग्रेज़ी शिक्षक या हिन्दी-अँग्रेज़ी पथप्रदर्शक, जिसमें बिना किसी बाहरी शिक्षक या सहायक के ही अँग्रेज़ी भाषा थोड़े समय में सिखा देने का दावा किया जाता है। इस विधि के अनुसार कुछ वैसी ही पुस्तकें आदर्श प्रथम पुस्तकें समझी जायँगी।

अनुवाद-विधि के गुण--

जैसा कि पहले ही संकेत किया जा चुका है इस विधि के अन्तर्गत

मातृभाषा सम्बन्धी पूर्व-संचित अनुभव का व्यापक रूप से उपयोग होता रहता है। इससे विदेशी भाषा-शिक्षण को सहज ही विद्यार्थी के दैनिक जीवन से सम्बन्धित किया जा सकता है और उसके समस्त ज्ञान को समन्वित करने में भी आसानी होती है। मातृभाषा सम्बन्धी अनुभव-पुंज तथा विदेशी भाषा सम्बन्धी अनुभव-पुञ्ज के मध्य अन्तर्सम्बन्ध स्वय ही स्थापित हो जाता है। अपरिचित विषय-वस्तु का ज्ञान सुपरिचित वस्तु तथा ज्ञान के सहारे प्रदान किया जाता है, जो सर्वथा युक्तिसंगत है। जटिल तथा घुमावदार क्रियाविधि की अपेक्षा मातृभाषा के पर्याय सीधे-साधे रूप में बतलाने से समय तथा श्रम की बचत होती है, जिससे सीखने की गति अधिक तेज रहती है। शिक्षक को भी अधिक कठिनाई नहीं होती तथा विद्यार्थी को भी कठिनाई नहीं अनुभव होती। वस्तुतः यदि गुण के अनुसार नामकरण हो। इसी विधि को सही अर्थ में प्रत्यक्ष विधि (Direct Method) कहना उपयुक्त होगा।

इस विधि के द्वारा दिया गया ज्ञान अत्यन्त सही और सुनिश्चित होता है—अर्थात् उसमें संशय या द्विविधा या शंका के लिये स्थान नहीं रह जाता। मातृभाषा के माध्यम से सभी बातों की व्याख्या तथा उनका बोध अत्यन्त सुस्पष्ट होता है और इस प्रकार की स्पष्टता या सुबोधता के लिये अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता। अतएव अत्यन्त सुविधाजनक विधि से भाषा पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कराने में यह [illegible] है। आद्योपान्त कक्षा का वातावरण अत्यन्त स्वाभाविक बना रहता है तथा विद्यार्थियों के व्यवहार में भी कृत्रिमता नहीं आने पाती और न उनमें मानसिक तनाव या अनिश्चयात्मक वृत्ति ही उत्पन्न होने पाती। इस प्रकार सीखने की क्रिया के लिये ये घातक तत्त्व दूर हो जाते हैं। विद्यार्थी में आरम्भ से ही कुछ अधिकृत कर लेने तथा सफल होने का भाव उत्पन्न करके यह विधि भाषा सीखने में उसके उत्साह को बढ़ाती है और उसे अधिकाधिक इस कार्य में सलग्न होने को प्रेरित करती है। [illegible] यह कह सकते हैं कि यह विधि सरल, व्यवहारिक, स्वाभाविक तथा मितव्यय-पूर्ण है। साधारण अध्यापक भी बहुसंख्यक विद्यार्थियों के समूह में इसे

भली-भाँति प्रयोग करके सफलता प्राप्त कर सकता है। इसका अनुसरण करने के लिये विशेषज्ञ अध्यापक अपेक्षित नहीं।

अनुवाद-विधि के दोष--

इन सब गुणों के विद्यमान होते हुए भी अनुवाद-विधि में कई दोष हैं। उन्हें भी समझ लेना चाहिए। प्रथम तो यह कि इस विधि के अनुसार भाषा का सीखना ज्ञान-प्राप्ति के रूप में घटित होता है न कि कौशल के रूप में। इन दोनों दृष्टिकोणों में आकाश-पाताल का अन्तर है। शब्दों के अर्थ तथा रूप और उनके सम्बन्धी नियमों को जान लेना बात और है तथा किसी भाषा को स्वाभाविक रूप में लिखित तथा मौखिक स्तर पर कुशलता-पूर्वक व्यवहार कर लेना कुछ और। आधुनिक जीवित विदेशी भाषा के रूप में अँग्रेज़ी को सीखना ज्ञान-मात्र का विषय नहीं अपितु इसके साथ ही साथ कौशल के रूप में अधिकृत करने का विषय है। अतएव इस भाषा को व्यावहारिक रूप से अभ्यास करने का अवसर अधिक से अधिक प्रदान करने वाली पाठन-विधि अच्छी समझी जायगी और इस अवसर से वंचित रहने वाली विधि हीन और तुच्छ। भाषा पर जो कुछ अधिकार अनुवाद-विधि के द्वारा प्राप्त हो सकता है वह स्वभावतः भाषा के निष्क्रिय पक्षों तक ही सीमित है—अर्थात् उसके लिखित तथा मौखिक भाव-बोध तक। लिखित तथा मौखिक अभिव्यक्ति जैसे सक्रिय पक्षों में इसका वश नहीं चल पाता। और जैसा कि बैलर्ड महोदय ने कहा है—"किसी भी भाषा को, चाहे वह देशी हो या विदेशी, नियमों के ही एकमात्र आधार पर प्रयोग कर लेना असम्भव है।" भाषा पर वास्तविक अधिकार दीर्घकालीन अभ्यास द्वारा प्राप्त होता है, नियमों के ज्ञान-मात्र द्वारा नहीं। सीखने का एक मुख्य नियम है, अभ्यास का नियम अर्थात् "करके सीखना"। इस विधि में उस नियम की उपेक्षा है। मौखिक कार्य की उपेक्षा करना भी इस सम्बन्ध में अत्यन्त दूषित नीति है, क्योंकि इससे भाषात्मक अनुभवों की समृद्धि तथा अनेकरूपता का जानबूझ कर हनन हो जाता है। श्रवण-मूलक (Auditory), गिरा-

मूलक (Vocal) तथा गतिमूलक (Motor)। कितने ही प्रत्यय सम्बन्धों के लिए कोई स्थान ही नहीं रह जाता। और सच पूछो तो रोचकता तथा प्रेरणा का प्रधान स्रोत ही समाप्त हो जाता है और उसका स्थान नीरस क्रम-पूर्ति (Routine) ग्रहण कर लेती है। अतएव विद्यार्थियों को ऐसा प्रतीत होने लगता है मानों उन पर कोई बोझ लादा जा रहा हो।

इस विधि के द्वारा वास्तविक लक्ष्य की प्राप्ति भी नहीं हो पाती। यहाँ उद्देश्य तो होता है विदेशी भाषा को सीखना; किन्तु तदर्थ नियत समय में से अधिकाँश में मातृभाषा का ही प्रयोग होने लगता है, जिससे विदेशी भाषा सीखने का अवसर और भी कम हो जाता है। मातृभाषा बालकों को आसान पड़ती है अतएव स्वभावतः विद्यार्थीगण उसी ओर प्रवृत्त रहेंगे और अधिकाधिक समय उसी के प्रयोग में व्यय होगा। एक ही समय में दो भाषाओं के अनुभवों को जाग्रत करने से प्रतिवर्तनात्मक निरोध (Retroactive Inhibition) घटित होने की सम्भावना रहती है। एक प्रकार के अनुभवों को पुनर्जाग्रत करने में दूसरे प्रकार के अनुभव बाधा पहुँचाते हैं और प्रवाहपूर्ण मानसिक कार्य में रुकावट आने लगती है। एक भाषा के मानसिक सन्दर्भ से पुनः-पुनः दूसरी भाषा के सन्दर्भ में आना-जाना क्षोभ उत्पन्न करता है। और साथ ही साथ भाषा-प्रयोग की दूषित आदतें भी पड़ने लगती हैं, जैसे किसी बात को कह कर उसी वक्त उसका अनुवाद करते जाने की आदत। बालकों को स्वयं कठिन परिश्रम के लिए तत्पर करने की अपेक्षा यह विधि उन्हें पका-पकाया भोजन प्रदान करना चाहती है।

यदि यह भी मान लिया जाय कि भाषा पर पूर्ण अधिकार की द्योतक होने के नाते अनुवाद की कला अत्यन्त क्लिष्ट है तो भी यही निष्कर्ष ठीक प्रतीत होता है कि उसका अभ्यास उच्चतम कक्षाओं में ही किया जाय, न कि प्रारम्भिक कक्षाओं में। अनुवाद-विधि के अनुसरण करने से पाठन-विधि के कुछ सर्वमान्य सूत्रों का भी उल्लंघन हो जाता है। व्याकरण के नियमों को सर्वप्रथम स्थान देने के कारण समूर्त से अमूर्त की ओर अग्रसर होने, अनुभव-जन्य से तर्क-जन्य की ओर अग्रसर होने

तथा विशिष्ट से सामान्य की ओर अग्रसर होने के पाठन सूत्रों की स्पष्ट अवहेलना होती है, जिससे इस विधि की सफलता सन्देहपूर्ण ही समझना चाहिए।

तुलनात्मक अध्ययनार्थ ग्रन्थ-सूची

Champion : Lectures on Teaching English in India, Lecture VI.

Thompson & Wyatt : The Teaching of English in India, Chapters III & IX.

Morris : The Teaching of English as a Second Language. Chapter VII.

Otto Jespersen : How to teach a Foreign Language.

O' Grady : Teaching of Modern Foreign Language,

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) अनुवाद-विधि के आधारभूत सिद्धान्तों का विवेचन और यह स्पष्ट कीजिए कि अँग्रेजी पढ़ाने में मातृभाषा को कितना स्थान दिया जाय ?

(२) अनुवाद-विधि के गुण-दोषों पर प्रकाश डालिए और बताइए कि वर्त्तमान परिस्थिति में हमारे स्कूलों के लिए वह कहाँ तक उपयुक्त है ?

अध्याय ६

प्रत्यक्ष विधि (Direct Method)

प्रत्यक्ष विधि का उद्भव--

इस विधि के अनुसार विदेशी भाषा का शिक्षण मातृभाषा के माध्यम से नहीं अपितु उसी विदेशी भाषा के ही माध्यम से सम्पन्न किया जाता है—अर्थात् अँग्रेज़ी पढ़ाते समय भावों, स्थितियों तथा अनुभवों को सीधे अँग्रेज़ी के ही माध्यम से अवगत तथा व्यक्त किया जाय। इस कार्य के लिए मातृभाषा या अन्य कोई भाषा जैसा मध्यवर्त्ती साधन न प्रयुक्त किया जाय। वस्तुतः आधुनिक विदेशी भाषाओं के शिक्षण में परम्परागत अनुवाद-विधि की विफलता के ही कारण इस विधि का प्रादुर्भाव हुआ। पाश्चात्य देशों की औद्योगिक क्रान्ति होने पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की गति तीव्र हुई तथा अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय की सुविधा के लिए प्रचलित विदेशी भाषाओं का सीखना अनिवार्य हो गया। स्वाभाविक ही था कि सर्वप्रथम उसी अनुवाद-विधि को यहाँ भी प्रयुक्त किया गया जो पुरातन भाषाओं के पठन-पाठन में प्रयुक्त होती थी। साथ ही उसकी विफलता भी उतनी ही स्वाभाविक एवं अवश्यम्भावी थी। इसी असन्तोष के कारण अन्य उपयुक्त विधि की खोज में अनेकों प्रयास हुए। स्थान-स्थान पर शिक्षा-विशेषज्ञों ने अपनी सूझ द्वारा कुछ नवीन प्रयोग करते हुए इस प्रकार अपनी अनुसन्धानित विधियों का बहुत ही आकर्षक एवं व्यञ्जनापूर्ण नामकरण किया।

इसके रूपान्तर—

इस नामावली के निरीक्षण से ही सुधार-प्रवृत्ति का पर्याप्त दिग्दर्शन हो जाता है। किसी ने इसे परिष्कृत विधि (Reformed Method) कहा तो किसी ने नवीन विधि (New Method); किसी ने शुद्ध विधि

(Correct Method) तो किसी ने विवेकपूर्ण विधि (Ratinal Method) किसी ने समझ पूर्ण (Sensitive Method) विधि तो किसी ने सूझपूर्ण विधि (Intuitive Method) किसी ने सुव्यवस्थित विधि (Organised Method) तो किसी ने स्थूल विधि (Concrete Method), किसी ने विश्लेषण-विधि (Analytical Method) तो किसी ने संश्लेषण विधि (Synthetic Method) किसी ने मौखिक विधि (Oral Method) तो किसी ने कथोपकथन विधि (Conversational Method) किसी ने पुरातन विरोधी विधि (Anticlassical Method) तो किसी ने व्याकरण-विरोधी विधि (Antigrammatical Method) और किसी ने स्वाभाविक विधि, (Natural Method) तो किसी ने प्रत्यक्ष विधि (Direct Method)। ये सभी नाम इस विधि की किसी न किसी विशेषता की ओर संकेत करते हैं।" (Direct Method) शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम फ्रेंच-शिक्षा-मन्त्री के एक चक्रादेश में सन् १६०१ में किया गया था और धीरे-धीरे यह प्रायः सभी अन्य नामों को स्थानापन्न कर चुका है। यही इसकी उपयुक्तता का पुष्ट प्रमाण है।

आधारभूत सिद्धान्त तथा विशेषताएँ--

भारतवर्ष में भी इस विधि का प्रयोग बीसवीं शताब्दी के आरंभ-काल से ही हुआ है, जब से यहाँ अँग्रेज़ी-शिक्षण की समस्याओं पर गम्भीरता-पूर्वक चिन्तन आरम्भ हुआ। और यहाँ भी स्वभावतः अन्य स्थानों की भाँति यह अनुवाद-विधि की प्रतिक्रिया के रूप में आई थी। सँक्षेप में इसके आधारभूत नियम तथा इसकी ही विशेषताएँ निम्नाङ्कित हैं :—

प्रत्यक्ष विधि का सर्वप्रमुख सिद्धान्त है अनुभव तथा अभिव्यक्ति के बीच सीधा सम्बन्ध स्थापित करना। शब्द तथा उससे सम्बोधित वस्तु अथवा भाव को बिना किसी अन्य मध्यस्थ साधन के ही सीधे रूप में संयुक्त कर देना इसे इष्ट है न कि मातृभाषा के माध्यम द्वारा उन्हें

संयुक्त करना। अनुभूत प्रत्यय (Concept) तथा विदेशी शब्द (Foreign Word) या संक्षेप में c-F या F-c बन्धन को दृढ़ता-पूर्वक स्थापित करके नवीन भाषा को मौलिक भावों के प्रत्यक्ष माध्यम का स्थान प्रदान किया जाता है न कि अनुवादकृत भावों के अप्रत्यक्ष माध्यम को मातृभाषा का व्यवहार अथवा प्रयोग उस क्षण रोक कर नवीन विदेशी भाषा को ही ठीक उसी स्वाभाविक ढंग से ग्रहण कराने की चेष्टा की जाती है। जिस प्रकार मातृभाषा के शुद्ध तथा निर्दोष रूप में प्रयोग करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति हम में उत्पन्न हो जाती है उसी प्रकार की दृढ़ तथा त्रुटिहीन भाषानुभूति जनित करके विदेशी भाषा को भी मातृभाषा के ढङ्ग से पढ़ाना उचित समझा जाता है।

इसी सिद्धान्त के आधार पर इस विधि में भाषा के मौखिक पक्ष को प्रधानता दी जाती है। आरम्भिक कक्षाओं में तो मौखिक पठन-पाठन ही भाषा कार्य का एकमात्र स्वरूप होता है। पठित तथा लिखित पक्ष का समावेश तत्पश्चात होता है तथा नियमबद्ध व्याकरण रचना आदि का स्थान उसके भी बाद है, बिलकुल नगण्य। भाषा प्रयोग में व्यवहारिक कुशलता उसके शास्त्रीय ज्ञान की अपेक्षाकृत अधिक वाञ्छनीय है और उसी कुशलता को उत्पन्न करने के लिए सक्रिय व्यवहारिक प्रयोग पर केन्द्रित रहता है न कि उसकी रचना-सम्बन्धी बारीकियों पर अथवा सूक्ष्म नियमावली पर।

इस प्रकार आरम्भ से ही व्यवहारिक प्रयोग करके भाषा सीखने के लिए पूर्ण वाक्य की इकाई लेकर अग्रसर होना पड़ता है न कि अक्षर अथवा शब्द-मात्र की इकाई लेकर। व्यवहृत भाषा की इकाई है वाक्य; क्योंकि एक पूर्णभाव को वाक्य ही व्यक्त कर पाता है एकाकी शब्द नहीं। यदि एकाकी शब्द किसी परिस्थिति में पूर्णभाव को व्यक्त भी कर दे तो वह फिर शब्द-मात्र नहीं रह जाता, अपितु स्वयं एक पूर्ण वाक्य ही है यथा बालक के केवल "माँ" कहने पर उससे गोद में उठा लेने का भाव प्रगट हो जाना या किसी वस्तु का माँगना स्पष्ट हो जाना। स्वाभाविक रूप से छोटे सरल वाक्यों से बढ़ते-बढ़ते जटिल वाक्य की ओर अग्रसर

होते हैं; किन्तु आरम्भ से ही व्यवहारिक पूर्ण वाक्य ही प्रयुक्त होता है और यह सुविधाजनक भी सिद्ध होता है।

मौखिक भाव-प्रकाशन को व्यवहारिक प्रयोग में लाकर अनुभव-पक्ष को प्रधानता देकर तथा नियमों एवं सूक्ष्म सिद्धान्तों के शास्त्रीय ज्ञान की उपेक्षा करके व्याकरण तथा तत्सम्बन्धी भाषा-विज्ञान की शिक्षा यथाशक्ति बहिष्कृत रक्खी जाती है। वस्तुतः इस विधि के अन्तर्गत नियमित व्याकरण-शिक्षण के लिए कोई स्थान नहीं। जिस प्रकार से मातृभाषा का सफल प्रयोग बिना व्याकरण-ज्ञान के ही सभी जन करते रहते हैं ठीक वही स्थिति विदेशी भाषा के साथ भी घटित होनी चाहिये। भाषा के सक्रिय शुद्ध प्रयोग में व्यक्ति इतना रम जाय कि स्वभावतः वह बिना नियमों आदि की चेतना के ही उन्हीं रूपों का यथोचित प्रयोग करता रहे। यदि व्याकरण-सम्बन्धी नियमों की चेतना उसके मस्तिष्क में आवे भी तो वह अगमन (Inductive) विधि द्वारा सम्पन्न आत्मबोध के रूप में ही हो न कि निगमन विधि द्वारा प्रयास-पूर्ण कक्षा-शिक्षण के फलस्वरूप। भाषा के विविध प्रयोगों का निरन्तर अभ्यास करते हुए जो चेतना उसके आधारभूत नियमों के विषय में स्वयं ही उत्पन्न हो जाय वही व्याकरण पर्याप्त है। उसके अतिरिक्त पृथक विषय के रूप में व्याकरण का शिक्षण भाषा में व्यवहारिक कुशलता प्रदान करने की दृष्टि से नितान्त व्यर्थ है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस विधि का मुख्य सिद्धान्त है, व्यक्ति में विदेशी भाषा के द्वारा ही चिन्तन की शक्ति उत्पन्न करना और इसमें बाधक तत्वों का निराकरण। इसीलिये प्रच्छन्न मातृभाषागत भाव का विदेशी भाषा अँग्रेज़ी में अनुवादित प्रगट प्रकाशन भी इसे स्वीकार नहीं। इस अभ्यास को स्वाभाविकता प्रदान करने के लिए कक्षा के वातावरण को विदेशी पुट देना पड़ता है और उस विदेशीपन के यथोचित निर्वाह का भार अधिकाँशतः शिक्षक को सम्भालना पड़ता है। यही शिक्षक की कुशलता एवं कला की परीक्षा है। दुरुहता से रक्षा करते हुए इस विषय का शिक्षण इतना स्वाभाविक एवं रोचक बनाए रहे कि विद्यार्थीगण

दत्तचित होकर इसके पठन-पाठन में सक्रिय भाग लेते रहें और उत्तरोत्तर निर्दिष्ट मार्ग पर अग्रसर होने में प्रयत्नशील रहें।

प्रत्यक्ष विधि के गुण—

प्रत्यक्ष विधि में अभ्यास के नियम (Law of Exercise) अथवा करके सीखने (Learning by Doing) की प्रतिष्ठा है जो मनोविज्ञान की दृष्टि से उचित है। अँग्रेज़ी की कहावत है 'Practice makes a man perfect' अर्थात 'करत करत अभ्यास के जड़मति होतू सुजान।' अभ्यास के ही द्वारा विद्या की पूर्णता प्राप्त की जा सकती है और भाषा पर पूर्ण अधिकार भी इसी के द्वारा स्थापित किया जा सकता है। चैम्पियन महाशय ने कहा है कि यह विधि विद्यार्थी को अँग्रेज़ी के मौखिक तथा लिखित दोनों पक्षों पर अधिकार करा देने में समर्थ है। यह विधि निरन्तर एक ही भाषा का प्रयोग करके पाठन सामग्री को एकरूप रखती है। इससे प्रतिवर्त्तनात्मक निरोध की कोई सम्भावना नहीं रह जाती और साथ ही सीखने की प्रगति अधिक तीव्र तथा निर्विघ्न होती है। सक्रिय भाग लेने से पाठ में विद्यार्थी के लिए अधिक रोचकता तथा सजीवता बनी रहती है। निरन्तर मौखिक कार्य होते रहने से विद्यार्थी में सजगता तथा तत्परता भी रहती है। यह सभी मनोवृतियाँ तथा स्थल सहायक सामग्री सीखने में सुचारुता लाती हैं। विद्यार्थी को पका-पकाया माल न देकर उसे निजी प्रयास में संलग्न करके उस वृत्ति पर निर्भरता को दूर करती है, उसमें आत्मविश्वास तथा साहस जनित करती है जो भाषा के सफल प्रयोग के लिए अत्यावश्यक है।

प्रत्यक्ष विधि अनेक पाठन सूत्रों से समर्थित है। इसमें व्यवहारिक से शास्त्रीय की ओर, अनुभवजन्य से विवेक-जन्य की ओर, स्थूल से सूक्ष्म की ओर तथा विशेष से सामान्य की ओर अग्रसर होने की चेष्टा निहित है। यह प्रकृति का अनुसरण करती है अतएव इसकी सफलता अवश्यंभावी है। इसमें अनुकरण द्वारा सीखने का पर्याप्त अवसर रहता है। छोटी अवस्था के विद्यार्थियों में अनुकरण की प्रवृत्ति स्वभावतः प्रबल होती

है। और सभी के लिए अनुकरण सीखने का लघुमार्ग है। इससे शिक्षक के अच्छे नमूने का पूरा लाभ उठाने की सम्भावना भी रहती है। इस विधि के द्वारा वातावरण तो स्वयमेव विदेशी भाषा सीखने योग्य बना रहता है। विद्यार्थियों का भाषा-प्रयोग अत्यन्त स्वाभाविक, सहज, स्पष्ट और सीधा होता है न कि घुमावदार, कृत्रिम अथवा किताबी। यह विधि बालकों की अँग्रेज़ी को अनुवादीपन (Translationism) तथा भारतीयपन (Indianism) जैसे दोषों से भी मुक्त रखती है। भाषा के अधिक वाञ्छनीय पक्षों को यथेष्ट महत्व प्रदान करके भाषा-शिक्षण के व्यवहारिक मूल्य को अधिक प्रधानता देकर यह विधि तद्विषयक पूर्वकथित मानवतावादी तथा उपयोगितावादी दोनों प्रकार के उद्देश्यों की पूर्ति अधिक सुन्दर ढँग से करती है। यह परीक्षणों द्वारा देखा गया है कि प्रत्यक्ष विधि के द्वारा कम समय में ही अधिक अच्छे परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं। क्या शब्द-प्रयोग की शक्ति और क्या भाव-बोध की, क्या वार्तालाप करने की शक्ति और क्या पठन की, सभी में अनुवाद-विधि की अपेक्षा प्रत्यक्ष विधि के द्वारा अधिक अच्छा परिणाम देखा गया है। अतएव कोई आश्चर्य नहीं जो कुशल विशेषज्ञ-मत इसी विधि के पक्ष में हो।

प्रत्यक्ष विधि के दोष—

विदेशी भाषा-शिक्षण में प्रत्यक्ष विधि के प्रयोग में कई दोष लक्षित किए गए हैं। एक तो यह विधि मातृ-भाषा का तिरस्कार करती है और राष्ट्रीयता के प्रतिकूल है। विद्यार्थियों को विदेशी भाषा पढ़ाकर विदेशी साँचे में नहीं ढालना है प्रत्युत उन्हें विदेशी जन-समाज के जीवन-दर्शन तथा दृष्टिकोण से परिचित कराकर उनके साहित्य में निहित भाव-राशि तथा विचारधाराओं को हृदयङ्गम कराना है, जिससे वह उनके आदर्शों तथा उनकी परम्पराओं के प्रति समुचित सहानुभूति रक्खें। दूसरी बात यह है कि इस प्रकार मातृभाषा सम्बन्धी अनुभवों को सर्वथा पृथक करना असम्भव है और यदि सम्भव भी हो तो भी पूर्वानुभव का समुचित लाभ न उठाना कोई बुद्धिमानी नहीं। यह तो इस विधि के द्वारा अपरिचित

से अपरिचित की ओर अग्रसर होने का प्रयास है न कि परिचित से अपरिचित की ओर। इसलिए यह विधि अत्यन्त घुमावदार एवं पेचीली सिद्ध होती है। इसका नाम और गुण एक दूसरे के विपरीत है। यह प्रत्यक्ष (Direct) नहीं बल्कि (Indirect) या अप्रत्यक्ष है। इसके द्वारा पढ़ाने पर अनेकों शङ्काएँ शेष रह जाती हैं जिनका स्पष्टीकरण विदेशी भाषा के माध्यम से सम्भव नहीं होता। और यदि प्रयत्न किया भी जाय तो समय तथा श्रम दोनों का अत्यधिक अपव्यय है। साथ ही इसको पूर्णरुपेण निभाने के लिए अत्यन्त कुशल अध्यापकों की आवश्यकता होती है जो अधिक संख्या में प्राप्त नहीं होते।

कक्षा में विदेशी वातावरण का निर्माण दुष्कर एवं दुस्साध्य तो है ही; परन्तु साथ ही बड़ा अस्वाभाविक तथा कृत्रिम भी है। निम्न कक्षाओं में तो बिना मातृभाषा के प्रयोग के काम ही नहीं चल पाता। विदेशी बच्चों के वातावरण से वे अनुभव संकलित करने पर जो अपने बच्चों के भी अनुभव हैं बहुत ही सीमित एवं सामान्य विषय-वस्तु अवशेष रह जाती है जो सर्वथा नीरस एवं सार-हीन प्रतीत होती है। असामान्य अनुभवों को विदेशी भाषा के माध्यम से हृदयङ्गम कराना सम्भव नहीं। इसकी क्रियाविधि ऐसी है जिससे शिक्षक एवं विद्यार्थी के बीच एक चौड़ी खाई शेष रह जाती है, जो शिक्षा-कला की दृष्टि से अहितकर है। विद्यार्थियों को पद-पद पर विफलता होती है और ऐसे किए गये कार्य में उनकी रुचि टिक नहीं पाती और न ध्यान ही जमता है, जिससे कार्य में प्रगति अत्यन्त असंतोषजनक होती है। सभी शब्दों की व्याख्या प्रत्यक्ष अनुभव के द्वारा नहीं की जा सकती और भाषा के सभी पक्षों को इस विधि के द्वारा नहीं पढ़ाया जा सकता—उदाहरणार्थ अनुवाद की कला को ही।

यह विधि मौखिक पक्ष को प्रधानता देती है। भाषा कार्य में लिखित पक्ष अधिक ठोस तथा सारगर्भित और तदुपरान्त पठन पक्ष माना जाता है। श्रवण-मूलक तथा वाणी-मूलक अनुभूतियाँ, दृष्टि-मूलक तथा गति-मूलक अनुभूतियों से किसी भी माने में अधिक गहरी, मार्मिक अथवा आकर्षक मूल्यवान, या अर्थपूर्ण नहीं ठहराई जा सकतीं। भिन्न व्यक्तियों में भिन्न

अनुभूतियों की नैसर्गिक प्रधानता भी होती है। सभी को इस एक ही विधि से पढ़ाने पर शेष प्रकार की अनुभूतियों की उपेक्षा होती है जो विद्यार्थी की प्रगति में घातक सिद्ध होगी। वस्तुतः प्रत्यक्ष विधि लक्ष्य को साधन बनाना चाहती है। हमारा लक्षित उद्देश्य है विद्यार्थी के मन में विदेशी शब्द तथा उससे बोधित भाव-वस्तु अथवा अनुभव का सीधा संबंध स्थापित कर देना। इस चरम लक्ष्य को अपने प्रयत्न के आरम्भ में ही अभ्यास करना अथवा इसी अवस्था में इसकी पूर्णता की आशा कर लेना उपहासास्पद है, न्यायसंगत नहीं।

प्रत्यक्ष विधि को सफल बनाने के उपाय--

इन सब त्रुटियों एवं दोषों के होते हुए भी प्रत्यक्ष विधि आधुनिक विदेशी भाषा के शिक्षण में रूस, योरुप तथा पूर्वी देशों में सफलतापूर्वक प्रयोग की जा रही है। यह अल्पवयस्क तथा प्रौढ़ दोनों प्रकार के विद्यार्थियों के लिये उपयुक्त पाई गई है और जहाँ कहीं तुलनात्मक परीक्षण हुए हैं वहाँ परिणाम इसी विधि के पक्ष में प्राप्त हुए हैं। अतएव इस विधि को सफलतापूर्वक कार्यान्वित करने के लिये आवश्यक परिस्थितियाँ जान लेनी चाहिएँ।

सर्वप्रथम तो यह आवश्यक है कि कक्षाएँ छोटी हों अर्थात् विद्यार्थियों की संख्या ... या २५ हो, इससे अधिक नहीं, जिससे ह... तथा अभ्यास मिल सके। दूस... ...तृभाषा की सुपर्याप्त ... चुके हों। उनके ...त वे पुष्ट हो ...ख हों या ...ों। जिनमें ... कक्षा के ...धिक ...देशी ... सौंपा

Lecture VI
...son & Wyatt : The Teaching of ...
Chapter III
De Glehn : Teaching of Modern For...
(in Adams (Ed.) The New ...
Morris : The Teaching of English as ...
Language. Chapter VII
Mehta : Teaching of English in India.
Chapter XI
Godfrey D' Souza : The Teaching of English.
Chapter IV

जाय जिन्होंने प्रत्यक्ष विधि के सिद्धान्तों तथा क्रियात्मक व्यवहार दोनों पक्षों में समुचित दीक्षा पाई हो। ऐसे शिक्षकों का एक आवश्यक स्वभावगत गुण यह है कि वे बालकों के स्तर पर उतर कर उनके साथ ही रह, बोल, सोच सकें और उनकी भावनाओं एवं अनुभूतियों से एकात्मता स्थापित रख सकें। इन आवश्यक आधारभूत परिस्थितियों के योग से प्रत्यक्ष विधि वस्तुतः विदेशी भाषा-शिक्षण की अतुलनीय विधि है [illegible] इन आदर्श परिस्थितियों के अभाव में इसकी त्रुटियाँ भी [illegible] स्वाभाविक हैं। और ऐसी दशा में अनुवाद-विधि या अन्य [illegible] के साथ हम समझौते का कोई रूप निकालना अधिक उपयुक्त समझेंगे न कि विशुद्ध प्रत्यक्ष विधि को ही अपनाना।

अनुवाद-विधि तथा प्रत्यक्ष विधि का समाहार--

यह बात तो मान ही लेनी पड़ेगी कि [illegible] जीवित भाषा का मुख्य आधार उसका मौखिक स्वरूप ही है। अतः [illegible] विदेशी भाषा के पाठ यथाशक्ति इसी मौखिक स्वरूप को [illegible] वाली प्रत्यक्षविधि पर ही आधारित हों। किन्तु यह भी ध्यान [illegible] कि प्रत्यक्ष विधि विधेयात्मक प्रणाली है न कि निषेधात्मक। पाठ से मातृभाषा के निराकरण-मात्र से ही सफलता नहीं हो जाती। [illegible] तक शिक्षक ने छात्रों के प्रत्युत्तरों को [illegible] रूप से ही उसी विदेशी भाषा के माध्यम से [illegible]ता-कला की दृष्टि से आ[illegible] [illegible]ली तब तक तो एक प्रकार से [illegible]फलता होती है और ऐसे किए गये कार्य में [illegible] है। प्रारम्भिक कक्षाओं [illegible] और न ध्यान ही जमता है, जिससे कार्य में प्र[illegible] गति की तीव्रत[illegible]जनक होती है। सभी शब्दों की व्याख्या प्रत्यक्ष अनुभव तथा सत्यत[illegible] की जा सकती और भाषा के सभी पक्षों को इस विधि के स्थलों पर [illegible] पढ़ाया जा सकता—उदाहरणार्थ अनुवाद की कला को ही। किन्तु इस विधि मौखिक पक्ष को प्रधानता देती है। भाषा कार्य में लिखित अभ्यास[illegible]धिक ठोस तथा सारगर्भित और तदुपरान्त पठन पक्ष माना जाता उपनि[illegible]वण-मूलक तथा वाणी-मूलक अनुभूतियाँ, दृष्टि-मूलक तथा गति-मूलक जा स[illegible]तियों से किसी भी माने में अधिक गहरी, मार्मिक अथवा आकर्षक [illegible]वान, या अर्थपूर्ण नहीं ठहराई जा सकतीं। भिन्न व्यक्तियों में भिन्न

विदेशी भाषा में ही किया जाय। इसी प्रकार वाक्य-रचना, मुहावरा या पारिभाषिक शब्द, क्लिष्ट भाववाचक पदों आदि को स्पष्ट करने के लिए भी मातृभाषा के तत्सम पदों का प्रयोग किया जा सकता है; किन्तु ऐसा अवसर यदाकदा ही उठना चाहिये और तत्रैव उसी क्षण समाप्त भी हो जाना चाहिए। इसका प्रवेश अभ्यास-अवस्था में कदापि न होने दिया जाय, वरना वह बहुत सा समय खपा लेगा जो विदेशी भाषा के प्रयोग में व्यय होना चाहिए था। प्रत्यक्ष विधि का यही परिवर्तित व्यवहारिक रूप उपलब्ध त्रुटि-पूर्ण परिस्थितियों में अधिक प्रभावोत्पादक सिद्ध होगा। ऐसा भले ही प्रतीत होता हो कि मातृभाषा का निरोध करके प्रत्यक्ष विधि राष्ट्रद्रोह करती है; परन्तु मातृभाषा सीखने की विधि का यथाशक्ति अनुकरण करके वह मातृभाषा की महत्ता को दृढ़ता-पूर्वक अङ्गीकार करती है और बुद्धिमत्तापूर्ण अनुकरण से बढ़कर श्रेष्ठता स्वीकृति का और कोई रूप नहीं।

तुलनात्मक अध्ययनार्थ ग्रन्थ-सूची

Champion : Lectures on Teaching English in India. Lecture VI

Thompson & Wyatt : The Teaching of English in India. Chapter III

De Glehn : Teaching of Modern Foreign Languages (in Adams (Ed.) The New Teaching)

Morris : The Teaching of English as a second Language. Chapter VII

Mehta : Teaching of English in India. Chapter XI

Godfrey D' Souza : The Teaching of English. Chapter IV

अभ्यासार्थ प्रश्न :-

(१) प्रत्यक्ष विधि की विशेषताओं का वर्णन करो। उसकी असफलता के क्या कारण हैं ?

(२) भारतीय स्कूलों में प्रत्यक्ष विधि को किस प्रकार सफल बनाओगे ?

(३) अनुवाद-विधि तथा प्रत्यक्ष विधि की तुलनात्मक समीक्षा करते हुए यह बताओ कि इन दोनों का समाहार किस प्रकार करोगे ?

अध्याय ७

अँग-परिवर्तन-विधि

प्रत्यक्ष विधि का विवेचन करके हमने देखा कि वह भाषा को कौशल (Skill) के रूप में मानती है, ज्ञान-मात्र के रूप में नहीं। इसीलिए उसमें अभ्यास द्वारा आदतें डालने पर विशेष ज़ोर दिया गया है। यह कार्य भाषा के मौखिक रूप का निरन्तर प्रयोग करते रहने से ही सिद्ध हो पाता है। अतएव विदेशी भाषा-शिक्षण का मुख्य आधार यही मौखिक कार्य ही समझा जाता है। बोलचाल की स्वाभाविक इकाई पूर्ण वाक्य है। कभी-कभी भले ही हम एक शब्द या दो-चार शब्द मात्र से पूर्ण वाक्य का भाव व्यक्त कर दें। अल्पवयस्क शिशु तथा बालकगण ऐसा अक्सर करते हैं। किन्तु फिर भी वास्तविक इकाई तो पूर्णवाक्य ही रहती है—अप्रकट रूप से। इससे प्रकट होता है कि अँग्रेज़ी-शिक्षण की सफल विधि अभ्यास-पूर्ण हो, जिसके द्वारा बालक भाषा के विविध नवीन रूपों का इतना अभ्यास करे कि वे सब उसे स्वाभाविक तथा स्वयं-चालित (Automatic) बन जायँ। और यदि इकाई पूर्णवाक्य हो तो इसका अर्थ हुआ कि अधिक से अधिक पूर्ण वाक्यों को इस प्रकार अल्पतम समय में अधिकृत करा देना ही विधि की सफलता का मापदण्ड हुआ। इस उद्देश्य की शीघ्र पूर्ति करने वाली एक अन्य विधि का प्रतिपादन फ्रेंच तथा रायबर्न महोदय ने किया है, जिसका नाम है, अँग-परिवर्तन-विधि (Substitution Method)। इस विधि की विशेषताएँ निम्नाङ्कित हैं।

सर्वप्रथम एक आधार वाक्य या आदर्श वाक्य ले लिया जाता है, जिसमें भाषा-प्रयोग या भाषा-रचना का कोई विशेष रूप समाविष्ट रहता है, जो विद्यार्थियों को सिखाना चाहते हैं। इस आदर्श वाक्य का यह विशेष रूप वाला अंग तो स्थायी अंग बन जाता है, शेष अन्य

अंग परिवर्त्तनीय होते हैं। स्थाई अंग को यथावत् रखते हुए एक-एक परिवर्तनीय अङ्ग को बारी-बारी से लेकर उनकी जगह उनके समानान्तर पद प्रयोग करते हुए एक ही ढाँचे और बनावट के अनेक वाक्य निर्मित कर लिए जाते हैं और उनका खूब अभ्यास किया जाता है। पहले तो एक समय में एक ही अङ्ग परिवर्तित करते हैं; किन्तु पर्याप्त अभ्यास हो चुकने पर एक साथ दो या तीन या इससे अधिक अङ्ग भी परिवर्तित किए जाते हैं और अन्त में स्थाई अङ्ग को छोड़ कर शेष सभी अङ्ग एक साथ परिवर्तित किए जाते हैं। इससे उस रूप का इतना अभ्यास हो जाता है कि वह अपने आप सही प्रयुक्त होने लगता है और साथ ही साथ बालक थोड़े समय में अनेकों वाक्य बोलने में समर्थ हो जाता है। आधार या आदर्श वाक्य को लेकर जो वाक्य-शृङ्खला बन जाती है उसे अङ्ग-परिवर्तन-तालिका कहते हैं। ऐसी अङ्ग-परिवर्त्तन-तालिकाएँ सैंकड़ों और हजारों की संख्या में प्रस्तुत भी की गई हैं। उदाहरणार्थ एक वाक्य लीजिए—

He Ought to Come to school इसमें उक्ति के अनुसार चार रचना-इकाइयाँ हैं (१) He (२) Ought to (३) come to (४) School। इकाई नं० २ यहाँ स्थायी अङ्ग है। बाकी तीनों इकाइयाँ परिवर्त्तनीय अङ्ग हैं। पहली इकाई को बदलने के लिए उसकी जगह I, We, You, They, Ram, Sita, Teacher, Student आदि शब्द प्रयोग किए जा सकते हैं, शेष वाक्य वैसा ही रहेगा। इसी प्रकार तीसरी इकाई को Go, Run, Walk, Proceed आदि द्वारा तथा चौथी को Market, Village, Station, Kanpur, आदि द्वारा। एक ही आदर्श वाक्य के आधार पर सैकड़ों वाक्य सहज ही निर्मित हो जाएँगे। कुछ में एक ही अङ्ग परिवर्तित होगा और कुछ में एक से अधिक। किन्तु स्थाई अङ्ग यथावत् सभी में विद्यमान होगा।

अङ्ग-परिवर्तन-विधि के गुण—

जैसा कि पूर्व ही बताया जा चुका है, यह विधि भाषा-शिक्षण के कक्ष

प्रामाणिक सिद्धान्तों को लेकर चलती है। अभ्यास इसका मूलमन्त्र है और करके सीखने का अवसर इसमें पग-पग पर प्रदान किया जाता है। सूक्ष्म क्रम-बद्धता (Five gradation) भी इसमें अन्तर्निहित है, जिससे बालक धीरे-धीरे सफलता प्राप्त करता हुआ रुचि तथा आत्मविश्वास-पूर्वक आगे बढ़ता है। भाषा को कौशल समझ कर अग्रसर होने के नाते यह विधि जीवित भाषाओं के शिक्षण के लिए अत्यन्त उपयोगी है। यह विधि अत्यन्त व्यवहारिक है और बालक इसमें रुचि भी लेते हैं। किसी नई सीखी हुई बात को तरह-तरह से बार-बार दोहराना उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। इस विधि में उस प्रवृत्ति की सन्तुष्टि का अवसर है—विशेषकर आरम्भिक कक्षाओं में यह विधि अधिक रुचिकर सिद्ध होती है, क्योंकि इसमें पुनरावृत्ति-जनित बालप्रिय लय ध्वनित होती है। इस विधि का अनुसरण अधिक सरल है। जहाँ प्रत्यक्ष विधि असफल हो जाती है, वहाँ अङ्ग-परिवर्तन-विधि आसानी से चलती रहती है—अतएव आरम्भ तो इसी विधि द्वारा अधिक अच्छा होगा। इस विधि द्वारा किए गए कार्य में कोई शङ्का या द्विविधा अवशेष नहीं रह जाती और हर एक पग बहुत ही दृढ़ता तथा निश्चयपूर्वक आगे बढ़ता है। इससे आरम्भ से ही अशुद्ध आदतों या गलत भाषा-प्रयोगों की सम्भावना समाप्त हो जाती है।

यह विधि भाषा कार्य के तीन पक्षों के लिए विशेषकर उपयुक्त सिद्ध होती है—(१) मौखिक कार्य (२) व्याकरण तथा मुहावरों सम्बन्धी कार्य तथा (३) सक्रिय शब्द-भण्डार का विस्तार। इन सब पक्षों में इसकी सफलता का मूल कारण है इस विधि में एकरूपता तथा अनेकरूपता के सिद्धान्तों का सुन्दर समन्वय। हर पद पर कुछ न कुछ नवीनता का समावेश होता रहता है, जो बालकों की जिज्ञासा तथा गति-शील ध्यान को आकर्षित करती रहती है। परन्तु हर पद पर पूर्वकृत कार्य का अधिकाँश पुनः दोहराया जाता है जिससे बालक का साहस तथा धैर्य छूटने नहीं पाता। नवीनता की मात्रा इतनी अधिक नहीं होती क बालक किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाय, और न इतनी कम ही होती है

कि उसे नीरसता का आभास होने लगे। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि इस विधि के द्वारा शिक्षण-कार्य सम्पन्न करने में सारा समय उसी विदेशी भाषा के बोलने, पढ़ने, सुनने तथा प्रयोग में व्यय होता है जिसे हमें सीखना है और जो सर्वथा न्यायसङ्गत है। इस प्रकार यह विधि पाठ्य-विषय को समुचित महत्व प्रदान करती है।

अंगपरिवर्तन-विधि के दोष—

यह विधि अत्यन्त एकाङ्गी तथा अपूर्ण है। पाठय पुस्तक, सहायक पुस्तक, गद्य, पद्य, लेख इत्यादि महत्वपूर्ण पक्षों की पढ़ाई में यह विधि नहीं व्यवहृत हो सकती। जिन पक्षों में व्यवहृत हो भी सकती है उनमें भी कुछ समय पश्चात् अत्यन्त नीरस और निर्जीव प्रतीत होने लगती है। यह आरम्भिक कक्षाओं तथा छोटी अवस्था के बालकों के लिए ही रुचिकर है। वस्तुतः यह विधि बड़ी बचकानी (Childish) सी है। कुछ प्रकार की वाक्य रचनाओं या मुहाविरों का अभ्यास करके ही भाषा पर अधिकार नहीं प्राप्त हो जाता, इससे जनित अधिकार-भाव अत्यन्त भ्रामक तथा घातक है। भाषा के यान्त्रिक पक्ष का परिचय-मात्र इससे प्राप्त होता है और वह भी अत्यन्त संकुचित तथा सीमित क्षेत्र के अंतर्गत! जितनी वाक्य-रचनाएँ बालक अधिकृत कर चुका है उससे भिन्न रचनाओं का सामना उसे पाठ्य पुस्तक में तथा दूसरों के भाषण में पद-पद पर करना पड़ेगा। और तब उसे कोई सहारा न होगा। अतः आत्म-शिक्षा की दृष्टि से यह विधि अत्यन्त हीन है। यह बालक को सर्वथा निस्सहाय बना देती है। जो कुछ क्रिया इस विधि में होती है वह निरर्थक है, क्योंकि उसमें सृजनात्मकता का अभाव होता है और तज्जनित आनन्द का भी। इस प्रकार की यांत्रिक विधि से साहित्य-रसास्वादन असंभव है। सुखद आश्चर्य (Pleasant Surprize) के अनुभव का यहाँ कोई क्षेत्र नहीं। अतएव नियमों के अनुरूप तथा सिद्धान्तों के अनुकूल होते हुए भी यह विधि निरर्थक है। न तो यह साधारण चतुर्मुखी उद्देश्य की ही पूर्ति करा सकती है और न उन व्यापक मानवतावादी उद्देश्यों की ही, जिनके लिए विदेशी भाषा सीखी और

सिखाई जाती है। अतः इसे आरम्भिक कक्षाओं में अन्य विधियों की पूरक की भाँति प्रयोग किया जा सकता है, विदेशी भाषा-शिक्षण का सर्वाधिकार इसे नहीं सौंपा जा सकता।

फ्रेञ्च का मत—

फ्रेञ्च नामक विद्वान ने इस विधि का विवेचन करते हुए कहा है कि इसकी मुख्य अच्छाई है "खेल-भाव" (Play Spirit) जिसका समावेश निम्न तथा उच्च सभी कक्षाओं में किया जा सकता है। उसका कथन है कि अङ्ग-परिवर्तन में नवीनता तथा जटिलता का कोई अन्त नहीं। अनेकों प्रकार के अभ्यास इस पर आधारित करके दिए जा सकते है और कक्षा में सभी के सक्रिय सहयोग के लिए इसमें स्थान है। कक्षा का हर एक विद्यार्थी एक या इससे अधिक नये वाक्य बनाने तथा बोलने का अवसर आसानी से पा जाता है तथा दूसरों के बनाए तथा बोले वाक्यों का अभ्यास भी करता है। अनुकरण तथा रचनात्मकता दोनों का सुन्दर समन्वय इस विधि में पाया जाता है; किन्तु यह सब होते हुए भी यह विधि कतिपय पक्षों में ही उपयोगी सिद्ध होती है। जैसे वाक्य-रचना, व्याकरण, मुहावरा आदि। शेष पक्षों के लिए अन्य विधियों का प्रयोग अपेक्षित है। अतः यह विधि अत्यन्त अपूर्ण है।

तुलनात्मक अध्ययनार्थ ग्रन्थ-सूची

Ryburn : Suggestions for the teaching of English in India.
Chapter III & Appendix II

French : The Teaching of English Abroad.

Harold E. Palmer : Colloquial English, Part I—100 Substitution Tables.

अभ्यासार्थ प्रश्न :—

संक्षेप में अंगपरिवर्तन-विधि का परिचय देते हुए भारत में अँग्रेज़ी-शिक्षण के लिए उसकी उपयुक्तता का निर्देश कीजिए।

अध्याय ८

डा० वेस्ट की नूतन विधि (West's New Method)

डा० वेस्ट का परिचय--

विदेशी भाषा-शिक्षण के विशेषज्ञों के मध्य डा० माइकेल वेस्ट का नाम हमारे लिये कई कारणों से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। एक तो वे प्रथम श्रेणी के शिक्षा-विशेषज्ञ हैं, जिन्हें न केवल शिक्षा-शास्त्र पर अधिकार ही है अपितु जिन्हें व्यवहारिक कार्य करने का अवसर तथा अभिरुचि दोनों पर्याप्त मात्रा में प्राप्त थे। विदेशी भाषा शिक्षण पर और विशेषकर भारतीय वातावरण में अँग्रेज़ी-शिक्षण पर डा० वेस्ट कृत गवेषणान्वेषण तथा परीक्षण कार्य अपने प्रकार का अग्रणी कार्य है और कई पक्षों में उसके समकक्ष कहलाने योग्य अब तक कोई दूसरा कार्य नहीं हो सका। डा० वेस्ट भारतवर्ष के शिक्षण-अधिकारी के रूप में विभिन्न पदों पर कार्य कर चुके हैं। वे बंगाल के शिक्षा-विभाग में शिक्षा-संचालक (D. P. I.) रह चुके हैं तथा ढाका यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर भी रह चुके हैं। भारतीय शिक्षा-समस्याओं का प्रत्यक्ष अनुभव करके उन्होंने अँग्रेज़ी-शिक्षण के प्रश्न पर प्रशंसात्मक गवेषणान्वेषण किया और उसके फलस्वरूप आज से प्रायः ३० वर्ष पूर्व उन्होंने इस समस्या पर कई पुस्तकें प्रकाशित कीं-कुछ तो पाठ्य पुस्तकें तथा कुछ शिक्षण-विधि सम्बन्धी। साथ ही अँग्रेज़ी-शिक्षा की एक विशेष विधि नूतन विधि (New Method) नाम से प्रचलित की। इस प्रकार उन्होंने सैद्धान्तिक, व्यवहारिक तथा पाठ्य विषय तीनों प्रकार के उपयोगी प्रकाशन इस सम्बन्ध में किए। डा० वेस्ट की इन पुस्तकों में से निम्न विशेष उल्लेखनीय हैं :—

1. Learning to Read a Foreign Language (विदेशी भाषा को पढ़ने की विधि)

2. Learning to speak a Foreign Language (विदेशी भाषा को बोलने की विधि)

3. New Method Conversation Course (नूतन विधि वार्तालाप पाठ्य-पुस्तक)

4. New Method Dictionary (नूतन विधि शब्द-कोष)

5. How to Use New Method Conversation Course (नूतन विधि वार्तालाप पाठ्य पुस्तक को कैसे प्रयोग करें)।

6. Learning to speak by Speaking (बोलकर बोलना सीखना)

नूतन विधि के मूल तत्व--

भाषा-कार्य के विविध पक्षों का विवेचन करने पर डा० वेस्ट ने निश्चय किया कि दो पक्षों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है, प्रथम तो पठन-क्रिया और द्वितीय मौखिक कार्य। उनके मत में भारतीय बालकों को अँग्रेजी का पढ़ना सीखने की अत्यधिक आवश्यकता है—स्वरित पढ़ना नहीं प्रत्युत मौन-पठन, वह भी प्रयोजन-पूर्ण। अतएव शिक्षक का ध्यान इस प्रकार के मौन-पठन की क्षमता उत्पन्न कर देने की ओर केन्द्रित हो। शीघ्रतम सम्भव समय में बालक में सुगमता तथा आनन्द-पूर्वक पढ़ने की योग्यता उत्पन्न कर दी जाय। उन्होंने यह भी स्पष्ट रूप से कहा है कि किसी भाषा को पढ़ना सीख लेना उसका लिखना तथा बोलना सीखने की सर्वोत्तम तथा सर्वसुगम विधि है। पढ़ना सीखने के लिये उन्होंने नूतन विधि पाठ्य पुस्तकों की श्रृंखला प्रकाशित की जो निम्न सिद्धान्तों पर आधारित थी—

(१) उनमें संकलित विषय-वस्तु अत्यन्त रोचक थी।

(२) शब्द अत्यन्त सावधानी से छाँट कर प्रयोग किये गये थे।

(३) साधारणतया अधिक बार प्रयुक्त होने वाले शब्दों को प्रथम स्थान दिया गया था।

(४) नये शब्दों को कई बार दोहराया गया था ।

(५) नये शब्दो के अर्थ स्पष्ट करने में रोचक स्थूल सहायक सामग्री का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया गया था ।

(६) मातृभाषा का प्रयोग वर्जित नहीं किया गया तथापि न्यूनतम मात्रा में ही माना गया ।

(७) एक समय में थोड़े से नये शब्द प्रयोग किए गये और शब्द-भण्डार अत्यन्त सीमित रक्खा गया जिससे भावबोध की प्रगति शीघ्र तथा एक सम हो ।

(८) नये शब्दों का विभाजन यथाशक्ति सभी पृष्ठों में समान मात्रा में किया गया ।

इन पाठ्य-पुस्तकों का समुचित प्रयोग करने के लिये शिक्षकगण को सहायतार्थ एक सहायक पुस्तक भी उन्होंने प्रकाशित की ।

नूतन विधि में मौखिक कार्य—

डा० वेस्ट का विचार है कि पठन-क्रिया तो बिना किसी पूर्ववर्ती आरम्भिक मौखिक कार्य या लेखन-कार्य के ही सीखी जा सकती है; किन्तु इतना वे अवश्य मानते हैं कि साधारणतया पठन-क्रिया में आन्तरिक वाणी अवश्य ध्वनित होती रहती है और आरम्भ से ही छात्र कुछ न कुछ सस्वर पाठ अवश्य करेगा । इसके साथ ही साथ मौन पाठ के लिये तैयारी के रूप में किया गया कुछ मौखिक कार्य मौन-पठन की क्रिया को वास्तविकता का पुट प्रदान करता है । डा० वेस्ट के मत में पठन-क्रिया तथा मौखिक कार्य में पृथक-पृथक अभ्यास देने की आवश्यकता है; क्योंकि इन दोनों क्रियाओं तथा इनमें सम्बन्धित योग्यताओं में पर्याप्त भिन्नता है । अतः डा० वेस्ट ने उन शिक्षकों की सुविधा के लिये अलग पाठ्य-पुस्तक तैयार की जो सर्वप्रथम मौखिक कार्य से आरम्भ करना चाहें न कि पठन-क्रिया से । इन दोनों क्रियाओं की भिन्नता को लक्षित करते हुए उन्होंने निम्न भाव व्यक्त किये :—

(१) किसी भी भाषा का पढ़ना सीख लेना उसे बोलना सीखने की अपेक्षाकृत सरल और सुगम है ।

(२) इन दोनों क्रियाओं से सम्बन्धित शब्द-भण्डार भी भिन्न-भिन्न होता है।

(३) इन दोनों क्रियाओं में दक्षता प्रदान करने के लिए भिन्न-भिन्न युक्तियाँ प्रयुक्त करनी पड़ती हैं।

(४) "वैशैषिक अभ्यास" (Specific Practice) के सिद्धान्त के अनुसार एक समय में एक ही योग्यता को विकसित करने पर ध्यान केन्द्रित किया जाय न कि दोनों को एक साथ।

(५) बोलने की योग्यता विकसित करने के लिये विशेष अभ्यास की आवश्यकता पड़ती है, पठन-क्रिया का तो चाहे बालक अपने आप अभ्यास कर ले।

डा० वेस्ट ने बोलचाल का शब्द-भण्डार ११५८ शब्दों में सीमित किया जो दो प्रकार के थे। एक तो विषय-वस्तु वाचक शब्द (Content Words) जिनके विषय में बातचीत की जाय। और दूसरे सहायक या पूरक शब्द (Form Words) जिनकी सहायता से बातचीत की जाय। डा० वेस्ट ने शिक्षक के लिए जो सहायक पुस्तक लिखी है उसमें यह पूर्ण विवरण सहित स्पष्ट कर दिया है कि किस प्रकार शब्द-ज्ञान पुष्ट किया जाय और किन-किन तरकीबों से कोई नया शब्द स्पष्ट किया जाय कि विद्यार्थी से सक्रिय प्रत्युत्तर प्राप्त होता रहे। साथ ही उन्होंने यह भी व्यक्त किया है कि किस प्रकार पठन-क्रिया के द्वारा शब्द-ज्ञान तथा शब्द-प्रयोग में विद्यार्थी को अभ्यस्त करके उसके मस्तिष्क में शब्दावली स्थिर कर दी जाय और किस प्रकार मौखिक कार्य से लिखित कार्य को सम्बन्धित किया जाय। उनके मत में लेखन-कार्य तथा विधिवत् व्याकरण भारतीय बालकों के लिए उपयोगी नहीं है। अतएव इन पक्षों के शिक्षण के विषय में वे पूर्णतया मौन ही रहे।

नूतन विधि के गुण--

उपर्युक्त विवेचन में हमने देखा कि डा० वेस्ट ने अपनी नूतन विधि में पठन-क्रिया को सर्वप्रथम स्थान दिया। मनोविज्ञान तथा शिक्षाशास्त्र

की दृष्टि से ऐसा करना युक्तिसंगत है। पठन-क्रिया आत्म-शिक्षा का साधन है। इस क्रिया में अभ्यास के अनन्त अवसर प्राप्त होते हैं जो स्वाभाविक तथा मितव्ययपूर्ण भी हैं, अतः व्यावहारिक भी। इस क्रिया के द्वारा साहित्य से शीघ्रतम परिचय हो जाता है। इस क्रिया में सभी को सफलता प्राप्त हो जाती है; क्योंकि भाषा-योग्यताओं में यही सबसे सरलतम है। अतः यह क्रिया कम प्रतिभावान् बालकों को भी संतुष्टि के साधन प्रस्तुत करती है, केवल प्रतिभाशाली वर्ग-मात्र के लिए ही नहीं। और सबसे बड़ी अच्छाई तो यह है कि सभी लोग एक साथ यह कार्य कर सकते हैं, अपनी-अपनी गति से तथा बिना शिक्षक का कार्यभार बढ़ाये हुए। तिस पर इस क्रिया के सीख लेने से अन्य प्रकार के भाषा-कार्यों में भी सहायता मिलती है। इस विधि का दूसरा मुख्य गुण है इसकी व्यावहारिकता। परिस्थिति की सीमाओं का पूरा ध्यान रखते हुए उद्देश्य को सर्वथा प्राप्य रूप में ही स्थिर किया है—स्वतन्त्र पढ़ने की क्षमता उत्पन्न कर देना। इसके लिए नियत शब्द-भण्डार को लेकर अग्रसर होना भी एक अत्यन्त ठोस और वास्तविकतावादी क़दम है। वस्तुतः यह विधि शास्त्रीय सिद्धान्तों से नहीं प्रत्युत व्यावहारिक अनुभव से ही उत्पन्न हुई है और उसका एक एक पद उपयुक्त पुस्तकों को पढ़ा-पढ़ा कर परीक्षणों द्वारा जाँचा हुआ है। कोई आश्चर्य नहीं जो यह व्यावहारिकता की कसौटी पर इतनी खरी उतरे।

पठन-क्रिया तथा बोलने में पृथक-पृथक अभ्यास का प्रतिपादन करके यह विधि वैशेषिक अभ्यास को मान्यता देती है जो सही सिद्धान्त है तथा मनोवैज्ञानिक खोजों से समन्वित है। भाषा को कौशल के रूप में मानने के कारण यह जीवित भाषाओं के लिए विशेषकर उपयुक्त है। अपने देश की शिक्षाव्यवस्था से ही उत्पन्न होने के नाते यह विधि अपरिवर्तित रूप में ही ग्रहणीय है। मातृभाषा का यथोचित प्रयोग करने में यह विधि सङ्कोच नहीं करती अतः इसे राष्ट्रीय विचारों वाले लोग भी सहज ही स्वीकार कर सकते हैं। विधिवत व्याकरण का निराकरण करके यह विधि भाषा शिक्षण के अत्यन्त नीरस तथा दूषित पक्ष से छुट-

कारा पा जाती है, जिससे इस विधि से भाषा-शिक्षण अरुचिकर नहीं होने पाता। साथ ही सभी प्रकार के साधारण शिक्षक भी इस विधि का अनुसरण बिना कठिनाई के कर सकते हैं।

नूतनविधि के दोष--

यह विधि पठन-क्रिया को अनुचित महत्व प्रदान करती है और अन्य प्रकार के भाषा-कार्यों में सहायक के रूप में भी अनुचित श्रेय देती है। वस्तुतः बिना लिखित पक्ष तथा मौखिक पक्ष से पूर्व परिचय किए पठन-क्रिया असम्भव है। यह तो भाषा के विविध पक्षों के समन्वित तथा संयुक्त होने की बात है, न कि विविध क्रियाओं के सापेक्ष महत्व की। भाषा के निष्क्रिय पक्ष तक ही उद्देश्य को सीमित करके यह विधि मानवतावादी उद्देश्यों तथा चतुर्मुखी उद्देश्यों की भी अवहेलना करती है, अतएव हेय है। लिखित पक्ष, व्याकरण पक्ष तथा रसास्वादन पक्ष की अपेक्षा करके यह बहुत अधूरा कार्य सम्पन्न कर सकेगी। इस दृष्टि से यह विधि अत्यन्त अपूर्ण है। इस विधि में भाषा-शिक्षण कार्य को अत्यन्त यान्त्रिक समझा गया है। शिक्षक की मौलिकता तथा कला-कुशलता के लिए कोई स्थान नहीं और वस्तुतः उसकी योग्यता पर विश्वास भी नहीं। तभी तो डा० वेस्ट ने स्वयं सभी कार्य सम्पन्न करके शिक्षक को पकापकाया भोजन प्रदान करने की चेष्टा की है। उन्होंने अपने अनुभवों को भाषा-शिक्षण का अन्तिम शब्द मान लेने की भूल की है और आगे परीक्षण तथा गवेषणान्वेषण अनावश्यक समझा है। जो महत्व शिक्षक को देना चाहिए था वह पाठ्य-पुस्तक को दे डाला है और शिक्षक को शब्द-शब्द पर नियम-बद्ध कर दिया है। शिक्षा-कला की दृष्टि से यह सब आपत्तिजनक है।

डा० वेस्ट का यह अनुमान भी ग़लत है कि अँग्रेज़ी बोलना अँग्रेज़ी पढ़ने की अपेक्षाकृत अधिक कठिन है। बोलना स्वाभाविक क्रिया है जब कि पढ़ना कृत्रिम, यद्यपि विदेशी भाषा के लिए तो दोनों ही कृत्रिम हैं। डा० वेस्ट का तात्पर्य शायद वक्तृता या व्याख्यान से है न कि साधारण बोलचाल से। अँग्रेज़ी या किसी भाषा की भी साधारण बोलचाल पढ़ने

की अपेक्षा कम कष्ट-साध्य है। और फिर इन दोनों पक्षों को पूरी तरह पृथक करना भी असम्भव है। वे एक दूसरे में अन्तर्निहित हैं। पृथक करने में कृत्रिमता है। सफल भाषा-पाठ में प्रायः सभी प्रकार के भाषा-कार्य साथ-साथ सम्पन्न होते रहते हैं। कम से कम आरम्भिक कक्षाओं में तो इस तरह का प्रथक्करण घातक ही सिद्ध होगा।

वस्तुतः डा० वेस्ट की नूतन विधि परिस्थिति-जन्य होने के कारण उसके दोषों से ओत-प्रोत है। उनके समय में बङ्गाल प्रान्त की शिक्षा-व्यवस्था की प्रारम्भिक दो कक्षाओं में जिनमें अँग्रेज़ी आरम्भ की जाती थी बहुत अधिक संख्या में विद्यार्थी होते थे। प्रशिक्षित अध्यापक बहुत कम संख्या में थे और वे उच्च कक्षाओं में ही कार्य करते थे। अतः निम्न कक्षाओं में भाषाकार्य के निष्क्रिय पक्ष को प्रधानता दी गई, जिससे साधारणतया शिक्षक पर कार्य-भार कम रहे और अप्रशिक्षित होने पर भी वह कार्य सम्भाल ले। इस प्रकार परिस्थिति के वशीभूत होकर डा० वेस्ट ने अपनी विधि को इस रूप में रक्खा; किन्तु यह अनुचित है। परिस्थिति का सुधार न करके गलत क्रियाविधि अपनाना कोई बुद्धिमानी नहीं अपितु पराजयवादी मनोवृत्ति है।

इन सब दोषों का आरोपण नूतन विधि पर करते हुए भी हमें यह तो मानना ही पड़ेगा कि डा० वेस्ट का कार्य भारत में अँग्रेज़ी-शिक्षण के इतिहास का चिरस्मरणीय पृष्ठ रहेगा और आगे किए जाने वाले गवेषणा के कार्य को सदैव इससे प्रेरणा तथा उत्साह मिलेगा।

पूर्ण विधि (Complete Method)--

इस प्रकार हमने देखा कि अनुवाद-विधि व्याकरण तथा लिखित कार्य को प्रधानता देती है, प्रत्यक्ष विधि मौखिक कार्य को, अङ्ग-परिवर्तन-विधि वाक्य-रचना तथा मुहावरे को और नूतन विधि पठन-क्रिया को। किन्तु इन सभी में अनेक दोष विद्यमान हैं। अतः टामसन तथा वायट महोदय ने पूर्णविधि (Complete Method) का प्रति-पादन किया है, जिसके द्वारा विदेशी भाषा-शिक्षण के सभी उद्देश्यों की

ठीक से पूर्ति हो सके और साथ ही साथ भाषा-कार्य के सभी पक्षों को समुचित स्थान मिल सके। इसके आधारभूत सिद्धान्त निम्नांकित हैं—

(१.) सर्वप्रथम अँग्रेज़ी सुनने का अभ्यास हो तदुपरान्त अँग्रेज़ी बोलने का अभ्यास।

(२) अँग्रेज़ी बोलने के अभ्यास के उपरान्त ही लिखने की क्रिया सीखी जाय।

(३) अँग्रेज़ी बोलना अँग्रेज़ी पढ़ने से पूर्व ही आरम्भ करना होगा और अधिकाँश भाषा तथा पाठ्य-विषय-वस्तु का बोलचाल में अभ्यास कर लिया जायगा।

(५) किन्तु तत्पश्चात् अवस्था में पठन-क्रिया के द्वारा बोलचाल अर्थात् मौखिक-कार्य तथा लिखित-कार्य दोनों के लिए भाषा तथा भाव या विषय-वस्तु प्राप्त हो सकेंगे।

(५) उपयोगी व्याकरण के अंशों को बालक के सीखे हुए भाषा-कार्य के आधार पर पढ़ाया जाय।

इन लेखकों का मुख्य आशय यही है कि हमें किसी एक विधि को सर्वोत्तम समझ कर अपनाने की आवश्यकता नहीं। विभिन्न प्रकार के भाषा-कार्यों तथा परिस्थितियों को देखते हुए जो विधि उपादेय हो उसी का प्रयोग करना चाहिए।

तुलनात्मक अध्ययनार्थ ग्रन्थ-सूची

Michael West : Learning to Read a Foreign Language.

Michael West : Learning to Speak a Foreign Language.

Thompson & Wyatt : The Teaching of English in India. Chapter III

Morris : The Teaching of English as a Second Language. Chapter III

Bhatia & Bhatia : Principles and Practice of Teaching. Chapter XVI

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) डा० वेस्ट की नूतन विधि की क्या विशेषता है ? यह विधि भारत में सर्वमान्य क्यों नहीं बन सकी ?

(२) नूतन विधि में पठन-क्रिया तथा मौखिक कार्य का सापेक्ष महत्व स्पष्ट कीजिए। विशिष्ट अभ्यास-सिद्धान्त का परिचय देते हुए यह बतलाइये कि इन दोनों को पृथक-पृथक पढ़ाना क्यों आवश्यक माना गया ?

(३) अँग्रेज़ी-शिक्षण के लिये तुम कौन सी सामान्य विधि अपनाओगे और क्यों ?

तृतीय खण्ड

भाषण तथा पठन की शिक्षा

- भाषण तथा मौखिक कार्य की शिक्षा।
- मौखिक निबन्ध-रचना।
- शब्दोच्चारण की शिक्षा।
- पठन-क्रिया और उसका शिक्षण।
- पठन-क्रिया की शिक्षण-विधियाँ।
- विविध प्रकार के पठन।
- सस्वर पठन।
- मौन पठन।

अध्याय ६

भाषण तथा मौखिक कार्य की शिक्षा

भाषण-क्रिया का महत्व--

भाषण-क्रिया भाषा के अन्य सभी पक्षों से पहले अनुभव में आत
और इसीलिए शिक्षण में इसे प्राथमिकता मिलना स्वाभाविक
यों तो जो चतुर्मुखी उद्देश्य हमने स्थिर किया था, उसकी पूर्ति के
तथा पठन-क्रिया को सफलतापूर्वक सम्पन्न करने के लिए भाषण
शिक्षा आवश्यक ही है। परन्तु उच्चतर कक्षाओं में पहुँचने पर साहि
रसास्वादन या विशेषकर कविता, नाटक तथा वाद-विवाद का स
मूल्यांकन में, और साधारण साक्षात् मौखिक विचार-विनिमय के
और साधन के रूप में भी भाषण की क्रिया अत्यन्त महत्वपूर्ण
होती है। जीवन में जितना कार्य भाषण तथा मौखिक बोलचाल
पड़ता है, उतना लिखित भाषा का नहीं। और भाषण कला व्यक्तित्व
विकास में जितना योग देती है, उतना शायद अन्य भाषा-क्रिया नहीं।

भाषण-शिक्षण की कठिनाइयाँ--

विदेशी भाषा में अत्यन्त सीमित अवसर उपलब्ध होने के
भाषण-क्रिया को कक्षा में स्थान देना अनिवार्य हो जाता है अन्य
इसके विकास का कोई स्थान नहीं प्राप्त होगा। कक्षा में भी
अवसर प्राप्त होता है उसकी असारता का दिग्दर्शन डा० वेस्ट ने भल
भाँति किया है। माना कि मौखिक पाठ में सभी बालकों ने भाग लिया
शिक्षक प्रश्न करता रहा और बालकगण एक-एक करके उत्तर
रहे। सारे घण्टे में यही क्रम अबाधरूप से चला। तो ३० छात्रों
कक्षा में ४५ मि० के घण्टे में यदि आधा समय शिक्षक के प्रश्नों में ग
तो हर बालक को $\frac{४५}{३०} \times \frac{१}{२} = \frac{३}{४}$ मि० मिला। यदि सप्ताह में ४ घ

मौखिक कार्य को दिए गए तो ३ मिनट प्रति विद्यार्थी मौखिक अभ्यास हुआ। और ४० सप्ताह का शिक्षा-वर्ष मानकर २ घण्टे का मौखिक अभ्यास प्रतिवर्ष प्रति विद्यार्थी को मिल सका। ५ वर्ष के पाठन-क्रम में इसी गति से १० घण्टे का कुल भाषण-अभ्यास प्रति विद्यार्थी को अधिक से अधिक मिल सकेगा। वास्तविक परिस्थितियों में न तो ४५ मि० का घण्टा हो पाता है, न उसमें अखण्ड भाषण-क्रिया चल पाती है, न सप्ताह में चार घण्टे मौखिक कार्य को दिए जाते हैं, न तीस तक ही छात्र-संख्या सीमित होती है और न ४० सप्ताह के सभी मौखिक-कार्य के घण्टे छुट्टी से अछूते ही छूट पाते हैं। ऐसी दशा में १० घण्टे की अवधि भी बहुत कुछ कम कर देनी पड़ेगी। अभ्यास की यह नगण्य अवधि किसी को बोलने में क्या कुशलता प्रदान कर सकती है?

यह सबकुछ माना। परन्तु ध्यान रहे कि केवल यही एकमात्र अवसर उपलब्ध है तो उपाय ही क्या है! और फिर १० घण्टा अखण्ड भाषण-अभ्यास कुछ कम नहीं। दूसरी बात यह है कि ध्यानपूर्वक सुनने की क्रिया भी बोलने की क्रिया की ही पूरक है। वस्तुतः अधिकांश समय इस प्रकार के श्रवण के साथ-साथ आन्तरिक भाषण भी चलता ही रहता है। अतएव भाषण का अभ्यास पूरे पाठ-भर होता रहता है, उसके नगण्य अंश भर ही नहीं। टामकिनसन महोदय ने भाषण-क्रिया को कक्षा में स्थान देने पर बहुत जोर दिया है। उनका कथन है कि बालक बोल कर ही बोलना सीखेगा, और वह बोलेगा तभी जब श्रोतागण उसके ही समवयस्क एवं साथ के हों, इसीलिए कक्षा ही इस कार्य के लिए सर्वोत्तम स्थान है।

उपयोगी सिद्धान्त—

इस प्रकार भाषण तथा मौखिक-कार्य का शिक्षण अनिवार्य पाकर डा० वेस्ट ने कुछ बहुमूल्य परामर्श दिए हैं जो मौखिक पाठ को सफल बनाने के लिए जान लेने चाहिएँ।

(१) शिक्षक भाषण का एकाधिकार न ले; बल्कि कम से कम बोल कर बालकों को अधिक से अधिक बोलने की प्रेरणा देता रहे।

(२) सभी विद्यार्थियों को समान रूप से बोलने का अभ्यास एवं अवसर प्रदान किया जाय और उनकी योग्यता के अनुकूल ही उनसे कार्य लिया जाय।

(३) शोधन या अशुद्धियों के सुधार में अधिक समय न व्यय किया जाय। कम से कम समय में शुद्धियाँ करदी जायें।

(४) भाषण या मौखिक पाठ की गति तीव्र हो और समय व्यर्थ गँवाने वाले मध्यान्तर (gaps) न आने पावें।

(५) कमज़ोर छात्रों पर अत्यधिक ज़ोर कक्षा में न दिया जाय, उन्हें अतिरिक्त समय में अभ्यास करने को प्रेरित किया जाय।

(६) रुचि को बढ़ाने के लिए विशेष युक्तियों का सहारा लिया जाय जिससे श्रवण-क्रिया वस्तुतः आन्तरिक भाषण से युक्त हो।

विभिन्न प्रकार के मौखिक पाठ—

विभिन्न लेखकों ने अनेकों प्रकार के मौखिक पाठों का सुझाव दिया है। उन्हें जटिलता तथा कठिनाई की दृष्टि से क्रमबद्ध करने तथा वर्ग-बद्ध करने के भी प्रयास किए गए हैं। किन्तु मौखिक पाठों की कोई श्रृङ्खलाबद्ध सूची प्रस्तुत कर देना आसान नहीं। टामकिनसन ने चार प्रकार के मौखिक पाठ बतलाए हैं—(१) प्रश्नोत्तर (२) प्रत्यक्ष मौखिक वर्णन (३) स्मृति से मौखिक वर्णन (४) अभिनय। यह चारों श्रेणियाँ बड़ी व्यापक मानी जाएँगी, उदाहरणार्थ-तीसरी श्रेणियों में पाठ्य पुस्तक-सम्बन्धी सभी मौखिक कार्य अन्तर्निहित है तथा अभिनय के अन्तर्गत वादविवाद, कथा-रचना के खेल आदि सभी सम्मिलित हैं। साधारण कथोपकथन, नाटकीय वार्तालाप, कण्ठाग्र की हुई कविता आदि सुनाना, मौखिक निबन्ध-रचना, कथावार्ता, लघुजन-वार्ताएँ (Little-men's Lectures) 'कहो और करो विधि' से कार्य-श्रृङ्खला, अभिनय आदि मौखिक पाठों के रूप में प्रयुक्त किए जा सकते हैं। इनमें से कौन

सी क्रिया किस कक्षा के योग्य है इसका निर्णय तो कक्षा की योग्यता एवं परिस्थिति देख कर शिक्षक ही कर सकेगा। वस्तुतः सर्वोत्तम मौखिक पाठ वही कहा जाएगा, जिसमें बालकों को सब से अधिक बोलने का अभ्यास हो सके।

मौखिक निबन्ध-रचना--

इन विविध प्रकार के मौखिक पाठों के मध्य मौखिक निबन्ध रचना का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। इसमें प्रायः सभी प्रकार के मौखिक पाठों का साररूप आजाता है। अतः इसी पर विशेष ध्यान-पूर्वक विचार करने की आवश्यकता है। अँग्रेज़ी-शिक्षण के अन्य महत्त्वपूर्ण पक्षों की भाँति यह भी अत्यन्त विवाद-ग्रस्त है। बैलार्ड ने कहा है कि पिछली पीढ़ी के अध्यापकों को तो मौखिक निबन्ध-रचना जैसे पाठ का आभास ही न था। इस समय के शिक्षक मौखिक निबन्ध-रचना से तो परिचित हैं; किन्तु उसे उपयोगी बनाने की कला से अनभिज्ञ हैं। इसके विषय में कई भ्रान्तियाँ प्रचलित हैं—

(१) मौखिक निबन्ध लिखित की अपेक्षा अधिक आसान है।

(२) इसका कोई निजी अस्तित्व नहीं है प्रत्युत लिखित निबन्ध के तैयारी-मात्र का पाठ है।

(३) इसके लिए पूर्व तैयारी की आवश्यकता ही नहीं—न तो अध्यापक को और न छात्रों को।

(४) धीरे-धीरे उच्च कक्षाओं में जाकर मौखिक निबन्ध लिखित के द्वारा स्थानापन्न हो जाएगा। इन भ्रान्तियों के कारण मौखिक निबन्ध का पाठ सफल नहीं हो पाता। न तो उससे अभ्यास ही मिलता है और न आनन्द ही। चैम्पियन महोदय ने भी लिखा है कि यद्यपि सभी शिक्षक यह मानने लगे हैं कि छात्रों की निबन्ध-रचना के प्रथम प्रयास मौखिक ही होने चाहिएँ तथापि वे तदुपरान्त अवस्थाओं में इसकी महत्ता से सर्वथा अपरिचित हैं। अतः इस प्रकार पाठ को सफल बनाने के लिए उसके महत्त्व तथा उद्देश्य को समझ लेना आवश्यक है।

मौखिक निबन्ध-रचना के उद्देश्य--

मौखिक निबन्ध पाठ का उद्देश्य है, बालकों को भाषण-पटु बनाना। ऐसा अभ्यास देना कि वे तत्परता-पूर्वक, निर्भयता-पूर्वक, स्पष्टता-पूर्वक स्वाभाविकता-पूर्वक, तार्किकता-पूर्वक, प्रवाह-पूर्वक, प्रभाव-पूर्वक शुद्ध भाषा तथा उच्चारण सहित लगातार कुछ बोल सकें। हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं अनुभव करना चाहिए कि विदेशी भाषा के रूप में अँग्रेजी पढ़ाते हुए भी मौखिक निबन्ध पाठ के उद्देश्य दोनों है—शिष्ट वार्तालाप अथवा साधारण मौखिक आदान-प्रदान का अभ्यास तथा विधिवत् वक्तृता, व्याख्यान तथा वाद-विवाद का भी अभ्यास। इस प्रकार का उद्देश्य कोई हेय नहीं प्रत्युत स्वयं अपने आप में श्लाघ्य तथा मूल्यवान है।

मौखिक निबन्ध के गुण--

यह तो प्रायः सभी को मान्य है कि मौखिक निबन्ध कम से कम लिखित निबन्ध के लिए बहुत सुन्दर तैयारी है और इस दृष्टि से लिखित के पूर्व ही मौखिक निबन्ध का स्थान है। मौखिक निबन्ध से भाषागत अभिव्यक्ति अत्यन्त स्वच्छन्द, स्वाभाविक, इच्छानुरूप तथा प्रत्यक्ष बन जाती है। उसमें सरलता, सुबोधता तथा प्रभावोत्पादकता का समावेश हो जाता है। अतः आरम्भिक श्रेणियों में तो इसी को अधिकांश समय देना चाहिए। जीवन-विज्ञान, शरीर-क्रिया-विज्ञान तथा मनोविज्ञान की दृष्टि से यह अधिक मितव्ययपूर्ण तथा सरल है। बोलना मानव-जाति का स्वाभाविक गुण है और वाणी सम्बन्धी अंग अधिक शीघ्रता-पूर्वक परिपक्व होते हैं। सर्वप्रथम भाव-अभिव्यक्ति मौलिक ही होती है। इस प्रकार के पाठ में बिना कार्यभार बढ़ाए ही पर्याप्त मात्रा में अभ्यास दिया जा सकता है। सक्रिय तथा निष्क्रिय दोनों का भाषा-कार्य इस पाठ में स्थान पा जाता है और दोनों का अभ्यास एक साथ होता है। जब एक बोलता है तो अन्य लोग सुन कर समझते हैं।

इस प्रकार के पाठ से ध्यान की एकाग्रता तथा सावधानी की आदतें पड़ती हैं। जैसा बेकन ने कहा है, वार्तालाप मनुष्य को तत्पर बनाता है।

विदेशी-भाषा, शिक्षण को ऐसा पाठ सजीव एवं रोचक तथा आकर्षक बना देता है। सारा वातावरण नाटकीय बन जाता है तथा बालक उसमें सरसता एवं आनन्द का अनुभव करने लगता है। अन्य पाठों की अपेक्षाकृत मौखिक निबन्ध का पाठ खेल-विधि की विविध युक्तियों के लिए अधिक उपयुक्त ठहरता है और इस भाँति यह पाठ शिक्षा-कार्य को आनन्दमय क्रिया के रूप में परिवर्तित कर देता है।

मौखिक निबन्ध के दोष--

मौखिक पाठ में किये गये कार्य में वह ठोसपन या समूर्त्तता नहीं आभासित होती जो लिखित कार्य में। यही दोष मौखिक निबन्ध के पाठ में भी पाया जाता है। कितना भी प्रयत्न किया जाय इस प्रकार का कार्य अत्यन्त निस्सार तथा खिलवाड़-सा लगता रहता है और अन्त में ज्ञानार्जन या कौशल सिखलाने की भावना नहीं उत्पन्न हो पाती, जिससे निरर्थकता एवं उद्देश्य-हीनता का बोध करके बड़ी निरासा-सी होती है। न तो बालक के पास कोई समूर्त्त चिन्ह अवशेष रह जाते हैं, जिनके सहारे वह कुछ और कार्य सम्पन्न करता और न शिक्षक के लिए इस बात का कोई प्रमाण ही अवशेष रहता है कि अमुक विद्यार्थी ने सर्वथा निष्क्रिय रह कर समय व्यर्थ गँवाया। कामचोर विद्यार्थियों के लिए यह परिस्थिति बड़ी सुविधाजनक सिद्ध होगी और कामचोर अध्यापकों के लिये भी।

इस प्रकार किए हुए कार्य का ठीक मूल्याँकन भी नहीं हो पाता। इस पाठ में कमजोर विद्यार्थियों की गलतियाँ और कमजोरी सबके समक्ष खुल जाती है अतः वे संकोचवश भाग ही नहीं लेते। केवल प्रतिभावान विद्यार्थी अधिकाधिक भाग लेकर एकाधिकार जमा लेते हैं। कमज़ोर और भी कमज़ोर बनकर अधिक पिछड़ जाते हैं तथा कुछ में हीनता ग्रन्थि तथा कुछ में मञ्च-भय (Stage Fright) जैसे दुर्भाव उत्पन्न हो जाते हैं। अतः इस प्रकार का पाठ व्यक्तित्व के विकास में बाधक भी सिद्ध हो सकता है। और फिर सबसे बड़ी बात तो यह है कि यह पाठ व्यावहारिक नहीं है। वर्त्तमान परिस्थितियों में बालक एक भी शुद्ध अँग्रेज़ी वाक्य न तो बना सकते हैं और न बोल ही सकते हैं। ऐसी दशा में

मौखिक निबन्ध का पाठ चला लेना नितान्त असम्भव ही है। यदि भूलों पर ध्यान दिया जाय तो एक पग भी प्रगति न हो पायगी तथा शुद्धिकार्य जनित रोष तथा खिन्नता सारे उद्देश्य को ही विफल कर देगी। और यदि अशुद्धियों पर ध्यान न दिया गया तो गलत अनुभूतियों की पुनरावृत्ति अत्यधिक मात्रा में होगी, जिससे शुद्ध भाषा सीखने में बहुत बाधा होगी। अतः एक प्रकार से शिक्षक का तो "भई गति साँप छछूँदर केरी" वाली दशा रहेगी।

मौखिक अशुद्धियों का सुधार--

मौखिक कार्य में अशुद्धियों का सुधार लिखित की अपेक्षाकृत कुछ अधिक सावधानी एवं चतुराई से करना पड़ता है। यह वस्तु बड़ी जटिल समस्या है। यदि तत्काल सुधार किया जाय तो पाठ की स्वाभाविक प्रगति रुक जाती है और विद्यार्थी हतोत्साह एवं संकोचशील हो जाते हैं। और यदि तत्काल सुधार न किया गया तो अशुद्धियाँ जड़ जमा लेती हैं, जो भाषा-ज्ञान के अर्जन में बाधा उत्पन्न करने वाली स्थिति है। बैलार्ड ने इस विषय में कुछ परामर्श दिये हैं। रचनात्मक मौखिक पाठ में किसी वक्ता को रोक कर अशुद्धि-सुधार नहीं करना चाहिए और न व्यक्तिगत सुधार की चेष्टा करनी चाहिए। भूलों एवं गल्तियों को सूचीबद्ध रख कर किसी अन्य अवसर पर अव्यक्तिगत रूप से सुधार करना चाहिए। व्यक्तिगत छात्रों के मौखिक कार्य की अच्छाइयाँ सब के सम्मुख प्रशंसात्मक ढँग से बताना चाहिए; किन्तु उसके दोष अकेले में केवल उसी छात्र को बताना चाहिए। गल्तियों को संग्रहीत एवं वर्गीकरण करके सामान्य नियमों द्वारा सुधारने का प्रयास करना चाहिए। जब कभी व्यक्तिगत सुधार कक्षा के सम्मुख करना ही पड़े तो अच्छाइयों की प्रशंसा उसके साथ ही साथ अवश्य सम्मिलित कर देना चाहिए। दैनिक साधारण मौखिक कार्य की छोटी-मोटी अशुद्धियों को तत्काल अन्य विद्यार्थियों की सहायता से सुधार देना चाहिये। बहुतसी गल्तियाँ तो ऐसी होती हैं जो धीरे-धीरे अपने आप ठीक होती जाती हैं या छूट जाती हैं। ज्यों-ज्यों शुद्ध भाषानुभूतियों से परिचय बढ़ता जाता है, ये भूलें बालक स्वयं ही

छोड़ता जाता है, इनके लिए मौखिक पाठ में चिंतित होने की आवश्यकता नहीं। इस प्रक्रिया में सहायता पहुँचाने की दृष्टि से कक्षा में धारा-प्रवाह निरन्तर भाषण के लिए केवल अच्छे छात्रों को ही अवसर देना चाहिए। एकान्त में रिहर्सल करा लेना चाहिए। पहले से तैयार किए हुए भाषण देने का अभ्यास कराना चाहिए। इसमें अशुद्धियों का कम अवसर भी होता है और शुद्ध भाषानुभूतियों की मात्रा भी बढ़ती है।

तुलनात्मक अध्ययनार्थ ग्रन्थ-सूची

Greening Lamborn	:	Expression in Speech and Writing
Tomkinson	:	The Teaching of English in India. Chapters I, II & III
Ballard	:	Teaching and Testing English. Chapters I, II & V
Weaver, Borcher & Smith	:	The Teaching of Speech.
Stott	:	Language Teaching in the New Education. Chapter VIII & Appendix B
Godfrey D' Souza	:	The Teaching of English. Chapter XI
Morris	:	The Teaching of English as a Second Language. Chapter VIII
French	:	The Teaching of English Abroad, Book I. Chapter VI, Book II Chapter IV and Book III Chapter VII
Harold E. Palmer	:	The Oral Method of Teaching Languages.
Michael West	:	Learning to Speak a Foreign Language.

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) भाषण की शिक्षा देना क्यों आवश्यक है ? इसमें क्या कठिनाइयाँ हैं और उन्हें कैसे दूर करोगे ?

(२) शब्दोच्चारण पढ़ाने की विभिन्न विधियों का परिचय देते हुए यह बताओ कि तुम कौनसी विधि उपयुक्त समझते हो और क्यों ?

(३) भारतीय बालकों के अशुद्ध अँग्रेज़ी उच्चारण के क्या कारण हैं ? अपने विद्यार्थियों का उच्चारण किस प्रकार सुधारोगे ?

(४) अँग्रेज़ी में मौखिक निबन्ध-रचना की समस्याओं का वर्णन करते हुए वर्तमान परिस्थति में इस प्रकार के अभ्यास की उपयुक्तता पर प्रकाश डालिए ।

———

अध्याय १०

शब्दोच्चारण की शिक्षा

शब्दोच्चारण की समस्या—

भाषण या मौखिक-कार्य से सम्बन्धित सर्वप्रथम समस्या है शब्दोच्चारण सम्बन्धी। ध्वन्यात्मक लिपि न होने के कारण अँग्रेज़ी का शुद्ध शब्दोच्चारण-भारतीय विद्यार्थियों के लिए कठिन सिद्ध होता है। भाषा-ज्ञान में उच्चारण का महत्व कम नहीं। उच्चारण-मात्र से व्यक्ति के विषय में अनेकों बातें जानी जा सकती हैं—यथा उसकी वंश-परम्परा, शिक्षा-दीक्षा, आदतें, साथ-संगत आदि। अतः भाषा-शिक्षण में उच्चारण पर ध्यान देना ही पड़ेगा।

उच्चारण-शिक्षण की विधियाँ

उच्चारण-शिक्षण के लिए दो विधियाँ प्रचलित हैं। एक तो अनुकरण-विधि और दूसरी ध्वनिशास्त्र-विधि। अनुकरण-विधि में शिक्षक शुद्ध उच्चारण का आदर्श प्रस्तुत करके बालकों को उसी का सही अनुकरण करने का अवसर प्रदान करता है और उसी के लिए अभ्यास कराता है। जब कभी कोई नवीन शब्द आता है तभी यही क्रिया दोहराई जाती है, जिससे सभी शब्दों के उच्चारण में बालक अभ्यस्त हो जाता है।

अनुकरण-विधि के गुण—

यह विधि अत्यन्त सरल एवं व्यावहारिक है। इसके प्रयोग के लिए विशेष दीक्षा की आवश्यकता नहीं पड़ती। यह अत्यन्त स्वाभाविक तथा मनोवैज्ञानिक भी है। बालक तो अनुकरण करेंगे ही। उसी अनुकरण का नियमित रूप से प्रयोग करके यह विधि स्वाभाविक प्रवृत्ति पर ही

आधारित है। यह अत्यन्त स्फूर्तिदायक एवं प्रेरणापूर्ण विधि है। शिक्षक के द्वारा प्रस्तुत आदर्श का बालक सहज ही अनुकरण करना चाहते हैं, यदि खुले रूप से नहीं तो लुक-छिप कर। उनकी इस वृत्ति की तुष्टि बड़े रचनात्मक ढङ्ग से इस विधि द्वारा होती है। आपस में अच्छे बालकों के उच्चारण का अनुकरण भी कमजोर विद्यार्थी स्वभावतः करने लगते हैं, जिससे सामाजिकता की प्रवृत्ति और भी विकसित तथा दृढ़ होती है।

अनुकरण-विधि की कठिनाइयाँ—

वास्तविक अनुकरणीय आदर्श उच्चारण वाले शिक्षकों की बहुत कमी है और इस विधि में अत्यन्त शुद्ध उच्चारण वाले शिक्षकों की ही आवश्यकता है। अनुकरण करने वालों को व्यक्तिगत रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए; किंतु उनकी संख्या इतनी अधिक होती है कि शिक्षक बेचारा अकेले उन सब पर ध्यान दे ही नहीं सकेगा। इस विधि के द्वारा बालक में आत्मनिर्भरता तथा आत्मविश्वास नहीं आने पाता और वह आत्म-शिक्षा में असमर्थ रहता है। शिक्षक उसे हर समय तो प्राप्त नहीं रहेगा अतः यह विधि उसे बेसहारे ही छोड़ देती है। कठिन तथा जटिल ध्वनियों का अनुकरण भी बिना ध्वनि-उत्पादन-क्रिया जाने ठीक से नहीं सम्पन्न हो पाता, अतः अनुकरण के अलावा अन्य सहायक आवश्यक प्रतीत होता है। और सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि इस विधि के द्वारा उच्चारण का स्तर उत्तरोत्तर गिरता जायगा, क्योंकि अनुकरण आदर्श की अपेक्षाकृत अपूर्ण होगा। और कभी आगे चलकर यही अपूर्ण अनु-करण आदर्श का स्थान ग्रहण करेगा और तब उसका अनुकरण कुछ और भी अपूर्ण होगा। पीढ़ी दर पीढ़ी इस प्रकार शुद्ध उच्चारण का ह्रास होता जाएगा।

इन दोषों से मुक्ति पाने के लिए दो उपाय किए जा सकते हैं। एक तो भाषण यन्त्रों के प्रयोग द्वारा यथा ग्रामोफोन, लिंग्वाफ़ोन आदि। और दूसरा उपाय है अध्यापकों की वैशेषिक दीक्षा। ध्वनि-उच्चारण की

विद्या विदेशी भाषा के शिक्षकों को विशेष रूप से सिखाई जाय तथा उन्हें अंग्रेज़ी के शुद्ध उच्चारण में समर्थ बना दिया जाय ताकि वे वस्तुतः त्रुटिहीन आदर्श उच्चारण प्रस्तुत करें।

ध्वनि-शास्त्रविधि (Phonetics)—

इस विधि के द्वारा विविध ध्वनियों के उच्चारण की यंत्रविधि वास्तविक प्रदर्शन तथा चित्रों एवं माडलों द्वारा स्पष्ट करके, उन ध्वनियों का शास्त्रीय वर्गीकरण करके तथा उनके लिए प्रयुक्त होने वाले सङ्केताक्षरों से परिचय करा के शुद्ध शब्दोच्चारण का अभ्यास कराया जाता है। कण्ठ, जिह्वा, तालू, ओष्ठ, मूर्धा, दाँत आदि अंगों की सापेक्ष स्थिति तथा श्वांस-गति आदि स्पष्ट करने के लिए पुनः पुनः प्रदर्शन तथा व्याख्या का सहारा लिया जाता है। तब बताया जाता है कि कौन-कौन ध्वनियाँ किस प्रकार की हैं-अर्थात् कोमल, कठोर, दीर्घ, ह्रस्व, स्वरित, अनुनासिक मूर्धन्य, तालव्य, दन्त्य आदि आदि इन सबों के लिए प्रयुक्त होने वाले चिन्हों की एक अलग लिपि ही बन गई है, उदाहरणार्थ-तालव्य श के लिए S या 'pot' की ऑ ध्वनि के लिए ɔ या nut की अ ध्वनि के लिए ʌ आदि। इस प्रकार की ध्वनि शास्त्रलिपि (Phonetic Script) को अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता मिल गई है और साधारण साहित्य का कुछ प्रसिद्ध अंश इस लिपि में छापा भी गया है। इससे यह आशा की जाती है कि सभी भाषाओं के उच्चारण की एक सामान्य लिपि विश्व के सभी राष्ट्रों को एक भाषा-सूत्र में बाँध सकेगी।

ध्वनि-शास्त्रविधि के गुण—

जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है यह विधि उच्चारण-कला को वैज्ञानिक आधार देने का प्रयास है और इस क्षेत्र का नवीनतम प्रगति-पूर्ण चरण है। इस विधि से उच्चारण का स्तर एक सम बना रहता है। पीढ़ी दर पीढ़ी या गुरु-शिष्य के आदान-प्रदान में स्तर गिरने की सम्भावना नहीं रह जाती। उच्चारण को एक सार्वभौमिक मानस्तर देकर स्थायी बना देती है और एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में जाने पर उसके

परिवर्तन की आशंका नहीं रहती। इस विधि से उच्चारण सिखाने पर बालक अपने आप उच्चारण करना सीख जाता है और शब्द-कोष देख कर शुद्ध उच्चारण कर सकता है। इसे पद-पद पर शिक्षक की सहायता अपेक्षित नहीं रहती। आत्म-विश्वास-पूर्वक वह आत्म-शिक्षा के पथ पर अग्रसर होता है। इससे बालक की भाषानुभूति की गहराई और भी बढ़ जाती है और भाषा के मौखिक रूप के विषय में उसके विवेक और निर्णय तथा मूल्यॉंकन-शक्ति में वृद्धि होती है।

ध्वनिशास्त्र-विधि की कठिनाइयाँ—

यह अतिशय शास्त्रीय तथा पारिभाषिक है और फलतः सूक्ष्म तथा दुरुह भी। विशेषकर बालकों के लिए यह उपयुक्त नहीं; क्योंकि इतनी बारीकी से वर्गीकरण तथा संकेत-चिन्हों में ध्वनि-आरोपण विदेशी भाषा के मध्य एक और नई भाषा सिखलाने के समान हो जाता है, जिससे 'करेला और नीमचढ़ा' वाली कहावत चरितार्थ होती है। यह विधि तर्क-परक तथा विवेक-परक है न कि मनोवैज्ञानिक तथा अनुभव-परक—अतः इसका प्रयोग भाषा पाठ्यक्रम के अन्त में होना चाहिए न कि आरम्भ में। वैशेषिक होते हुए भी यह बड़ी नीरस तथा निर्जीव है और बालकों के लिए अरुचिकर। अतः इस विधि से उच्चारण पढ़ाने पर बालकगण सीखने में रुचि नहीं लेते और परिणाम अच्छा नहीं होता। वस्तुतः उच्चारण और भाषा तो एक कला है, विज्ञान नहीं। ध्वनि-विज्ञान जान लेने पर भी शुद्ध उच्चारण तथा भाषण कर लेना आवश्यक नहीं। ध्वनि-विज्ञान उच्चारण तथा भाषण, कला को स्थानापन्न नहीं कर सकता। उच्चारण तथा भाषण तो अनुकरण, अभ्यास अन्तर्दृष्टि तथा ऊहा द्वारा अधिक सीखा जाता है नकि तर्क द्वारा। अतः स्वयं भाषा विशेषज्ञों के ही मध्य इस बात पर मतभेद हैं कि ध्वनिशास्त्र भाषा-शिक्षण की आरम्भिक श्रेणियों में सिखाया जाय या नहीं—अतएव ऐसी संदिग्ध उपयोगिता वाली विधि को विद्यार्थियों के समक्ष प्रस्तुत करना आपत्तिजनक है।

अशुद्ध उच्चारण के कारण—

प्रायः देखा जाता है कि शिक्षक के निरन्तर प्रयास तथा बालकों के

अनवरत अभ्यास के उपरान्त भी उच्चारण में अशुद्धियाँ होती रहती हैं। इसके कई कारण हैं। एक तो बालक मातृभाषा सीख चुका होता है और उसी की ध्वनियों का उच्चारण करने का अभ्यस्त रहता है अतः विदेशी ध्वनियों को भी उन्हीं साँचों में ढालने लगता है और अधिकाँश विदेशी ध्वनियों का उच्चारण समीपतम मातृभाषा तत्सम ध्वनि के रूप में करता है। पूर्वार्जित आदतें नवीन अर्जन में बाधा डालती हैं और बालक अधिक कष्ट न उठा कर न्यूनतम अवरोध पथ का अनुसरण करता है। उच्चारण की कुछ अशुद्धियाँ बालकों की ध्यानहीनता तथा आलस्य के कारण होती रहती हैं और कुछ अशुद्ध आदर्शों के अनुकरण से भी। विशेषकर प्रथम अवसर पर कक्षा में, किये गये स्पष्टीकरण की ओर उदासीन या नितान्त अनुपस्थित रहने पर शब्दोच्चारण सम्बन्धी ध्वनि का चढ़ाव उतार या किसी अक्षर-विशेष पर ज़ोर या उसका लोप आदि स्पष्ट नहीं हो पाता। तदुपरान्त अवसरों पर हँसी होने के डर से पूछने में भी भय लगता है, जिससे आन्तरिक कमजोरी स्थिर हो जाती है और अशुद्ध उच्चारण स्वाभाविक हो जाता है। कुछ उदाहरणों में अभ्यास का अभाव भी उच्चारण की अशुद्धियों को जनित करता है। प्रथम स्पष्टीकरण के उपरान्त पर्याप्त मात्रा में अभ्यास तथा ड्रिल आवश्यक है। उच्चारण की कला निरन्तर करके ही सीखी जाती है, नियम-मात्र जान कर नहीं।

उच्चारण-सुधार के उपाय—

शुद्ध उच्चारण सीखने में अच्छे नमूने का अनुकरण करने से जितनी सहायता मिलती है उतनी किसी अन्य युक्ति से नहीं। अतएव यह परमावश्यक है कि उच्चारण के शुद्धतम नमूने विद्यार्थियों के समक्ष प्रस्तुत किये जायँ। इङ्गलैंड के शिष्ट समाज में जिस प्रकार भाषा का उच्चारण किया जाता है उसी प्रकार का नमूना बालकों के लिये हितकर होगा चाहे यह भले ही साधारण बोलचाल की उच्चारण ध्वनियों से कुछ भिन्न तथा पण्डिताऊ हो। नए शब्दों का प्रथम अवसर में ही पर्याप्त उच्चारण-अभ्यास कराया जाय। उसके ध्वनि-विन्यास का विवेचन करके मातृभाषा की तत्सम ध्वनियों से उसका अन्तर स्पष्ट कर देना चाहिए। जहाँ

अधिक कठिनाई हो और आवश्यकता समझी जाय वहाँ जिह्वा-चालकों (Tongue Twisters) का प्रयोग किया जाय। ये ऐसे वाक्य होते हैं जिनमें कठिन ध्वनि की अनेक बार पुनरावृत्ति हो। इनमें अभ्यास कर लेने से कठिन ध्वनि के उच्चारण के लिए वाणी खुल जाती है और स्वाभाविक रूप से अभ्यस्त हो जाती है। कक्षा के दैनिक पाठों में जब कभी उच्चारण की अशुद्धि हो तो तत्काल उसकी शुद्धि कराके शुद्ध रूप का अभ्यास कराया जाय।

इसके अतिरिक्त सीखे हुए शब्दों के शुद्ध उच्चारण की योग्यता जाँचने की परीक्षा भी यदा-कदा लेते रहना चाहिए। जिन लोगों का उच्चारण शुद्ध तथा अनुकरणीय हो उनकी प्रशंसा करके सामाजिक सम्मान देना चाहिए। बालकों में उच्चारण जानने की शब्दकोष-आदत जनित करनी चाहिए, इससे धीरे-धीरे उनकी शिक्षक पर निर्भरता समाप्त हो जायगी और वे आत्म-शिक्षा का मार्ग ग्रहण कर सकेंगे। उच्च कक्षाओं मे कुछ विशेष अँग्रेज़ी ध्वनियों के उत्पादन की यंत्रक्रिया स्पष्ट कर देना भी अनुचित न होगा, किन्तु निम्न कक्षाओं में वह व्यर्थ ही नहीं घातक भी सिद्ध हो सकता है। यदि लिंग्वाफोन जैसी यंत्र सामग्री प्राप्त हो सके तो उसके अभ्यास से न चूकना चाहिए। इस विषय में शिक्षक का कर्त्तव्य यह भी है कि वह भिन्न कक्षाओं में वर्ष-प्रतिवर्ष की गई उच्चारण सम्बन्धी मुख्य-मुख्य अशुद्धियों की सूची तैय्यार करले और उनके शुद्ध रूपों को बालकों के मस्तिष्क में स्थिर करने की यथाशक्ति चेष्टा करे।

तुलनात्मक अध्ययनार्थ ग्रन्थ-सूची

Champion : Lectures on Teaching English in India, Lecture VII

Morris : Teaching of English as a Second Language, Chapter VI

Jespersen : How to Teach a Foreign Language
Henry Martin : Suggestions for the Teaching of English Pronunciation and Spelling in India
Thompson & Wyatt : The Teaching of English in India, Chapter IV
The Incorporation of Association of Assistant Masters in Secondary Schools : The Teaching of Modern Languages, Chapter V, Section I.

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) शब्दोच्चारण पढ़ाने की विभिन्न विधियों का परिचय देते हुए यह बताओ कि तुम कौन सी विधि उपयुक्त समझते हो और क्यों ?

(२) भारतीय बालकों के अशुद्ध अँग्रेज़ी-उच्चारण के क्या कारण हैं ? अपने विद्यार्थियों का उच्चारण किस प्रकार सुधारोगे ?

अध्याय ११

पठन-क्रिया और उसका शिक्षण

पठन-क्रिया का महत्व—

भाषा की सब प्रक्रियाओं के मध्य पठन-प्रक्रिया सर्वप्रधान है। इसके कई कारण हैं—जिनका उल्लेख हमने डा० वेस्ट के शब्दों में नूतन विधि का विवेचन करते हुए किया था। यहाँ इतना कहना पर्याप्त होगा कि जैसा बेकन ने कहा है; पठन-क्रिया मनुष्य को पूर्ण बनाती है। शिक्षा के तीनों आधार-भूत ऋकारों (Three R's) में पठन-क्रिया को प्रथम स्थान बहुत सोच-समझकर दिया गया होगा। क्या आत्मशिक्षा एवं व्यक्तित्व-विकास के साधन के रूप में, क्या भाषा के भाव, लिपि एवं ध्वनि-पक्षों का समन्वित अभ्यास देने में, क्या कक्षा में वैयक्तिक तथा सामूहिक कार्य का सुन्दर सामञ्जस्य स्थापित करने में, क्या विदेशी भाषा-शिक्षण के मानवतावादी तथा उपयोगितावादी उद्देश्यों की पूर्ति में, क्या दूसरे विषयों के ज्ञानार्जन के माध्यम अथवा उनमें परस्पर सहसम्बन्ध रखने की युक्ति के रूप में, क्या अपनी रुचि तथा अभिरुचि के अनुरूप अध्ययन करने में सहायक के रूप में, और क्या भाषा-कार्य के अन्य पक्षों के लिए तैयारी के रूप में, पठनक्रिया की उपयोगिता सर्वोपरि है। और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि जितना वैज्ञानिक गवेषणान्वेषण कार्य भाषा के इस पक्ष में सम्पन्न हुआ उतना किसी अन्य पक्ष में नहीं हुआ।

पठन-प्रक्रिया का मनोविज्ञान तथा शारीरिक क्रिया-विज्ञान—

पठनक्रिया की आधारभूत मानसिक प्रक्रियाएँ तीन हैं। एक तो प्रत्यक्षीकरण जो एक-एक अक्षर या शब्द का अलग से नहीं अपितु समस्त रूप या पूरे क्षेत्र की रूपरेखा कृति की चेतना के रूप में घटित होता है और ध्वनि के विस्तार पर निर्भर रहता है। दूसरी मानसिक प्रक्रिया है, प्रतीक

परिवर्तन अर्थात् लिपि-चिन्हों या अक्षरों एवं शब्दों को ध्वनिचिन्हों में परिवर्तित करना या उनको भाव-चिन्हों में परिवर्तित करना। तीसरी मानसिक प्रक्रिया है, अर्थ-ग्रहण की अर्थात् भाव अवगत करने की। ये तीनों प्रक्रियाएँ एक साथ घटित होती हैं। और यह तीसरी प्रक्रिया तो पठन-क्रिया की प्राण ही है। बिना इसके पठनक्रिया असम्भव है। ध्वनि-चिन्ह पठन के लिए अनिवार्य नहीं। मौन-पठन में ध्वनि-चिन्ह नहीं होते। लिपि-चिन्ह भी अनिवार्य नहीं यथा चित्र-पठन में। किन्तु अर्थ-चेतना तो नितान्त आवश्यक है। मुखाकृति-पठन, (Face Reading) स्वप्न-पठन (Dream Reading) आदि भाषा पढ़ने पर क्रियाओं में भी पठन का यह आधार बना ही रहता है। यहाँ तक कि अलङ्कारिक उक्तियों तक में पठन में यह तत्त्व अनिवार्यतः अन्तर्निहित रहता है यथा "I Can read it in your eyes" आदि में। इन तीनों बौद्धिक प्रक्रियायों के साथ-साथ पठन की सफलता के लिए विशेषकर सस्वर पाठ के लिए संवेगात्मक संतुलन भी अत्यन्त आवश्यक है।

शरीर-क्रिया की दृष्टि से भी पठन-क्रिया अत्यन्त जटिल है और इसमें कई आधार-भूत प्रक्रियाएँ घटित होती हैं। पठन में दृष्टि सम्बन्धी, वाणी सम्बन्धी तथा श्रवण सम्बन्धी अवयवों का अत्यन्त सूक्ष्म सह-सम्बन्ध (Cordination) आवश्यक है, तभी दृष्टिगत लिपि-चिन्हों को तदनुरूप ध्वनियों में उच्चारण करने की क्रिया सम्पन्न हो सकती है। अत्यन्त सूक्ष्म-यन्त्रों से प्राप्त आलेखों से ज्ञात होता है कि पठन-क्रिया में चक्षुगति धाराप्रवाह नहीं होती अपितु उच्छल गति (Saccadic) होती है। इस में दृष्टि एक स्थान से एकदम हट कर दूसरे स्थान पर स्थिर होती है और पुनः-पुनः यही क्रम चलता है। ये स्थिरता के विन्दु विभिन्न व्यक्तियों के लिए भिन्न-भिन्न होते हैं। साधारणतया सफल पठन में स्थिरता के विन्दु निरन्तर अग्रसर होते रहते हैं और पठन समान गति से चलता रहता है। परन्तु अकुशल पाठकों में प्रतिगमन (Regression) का क्रिया-व्यापार भी घटित होता है, जिसमें दृष्टि अगले स्थिरता-विन्दु में न जाकर पिछले स्थिरता-बिन्दु पर पुनः लौट आती है और

पाठक या तो रुक जाता है, या एक आध शब्द फिर से दोहराता है। तब फिर वह आगे बढ़ता है। बहुत कमज़ोर पाठकों में यह प्रतिगमन-क्रिया-व्यापार प्रचुर-मात्रा में घटित होता है, जो दूसरों के लिए तो मनोरञ्जन का कारण होता है और पाठक के लिए रोष तथा खिन्नता का।

सूक्ष्म यन्त्रों की सहायता से एक और भी विचित्र क्रिया-व्यापार पठन-क्रिया में होता देखा गया है। पढ़ने में आँख वाणी से काफ़ी आगे-आगे चलती है, दोनों एक ही स्थान पर एक ही समय नहीं रहते। जिस शब्द या वाक्याँश का पाठक उच्चारण कर रहा है उसकी दृष्टि उस समय उस शब्द या वाक्याँश से आगे कार्य करती रहती है। और दोनों के बीच का यह अन्तर चक्षु-ध्वनि-विस्तार (Eye Voice Span) कहलाता है। बालकों का चक्षु-ध्वनि-विस्तार अत्यन्त छोटा होता है, अतः उनका पठन उतना प्रवाहपूर्ण नहीं होता। वयस्क जन का चक्षु-ध्वनि-विस्तार बड़ा हो जाता है और इसके फलस्वरूप उसके पठन में प्रवाह तथा भाव-व्यञ्जकता अधिक आ जाती है और गति भी तीव्र हो जाती है। और अधिक ज्ञातव्य बात तो यह है कि चक्षु-ध्वनि-विस्तार समुचित अभ्यास द्वारा बढ़ाया जा सकता है। पठन-क्रिया में सफलता तथा कुशलता प्राप्त करने के लिये उचित विधि का प्रयोग करके चक्षु-ध्वनि-विस्तार में वृद्धि करना शिक्षक का परम कर्त्तव्य है।

पठन-क्रिया की शिक्षण विधियाँ

वर्णमाला या अक्षर-विधि--

आरम्भिक अवस्था में पढ़ना सीखने के लिए तीन मुख्य विधियाँ प्रचलित हैं।—(१) वर्णमाला या अक्षर-विधि, (२) शब्द-विधि 'देखो और कहो' विधि और (३) वाक्य-विधि। इन तीनों में से वर्णमाला विधि या अक्षर-विधि ही परम्परागत विधि है। हम सर्वप्रथम इसी का विवेचन करेंगे। इस विधि के द्वारा बालक को सर्वप्रथम वर्णमाला के अक्षरों का ज्ञान तथा उनकी ध्वनियों का परिचय कराया जाता है। कभी-

कभी वर्णों की ध्वनियों का परिचय कराते समय ध्वनि-उत्पादक अवयवों की यंत्रक्रिया तथा ध्वनियों के शास्त्रीय वर्गीकरण का ज्ञान भी प्रदान किया जाता है। और तब प्रकारान्तर से इस विधि को ध्वनिशास्त्र विधि (Phonetic Method) भी कहते हैं। अलग-अलग अक्षरों की ध्वनियों का परिचय पूर्ण हो चुकने पर शब्द-खण्डों (Syllables) में उनके सम्मिलित उच्चारण या संयुक्त ध्वनियों का अभ्यास कराया जाता है। और तदुपरान्त अक्षरों एवं शब्द-खण्डों का योग कराके शब्दों की ध्वनि का परिचय कराते हैं। इस प्रकार बालक अक्षर के बाद शब्द-खण्ड, तब शब्द और तब शब्द-समूह—वाक्याँश, वाक्य तथा धीरे-धीरे वाक्य-व्यूह (Paragraphs) पढ़ने लगता है। अब तक पढ़ना सीखने की इसी विधि का अनुसरण अधिकाँशतः होता रहा है। इससे प्रतीत होता है कि यह बड़ी सफल तथा उपादेय है।

वर्णमाला विधि के गुण----

इस विधि के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि यह सरल इकाई से आरम्भ करके जटिल की ओर अग्रसर होती है जो शिक्षण सिद्धान्त का सर्वमान्य सूत्र है। इसी प्रकार यह विश्लेषणात्मक इकाई से संश्लेषण की ओर अग्रसर होती है। यह कार्य में सूक्ष्म क्रमबद्धता के सिद्धान्त का भी समावेश करती है। ज्यों-ज्यों बालक एक अवस्था से दूसरी अवस्था की ओर अग्रसर होता है त्यों त्यों उसमें कुछ नवीन कौशल अधिकृत कर लेने का भाव बढ़ता जाता है जिससे तदनन्तर सीखने में अत्यन्त उत्साह रहता है और प्रेरणा भी मिलती है। हर एक पद इतना दृढ़, सुनिश्चित एवं स्पष्ट होता है कि बालक में आत्म-विश्वास भर जाता है, जिससे पठन की प्रभावोत्पादकता बढ़ जाती है। हर एक पद पर सफलता भी निश्चित ही रहती है, जिससे वह कभी भी निराश या हतोत्साह नहीं हो सकता। एक-एक अक्षर के रूप, प्रकार तथा ध्वनि का दृढ़ परिचय देने के कारण यह विधि लेखन-शिक्षण के लिये भी अच्छी नींव डाल देती है। विशेषकर शब्दाक्षरन्यास (Spelling) की अनुभूति इतनी स्थायी या दृढ़ हो जाती है कि तत्सम्बन्धी अशुद्धियों की अधिक सम्भावना नहीं रह जाती।

वर्णमाला-विधि के दोष—

यह विधि अत्यन्त नीरस तथा शुष्क है। रुचि का ह्रास होने से सीखने की क्रिया सफलता-पूर्वक गतिपूर्ण ढँग से अग्रसर नहीं होती। साथ ही साथ एक क्रिया में अरोचकता आने से अन्य क्रियाओं में भी उस भाव के संक्रमण हो जाने की आशंका बनी रहती है। पठन में अरुचि होने से अंग्रेजी विषय की ओर अरुचि हो सकती है तथा समस्त शिक्षाकार्य की ओर भी। परम्परागत पाठशाला से अधिकाँश विद्यार्थियों के विद्याध्ययन परित्याग कर बैठने के कुछ ऐसे ही कारण होते थे। पठन-क्रिया की आधारभूत इकाई अर्थपूर्ण होनी चाहिए। इस विधि में पढ़ने की इकाई अर्थहीन अक्षर है। अतः इस रूप में यह विधि आरम्भ से ही पठन-क्रिया के आधारभूत तत्त्व की उपेक्षा करती है, जिसका प्रभाव आगे चल कर अच्छा नहीं होता।

इस विधि से सीखने पर पठन-क्रिया बड़ा यान्त्रिक रूप धारण कर लेती है। पठन के साधन पर अधिकार करने की लम्बी अवधि में पठन-सबन्धी आनन्द का लेश-मात्र भी अनुभव नहीं होने पाता। इसलिये इस विधि से पठन-क्रिया में दोष भी उत्पन्न हो जाते हैं। अक्षरों तथा शब्दों पर ध्यान अधिक केन्द्रित रहने के कारण रुक-रुक कर पढ़ने की आदत पड़ जाती है। पढ़ने की गति धारा-प्रवाह न होकर झटकेदार बन जाती है। प्रतिगमन भी अधिक घटित होने लगता है। अँग्रेज़ी भाषा की लिपि ध्वन्यात्मक न होने के कारण यह विधि इस भाषा के लिए तो अत्यन्त अनुपयुक्त है। अँग्रेज़ी का एक ही अक्षर एक से अधिक ध्वनियों का प्रतीक होता है यथा C की ध्वनि कभी 'क' और कभी 'स' होती है। और यह परिवर्तन बहुत नियमित भी नहीं, अतः अक्षरों से ध्वनि का संयोग कराके पठन-क्रिया सिखाने की चेष्टा में अनेकों अवसरों पर विफलता होगी।

यह विधि बड़ी अस्वाभाविक भी है। वास्तविक जीवन में अर्थयुक्त शब्द तथा वाक्य पहले ही अनुभव के अङ्ग बन जाते हैं, अक्षरों का ज्ञान बाद

में आता है। शिक्षण विधि इस क्रम को उलट देती है जो अत्यन्त अस्वाभाविक हो जाता है। अर्थहीन वर्ण तथा अक्षर बालक के लिए भ्रामक तथा निराशाजनक होते हैं और कालान्तर में वही भाषा सम्बन्धी दूषित आदतों के कारण बन जाते हैं। यह विधि शिक्षण-सिद्धान्त के तीन सर्वमान्य सूत्रों का उल्लङ्घन करती हैं—(१) समस्त रूप से अङ्गों की ओर अग्रसर होने का सूत्र (२) मनोवैज्ञानिक से तार्किक की ओर अग्रसर होने का सूत्र तथा (३) अनुभव-जन्य से विवेक-जन्य की ओर अग्रसर होने का सूत्र। इस प्रकार यह विधि अत्यन्त असन्तोषजनक तथा हेय है। इधर कुछ समय से वर्णमाला के अक्षरों को तस्वीरों तथा उनके नाम वाले शब्दों से संयोग कराके पढ़ाने की प्रणाली चल पड़ी है। इससे कुछ रोचकता भी आती है और कुछ अर्थपूर्णता का भी समावेश होता है। फलतः सफलता भी कुछ अधिक प्राप्त होती है। परन्तु इतने मात्र से इस विधि की नीरसता का अन्त नहीं हो पाता।

शब्द-विधि या "देखो और कहो" विधि—

अक्षर-विधि की त्रुटियों का सुधार करने की दृष्टि से शब्द-विधि का प्रयोग आरम्भ हुआ। अक्षर-विधि में पठन आरम्भ करने की इकाई अर्थरहित अक्षर या वर्ण होते हैं; परन्तु इस विधि में पठन शब्दों से आरम्भ किया जाता है, एक अक्षर या वर्ण से नहीं। इसकी इकाई अर्थयुक्त शब्द है। शब्द का लिखित रूप तथा दूसरा ध्वनित रूप उससे सम्बन्धित वस्तु, क्रिया या भाव के भौतिक प्रतीक के साथ-साथ प्रस्तुत किया जाता है। बालक से ध्वनित रूप दोहरवाया जाता है और उसका ध्यान शब्द के लिखित रूप तथा भौतिक प्रतीक के प्रति आकर्षित किया जाता है, जिससे लिपिबद्ध भाषा को ध्वनित करने का अभ्यास तथा उससे सम्बोधित भाव उदय होता है। इसीलिये इसे "देखो और कहो" विधि भी कहते हैं। भौतिक प्रतीक कभी तो स्वयं वस्तु ही होती है और कभी उसका चित्र, मॉडेल या रूपरेखा-मात्र। अलग-अलग शब्दों को पढ़ने का अभ्यास हो चुकने पर उन शब्दों को वाक्यबद्ध करके पढ़ना अत्यन्त सुगम बन जाता है।

स्वभावतः ऐसे शब्दों से आरम्भ किया जाता है जो उन वस्तुओं तथा पदार्थों के वाचक हों जिन्हें बालक अपने वातावरण में नित्य अनुभव करता रहता है, जिनके प्रति उसका स्वाभाविक आकर्षण रहता है और प्रायः जिनके विषय में उसे बोलने का अभ्यास मिल चुका होता है। इस प्रकार के बहुत से शब्द पढ़ना सीख लेने पर अन्य प्रकार के शब्द पढ़ना सिखाने में भी सुविधा होती है। इसी भाँति शब्द पढ़ते-पढ़ते उनके लिखित रूपों से उनकी ध्वनियों का संयोग करते करते धीरे-धीरे अनजाने ही अक्षरज्ञान अपने आप अनायास उत्पन्न हो जाता है। उसके लिये न तो विद्यार्थी को विशेष चेतन प्रयास करना पड़ता है और न शिक्षक को ही।

शब्द-विधि के गुण—

शब्द-विधि का प्रथम गुण है उसकी स्वाभाविकता। बालक के भाषा सम्बन्धी प्रथम प्रयास-शब्दों की ध्वनि के अनुकरण करने के रूप में ही वास्तविक जीवन में भी देखा जाता है। अम्मा, बाबू, नाना, दादी, भैया, चाचा आदि शब्दों से ही बालक का भाषा-प्रयोग आरम्भ होता है, अतः इस विधि के द्वारा चुनी गई पठन की इकाई सर्वथा स्वाभाविक एवं प्राकृतिक है। भाषा-विकास के क्रम से वह समर्थित है। शिक्षण-सिद्धान्त के कुछ सर्वमान्य सूत्रों के भी यह अनुकूल है। उदाहरणार्थ, यह विधि समस्त रूप से अङ्गों की ओर अग्रसर होती है, समूर्त से अमूर्त की ओर, परिचित से अपरिचित की ओर तथा ज्ञात से अज्ञात की ओर! अत्यन्त स्वाभाविक होने के कारण यह बालकों को अत्यन्त रुचिकर भी सिद्ध होता है। समूर्त्त सामग्री के योग से सीखा हुआ ज्ञान स्थायी एवं दृढ़ हो जाता है। यह विधि बालक में आरम्भ से ही कुछ प्रयोजन-पूर्ण ज्ञानोपार्जन कर लेने का भाव जनित करती रहती है और उसे अधिकाधिक सीखने को प्रोत्साहित करती है। पठन-क्रिया के मूल-तत्त्व 'अर्थ-पूर्णता' को आरम्भ से ही इस विधि में मर्यादा रक्षित रहती है। यांत्रिक पक्षों का ज्ञान कराने के लिए उसकी बलि नहीं दी जाती। यहाँ तो याँत्रिक पक्ष को अधिकृत करने की स्थिति में भी पठन-जनित आनन्द

का अनुभव प्राप्त होता है। अतएव इन सब गुणों को देखते हुए यह विधि अत्यन्त उपादेय तथा वाञ्छनीय है।

शब्द-विधि के दोष—

इस डर से कि पठन-क्रिया यान्त्रिक न बन जाय यह विधि उसे अन्दाज़ से संचालित करती है। शब्द की रूपरेखाकृति के निश्चित रूप से स्थिर होने में बहुत देर लगती है। उन्हीं अक्षरों वाले अन्य शब्दों से निरन्तर विभ्रम (Confusion) होता रहता है। इस विधि से पढ़ाने पर बालकों की स्मृति पर अत्यधिक भार पड़ेगा क्योंकि उन्हें सभी सीखे हुए शब्दों का लिखित एवं ध्वनित रूप अलग-अलग स्मरण रखना पड़ेगा। शब्दगत अक्षरों पर विशेष ध्यान न रहने से शब्दाक्षरन्यास (Spelling) ज्ञान अत्यन्त हीन बना रहेगा और इस पक्ष में बहुत अशुद्धियाँ होती रहेंगी। अक्षर सीखने की भाँति ही पृथक-पृथक शब्द सीखना भी यांत्रिक क्रिया सिद्ध होती है और पठन के वास्तविक आनन्द को नहीं जनित कर पाती। कुछ समय के उपरान्त वह शुष्क तथा नीरस प्रतीत होने लगती है।

यह भी ध्यान देने की बात है कि भाषा की वास्तविक इकाई शब्द नहीं बल्कि विचार है। विचार पूर्ण वाक्य में प्रकट होता है। बालक जब केवल माँ शब्द कहता है तभी उसका अर्थ होता है कि "अम्माँ देखो तो। या "अम्माँ हमें गोद में ले लो" आदि। स्थिति की असमर्थतावश वाक्य या पूर्ण भाव एक शब्द में ही संकुचित रह जाता है। इस विधि से शब्द-ज्ञान बढ़ जाने पर बहुधा प्रयोग-हीन शब्द-राशि बालक के शब्द-ज्ञान में संग्रहीत हो जाती है, जिससे उसका कोई लाभ नहीं होता। स्थूल पदार्थ-वाचक शब्दों तथा प्रत्यक्ष गुणवाचक शब्दों-मात्र के लिए यह पठन-विधि उपयुक्त सिद्ध होती है—सूक्ष्म भाववाचक शब्दों के लिए अनुपयुक्त है। अतः कार्य अत्यन्त अधूरा छूट जाता है। इस विधि से सिखाने पर भी पठन-क्रिया सर्वथा दोष-मुक्त नहीं रह पाती। रुक-रुक कर पढ़ने की आदत रहती है। शब्दों पर आवश्यकता से अधिक ध्यान

देने के कारण पठन में प्रवाह-पूर्णता तथा व्यञ्जकता का अभाव बना रहता है। सफल पठन में एक-एक शब्द की पृथक चेतना नहीं होती; बल्कि शब्द-समूह का एक पूर्ण चित्र ही हमारी चेतना में आता है। इस विधि द्वारा पठन सीखने पर भी प्रतिगमन घटित होता रहता है। अतः यह विधि भी दोषों से परिपूर्ण है।

वाक्य-विधि (Sentence Method)—

इस विधि के नाम से इसकी क्रिया स्पष्ट हो जाती है कि इसमें वाक्य की इकाई लेकर पठन-क्रिया आरम्भ की जाती है। छोटे-छोटे वाक्यों से ही कार्य आरम्भ होता है। एक ही बार में एक पूरा वाक्य लिखित रूप में देखकर उसका ध्वनित रूप दोहराया जाता है। कभी कभी वाक्य के साथ ही साथ उसमें व्यक्त भाव के अनुरूप चित्र भी दिया रहता है, जिससे वाक्य का अर्थ-बोध सुगम हो जाता है। बहुधा वाक्य वे ही रहते हैं जिनका अभ्यास मौखिक रुप से हो चुका होता है। ये वाक्य असम्बद्ध भी हो सकते हैं या एक दूसरे से सम्बद्ध भी। सम्बद्ध वाक्य क्रमिक रूप से किसी घटना को व्यक्त कर सकते हैं और उनके साथ के चित्र भी उसी घटना के उन्हीं विविध पक्षों का चित्रण करके भावनिरूपण में योग देते है। तब इसी वाक्य-विधि को कथाविधि या (Story-Method) भी कहने लगते हैं; किन्तु वास्तविक इकाई पूर्णवाक्य ही है। अतः इस दूसरे नाम का कोई विशेष महत्व नहीं। बालकगण लिखित वाक्य को देखते हुए उसका ध्वनित उच्चारण पुनः-पतुः करने चित्र या वास्तविक पदार्थ या कार्य द्वारा अर्थ अवगत करते हैं। इस प्रकार भाषा को भावविनिमय का साधन मानते हुए पूर्णवाक्य की इकाई का आधार लेकर ही यह विधि पठन-क्रिया सिखाने में अग्रसर होती है। शब्दों तथा वर्णों का बोध धीरे-धीरे अपने आप उत्पन्न हो जाता है।

वाक्य-विधि के गुण—

पूर्ण वाक्य की इकाई वस्तुतः अर्थपूर्ण है—इसमें कोई संदेह नहीं। अतएव इस प्रकार पठन आरम्भ से ही अर्थ-युक्त रहता है। अर्थचेतना

उस समस्त क्रिया को सजीव बनाए रहती है। मनोविज्ञान की दृष्टि से यह उपयुक्त ही है। बालक के लिए पठन-क्रिया आद्योपान्त रुचिकर तथा आकर्षक बनी रहती है। क्रिया के याँत्रिक पक्ष को अधिकृत करने में ही उस अस्त्र के प्रयोग का आनन्द प्राप्त होता रहता है जिससे इस क्रिया के प्रति उसका चाव बढ़ जाता है। पठन-क्रिया के प्रति यह आकर्षण उसके सीखने की गति और भी तीव्र कर देता है और उसे अधिकाधिक सफलता मिलती है। पठन-जनित आनन्द की पूर्वानुभूति वस्तुतः बालक को पठन-क्रिया सीखने में द्विगुणित उत्साह से दत्तचित्त कर देती है। और जब बालक पूर्ण ध्यान एवं रुचिपूर्वक सीखने में अग्रसर होता है तो विफलता तथा निराशा के लिए कोई स्थान ही नहीं रह जाता। उसकी सफलता तो निश्चित ही रहती है।

इस विधि से पढ़ना सिखाने पर चक्षु-ध्वनि-विस्तार बढ़ाने में सहायता मिलती है, जिससे बालक प्रवाहपूर्ण ढँग, उचित गति, लय तथा व्यञ्जकता-सहित पढ़ना सीख जाता है। शिक्षण सिद्धान्त के तीन सर्वमान्य सूत्रों का यह विधि पालन करती है—(१) समस्त रूप से अंगों की ओर अग्रसर होने (२) मनोवैज्ञानिक से तार्किक की ओर अग्रसर होने तथा, (३) अनुभव-जन्य से बिवेक की ओर अग्रसर होने के सूत्रों का। वाक्यों का ज्ञान करने पर शब्दों तथा अक्षरों का ज्ञान प्राप्त करना इसी के अनुकूल है। आरम्भ में सहायक सामग्री तथा चित्रों या क्रिया-प्रदर्शन आदि भी समूर्त्त से अमूर्त्त की ओर या स्थूल से सूक्ष्म की ओर अग्रसर होने के सूत्र के अनुसार ही है। भाषा के क्षेत्र में आधुनिकतम वैज्ञानिक विकास भी इसी विधि का समर्थन करता है। लिंग्वाफोन यन्त्र में पढ़ना सिखाने की इसी प्रणाली को अपनाया गया है। वाक्य का लिखित रूप तथा चित्र, चार्ट या पुस्तिका में दिखाकर ध्वनितरूप रेकार्ड द्वारा कह कर तथा बालकों से दोहरवा कर पठन-क्रिया का शिक्षण होता है। इससे समस्त अनुभव उनकी मानसिक रचना में स्थिरता-पूर्वक जम जाता है।

वाक्य-विधि के दोष—

अधाधुंध अन्दाज़ या कोरी अटकल की मात्रा बहुत अधिक बढ़ जाती

है। गल्तियाँ पर गल्तियाँ होती जाएँगी, लेकिन बालक को कारण कभी नहीं ज्ञात हो सकेगा, जिससे उसे आत्मसुधार में भी सहायता नहीं मिलेगी। फलतः उसे विफलता तथा निराशा की भावना घेर लेगी और पठन-क्रिया की प्रगति असंतोषजनक होगी। अन्य शिक्षात्मक कार्य पर भी इसका प्रभाव हानिकारक ही होगा। बालकों को सदैव नए ही नए वाक्यों का सामना करना पड़ेगा, जिन्हें पढ़ने में उन्हें पूर्वार्जित अनुभव से अधिक सहायता न मिल सकेगी; क्योंकि पढ़े हुए वाक्य भिन्न ही थे। अतः वे सदैव शिक्षक के ही सहारे बने रहेंगे और कभी अपने पैरों पर न खड़े हो सकेंगे। यह विधि इस प्रकार आत्म-शिक्षा में बाधक ही होगी, सहायक नहीं।

इस विधि से पढ़ना सीखने पर आत्मविश्वास का सर्वदा अभाव ही रहेगा; क्योंकि आधारभूत ज्ञान सुनिश्चित नहीं होगा। आत्मविश्वास के अभाव में पठन-क्रिया अच्छी तरह से नहीं सम्पन्न हो सकेगी। इस विधि द्वारा पठन एक प्रकार की तोता-रटन विद्या होगी, जिसमें न तो आधारभूत सिद्धान्त की ही चेतना होती है और न आगे विकसित होने की सम्भावना ही। छात्र की स्मृति पर असह्य भार पड़ेगा। अक्षर तो अँग्रेज़ी में केवल २६ हैं, शब्द लाखों हैं; परन्तु वाक्य तो अक्षरशः असंख्य हैं और हो सकते हैं। नए वाक्यों का कोई अन्त नहीं और सभी वाक्य कक्षा में छात्रों के अनुभव में नहीं स्थिर किए जा सकते। शब्दाक्षरन्यास (Spelling) और उसके साथ-साथ समस्त लेखन-कार्य की बहुत हानि होती है। या तो जो वाक्य सीखे हैं उन्हीं को लिखने तक कार्य को सीमित करना पड़ता है और उनमें भी शब्दाक्षरन्यास की अशुद्धियाँ अत्यधिक मात्रा में होती हैं। या फिर नए अपरिचित वाक्यों का सामना करना होगा जिनमें पूर्वोक्त अटकल तथा अशुद्धियों की भरमार होगी। ऐसी दशा में पठन-क्रिया अन्य क्रियाओं के सहायक के रूप में अधिक योग नहीं दे सकती। यह विधि सरल से जटिल की ओर अग्रसर होने के सर्वमान्य सूत्र का उल्लंघन करती है।

तुलनात्मक अध्ययनार्थ ग्रन्थ-सूची

Menzel : Suggestions for the Teaching of Reading in India.

West : Learning to Read a Foreign Language

V.S. Mathur : Studies in the the Teaching of English in Indian Schools, Chapter I

Stott : Language Teaching in the New Education, Chapter X

Ryburn : Suggestions for the Teaching of English in India, Chapter IV

Morris : The Teaching of English as a Second Language, Chapter IX

Thompson & Wyatt : The Teaching of English in India, Chapter IV

Edith Luke : The Teaching of Reading by the Sentence Method.

Jagger : The Sentence Method of Teaching Reading.

अभ्यासार्थ प्रश्न :-

(१) पठन-क्रिया के मनोशारीरिक पक्ष का संक्षिप्त विवेचन करो। इस क्रिया का विदेशी भाषा के शिक्षण में क्या महत्व है ?

(२) वर्णमाला-विधि द्वारा पठन-क्रिया का शिक्षण किस प्रकार होता है ? इसके गुण-दोषों का विवेचन करो ?

(३) "देखो और कहो" विधि क्या है ? अँग्रेज़ी-पठन के शिक्षण के लिए यह कहाँ तक उपयुक्त है ?

(४) पठन-क्रिया सिखाने की विभिन्न विधियों का संक्षिप्त परिचय देते हुए उनकी उपयोगिता बताइए।

अध्याय १२

विविध प्रकार के पठन और उनकी उपयोगिता

पठन के प्रकार—

पठन-क्रिया कई प्रकार की होती है। पठन के दो मुख्य विभाग किए जा सकते हैं—एक तो वह जिसमें पठित वस्तु दूसरों के सुनाने के लिए ध्वनित रूप से पढ़ी जाय जिसे हम सस्वर पठन कहेंगे और दूसरा मौन पठन, जिसमें पाठक अपने मन ही मन में पढ़ लेता है, शब्दों या वाक्यों का श्रोतव्य उच्चारण नहीं करता। सस्वर पठन कई प्रकार का होता है साधारण सस्वर पठन, आदर्श पठन, समवेत पठन (Chorus Reading), पूर्वाभ्यास पठन, कविता-पठन आदि। मौन पठन भी गहन पठन, विस्तृत पठन, द्रुत पठन, पुस्तकालय पठन आदि-आदि प्रकार का होता हैं। किन्तु आधार-भूत क्रिया पूर्वोक्त दो ही प्रकार की होती है, केवल मन्तव्य तथा परिस्थिति का ही अन्तर होता हैं।

सस्वर-पठन के उद्देश्य—

सस्वर पठन की क्रिया का मुख्य प्रयोजन होता है, विद्यार्थियों को शुद्ध एवं प्रभावपूर्ण पठन में समर्थ बनाना। इसके लिए आवश्यक है कि उच्चारण शुद्ध हो। ध्वनि, लय, गति तथा यति सन्दर्भानुरूप तथा भावानुरूप हो। पठन का स्वर उच्च हो; किन्तु उसमें समुचित आरोह-अवरोह हो। यथास्थान बल दिया जाय। पठन में प्रवाह-पूर्णता हो और स्वाभाविक भाव-व्यञ्जकता भी। वाणी की स्निग्धता या मधुरता तो प्रकृतिदत्त गुण हैं; किन्तु सस्वर-पठन में स्पष्टता तथा श्रवण-गोचरता अनिवार्य है। सुन्दर सस्वर-पठन श्रोताओं को मन्त्र-मुग्ध कर देता है और पाठक के मनोनीत भावों को वे सहज ग्रहण कर लेते हैं। इस कला का अभ्यास इन्हीं उद्देश्यों से किया भी जाता है।

सस्वर-पठन के गुण—

सस्वर पठन की क्रिया मौखिक पाठों के लिए अच्छी तैयारी करा देती है। सस्वर-पठन वस्तुतः लिखित प्रतीकों द्वारा संचालित भाषण ही है। अतः भाषण तथा मौखिक कार्य में भी यह क्रिया शुद्ध उच्चारण, अविच्छिन्न प्रवाह तथा स्वर के उचित आरोह अवरोह को जनित कर देती है। इसी प्रकार सस्वर-पठन से मौन-पठन के लिए भी अच्छी नींव पड़ती है। बिना सस्वर-पठन द्वारा उपयुक्त अभ्यास दिए मौन-पठन कभी सफल नहीं हो सकता। जब एक व्यक्ति सस्वर-पठन करता है तब शेष लोग उसी गति से पुस्तक में देखते हुए मन ही मन सुनी हुई ध्वनियों को दोहराते हुए मौन-पठन का ही अभ्यास करते हैं। भले ही उस समय उनमें इस बात की चेतना विद्यमान न हो। वस्तुतः मौन-पठन का अधिकांश आनन्द अप्रत्यक्षरुप से सस्वर-पठन की पूर्वगत अनुभूतियों से ही जनित होता है—इसमें अतिशयोक्ति या सन्देह नहीं। सस्वर-पठन की क्रिया मुद्रित पृष्ठ के निर्जीव मूक तथा निरानन्द प्रतीकों को वाणी प्रदान करके जीवन-प्रेरणा से ओत-प्रोत बना देती है। इस क्रिया में दृष्टि मूलक अनुभूतियों को श्रवणमूलक अनुभूतियाँ पुनर्संशक्त करके प्रत्ययसम्बन्ध के बन्धनों को सुदृढ़ कर देती हैं।

यह क्रिया उन व्यक्तियों को विशेष रुचिकर तथा बोध में सहायक सिद्ध होती है, जो श्रवणमूलक मनोप्रतिमाओं के अभ्यस्त होते हैं। सस्वर-पठन में शोधन, पथ-प्रदर्शन, संनिरीक्षण (Supervision) आदि की आवश्यकता होने के नाते यह क्रिया कक्षा में ही सम्पन्न की जानी चाहिए। मौन-पठन चाहे घर के लिए ही छोड़ दिया जाय। क्योंकि जैसा ऊपर विवेचन किया गया है सस्वर-पठन के साथ ही मौन-पठन का अभ्यास तो अपने आप ही होता रहता है। कक्षा का समय गहन अध्ययन के लिए है और गहन अध्ययन के लिए मौन पठन-मात्र पर्याप्त नहीं—सस्वर पठन भी होना चाहिए। इस क्रिया में अनुकरण द्वारा सीखने के पर्याप्त अवसर हैं। अध्यापक भली-भाँति अच्छा नमूना प्रस्तुत

करके बालकों से अनुकरण करवा सकता है। उनके द्वारा किए गए प्रयासों की त्रुटियों में सुधार कर सकता है और उन्हें पूर्णतया शुद्ध पठन में दक्ष बना सकता है। मौन पठन में शिक्षक यह सहायता नहीं दे सकता।

सस्वर-पठन के दोष--

एक समय में केवल एक ही छात्र सस्वर पठन कर सकता है अतएव बहुत थोड़े से लोगों को इस क्रिया के अभ्यास का अवसर प्रदान किया जा सकता है। केवल अधिक प्रतिभावान बालकों को ही अवसर प्राप्त होने की सम्भावना अधिक है; क्योंकि कमज़ोर छात्रों को अवसर देने से अशुद्धियाँ अधिक होंगी, जिससे शोधन-कार्य भी बहुत समय ले लेगा और अवाञ्छनीय अनुभूतियों की आवृत्ति भी होगी। विशेषकर संकोचशील तथा अंतर्मुखी मनोवृत्ति वाले छात्रों के लिए यह क्रिया अनुपयुक्त है। इन छात्रों की कमजोरियों एवं अशुद्धियों का सबके सामने प्रकट होना उनमें हीनता-ग्रन्थि तथा मञ्चभय जनित करके उनके व्यक्तित्व के विकास में बाधा डालता है। शब्दों तथा वाक्याँशों के ध्वनिपक्ष पर अधिक ध्यान केन्द्रित रहने से उनके अर्थ-पक्ष की सम्यक अनुभूति में बाधा होती है। मौखिक कुशलता भाव अवगत करने की अपेक्षाकृत अधिक प्रधानता पा जाती है। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि वास्तविक जीवन में इसके प्रयोग के बहुत नगण्य अवसर होने के कारण इससे सम्बन्धित अधिकाँश परिश्रम व्यर्थ चला जाता है।

दोष-निवारण के उपाय—

कक्षा में जिस पाठ का सस्वर पठन अगले दिन करना होगा उसको बालकों से घर पर तैयार करने को कह देना चाहिए। सस्वर पठन का अधिकांश मूल्य इसी तैय्यारी में अंतर्निहित है। कमज़ोर छात्र कभी उपेक्षित न अनुभव करने पाएँ उनको विशेष पूर्व तैय्यारी करा के कक्षा में सस्वर पठन का अवसर प्रदान किया जाय। बालकों के सस्वर पठन के पूर्व अध्यापक अपना आदर्श पाठ अवश्य दे दें। आवश्यक हो तो

एक से अधिक बार आदर्श पाठ दिया जा सकता है। अनुच्छेद में आए हुए नवीन तथा कठिन शब्दों का उच्चारण-अभ्यास सस्वर-पठन के पहले करा देना भी उचित है। साराँश यह है कि हर प्रकार से दूषित अनुभूतियों या अशुद्धियों की सम्भावना को दूर करना उचित है।

विभिन्न प्रकार के सस्वर-पठन

आदर्श पठन—

आदर्श पठन भी एक प्रकार का सस्वर-पठन ही है। विद्यार्थियों के समक्ष पठन का अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करना इसका ध्येय होता है। यह शिक्षक के द्वारा ही सम्पन्न किया जाता है। आदर्श पठन वस्तुतः आदर्श अर्थात् सब प्रकार से पूर्ण तथा दोषमुक्त हो। स्वर की ऊँचाई कक्षा के आकार के अनुसार हो। इसकी ध्वनि तथा ढङ्ग बहुत अस्वाभाविक या कृत्रिम न बना दिया जाय। इस क्रिया का आधारभूत सिद्धान्त अनुकरण है, अतः बालकों को सावधान कर दिया जाय कि वे ध्यानपूर्वक सुन कर उसी ढङ्ग का बाद में अनुकरण करने की चेष्टा करें। जब अनुकरण-पाठ अधिक असन्तोषजनक हो तो पुनः आदर्श पाठ देकर अनुकरण में प्रोत्साहित किया जाय। आदर्श पाठ-शिक्षक भली-भाँति पहले ही तैयार करले। इसमें कोई लज्जा या अपमान की बात नहीं। कक्षा के समक्ष आदर्श-पाठ में कोई भी भूलचूक कदापि न होने पावे—यही शिक्षक की सफलता है।

पूर्वाभ्यास-पठन—

पूर्वाभ्यास-पठन बालकों के लिए अनेक प्रकार से उपयोगी है। वस्तुतः पूर्वाभ्यास ही किसी भी सफल-प्रदर्शन का सबसे महत्वपूर्ण अङ्ग है। पूर्वाभ्यास जितना ही गहन तथा सुव्यवस्थित होगा, सीखना उतना ही हितकारी होगा। इस प्रकार के पठन द्वारा कमजोर छात्रों को भी कक्षा के समक्ष सफलता-पूर्वक सस्वर-पठन का अवसर प्रदान किया जा सकता, जिससे उनका सङ्कोच तथा हीनता की भावना समाप्त हो जायगी। इस प्रकार का पठन केवल शुद्ध या दोषमुक्त अनुभूतियों की ही आवृत्ति

करता है। पाठक छात्र में आत्मविश्वास जनित हो जाता है। कुछ लोगों के द्वारा पूर्वाभ्यास पठन कराते हुए अन्य लोगों से उनकी पठन-शैली का मूल्याङ्कन भी करवाया जाय तो सभी बालकों का सक्रिय सहयोग इस क्रिया में सहज ही प्राप्त हो जाता है।

समवेत पठन--

समवेत पठन एक ही समय में कई चुने हुए छात्रों द्वारा या समस्त कक्षा द्वारा एक साथ सस्वर-पठन को कहते हैं। आरम्भिक कक्षाओं में विशेषकर कविता-पठन में इसका अक्सर अभ्यास किया जाता है। इससे समूह-भावना सन्तुष्ट होती है तथा सङ्कोचशील एवं लज्जाशील बालक भी भाग लेने लगते हैं। किन्तु यह केवल विशेष अवसरों को छोड़कर अन्य समय नहीं प्रयोग किया जा सकता। व्यक्तिगत उच्चारण तथा पठन की अशुद्धियों का पता ही नहीं चलेगा। कामचोर विद्यार्थी भाग ही न लेंगे और दूसरी कक्षाओं के कार्य में शोरगुल से बाधा उत्पन्न होने की भी सम्भावना है। कुछ चुने हुए विद्यार्थियों द्वारा कविता का पूर्वाभ्यासकृत समवेत पाठ भी कराया जा सकता है। यह वस्तुतः अत्यन्त आनन्ददायक तथा प्रेरणा-दायक सिद्ध होता है।

सस्वर कविता-पठन--

कविता का सस्वर-पठन साधारण सस्वर-पठन से कुछ भिन्न होता है और इस भिन्नता का मूल कारण है उसके शब्द-विन्यास में अन्तर्निहित लय। कक्षा में साधारणतया कविता-पठन में गेय प्रणाली न अपनाई जाय; क्योंकि एक तो वह अनुकरणीय नहीं होती और साथ ही साथ भाव-विवेचन के लिए उपयुक्त वातावरण नहीं बनने देती। साथ ही कहीं यदि कुछ त्रुटि हो गई तो कक्षा के अट्टहास में कविता की सौन्दर्यानुभूति का समस्त अवसर समाप्त हो जाता है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि कविता-पठन गद्य-पठन की श्रेणी में उतर आए। उचित लय, यति, गति-ध्वनि, आरोह अवरोह का अनुसरण करते हुए कविता के वास्तविक सौन्दर्य का आभास पठन द्वारा ही करा देने में शिक्षक की

कुशलता है। कविता-पठन शिक्षक द्वारा आरम्भ में, व्याख्या में भाव-बोध में, पुनरावृत्ति में अन्त में, अर्थात् पाठ की सभी अवस्था में पुनः होता ही रहता है। इसको सफलतापूर्वक सम्पन्न करने के लिए पूर्वाभ्यास की विशेष आवश्यकता होती है।

मौन-पठन के उद्देश्य—

मौन-पठन के उद्देश्य तथा आदर्श सस्वर-पठन से सर्वथा भिन्न होते हैं। मौठ-पठन में भाव-ग्रहण या अर्थ को अवगत करने को प्रधानता दी जाती है। उच्चारण आदि का यहाँ कोई प्रश्न ही नहीं होता। यहाँ तो गति की तीव्रता तथा क्रिया में तन्मयता और सुरुचि, रसास्वादन तथा आनन्दानुभूति आदि उसकी सफलता के मापदण्ड हैं। अन्य लोगों पर प्रभावोत्पादन का अवसर इसमें नहीं। अधिक महत्त्वपूर्ण बात है पठित-सामग्री की मात्रा। गति, मात्रा तथा बोध ये ही मौन-पठन के लक्ष्य हैं।

मौन पठन के गुण—

पहले समय में कक्षा में सस्वर-पठन को ही स्थान दिया जाता था, मौन-पठन को नहीं। आधुनिक प्रवृत्ति इसके बिल्कुल विरुद्ध है। अब कक्षा में मौन-पठन को अधिकाधिक स्थान दिया जाता है। इसके कई कारण हैं। इस पठन में एक तो यह अच्छाई है कि एक ही समय में सभी लोग कार्य करते रहते हैं। पूर्ण कक्षा का सक्रिय-सहयोग बना रहता है। इसके साथ ही साथ हर एक छात्र अपनी गति से अग्रसर होता है। अपनी व्यक्तिगत सुविधा के अनुकूल बिना दूसरों की गति से बाध्य हुए स्वतन्त्र गति से कार्य होता रहता है। इस प्रकार इस क्रिया में वैयत्तिक तथा सामूहिक दोनों प्रकार के कार्यों का लाभ सम्मिलित रहता है। पठन का वास्तविक रूप तो यही है, जिसमें रूपरेखा-कृति के सहारे भावार्थ-बोध की क्रिया सम्पन्न होती है। इस क्रिया में छात्रों को मञ्चभय की आशङ्का नहीं रहती और न दूसरों के सम्मुख कमजोरी खुलने से हीनता के भाव की सम्भावना ही। पुस्तकालय आदि सार्व-

जनिक स्थानों पर जैसी पठन-क्रिया करनी पड़ती है उसका अभ्यास मौन-पठन की स्थिति में ही मिलता है। व्यवहारिक जीवन में इसी क्रिया की अधिक उपयोगिता है; क्योंकि स्वाध्याय में तथा जीवन के अन्यान्य-स्थलों में इसी प्रकार की पठन-क्रिया अपेक्षित रहती है। इसकी आवश्यकता सभी को समान-रूप से पड़ती है। सस्वर-पठन तो बहुत विशेष अवसरों पर विशेष लोगों को ही अपेक्षित रहता है।

मौन-पठन के दोष—

इस प्रकार की क्रिया के कुछ दुष्परिणाम भी सम्भव हैं। एक तो इससे छिछले अध्ययन की आदत पड़ जाती है। किसी चीज़ को खूब मनन करके गहराई से समझने की अपेक्षा जिस-तिस प्रकार झटपट समाप्त करने की धुन अधिक रहती है। इस प्रकार का सरसरी दृष्टि से किया गया अध्ययन विद्यार्थियों के लिये हितकर सिद्ध नहीं होता। इस प्रकार के पठन में गलत आदतों की जाँच करने या उनका सुधार करने की कोई युक्ति नहीं है। यह भी नहीं जाना जा सकता कि काम चोर विद्यार्थी समय नष्ट कर रहा है या कुछ पढ़ रहा है। इस दशा में कामचोर विद्यार्थी अपनी वृत्ति के लिए अच्छा अवसर पा जाते हैं। अनुकरण जैसे महत्वपूर्ण तत्त्व को इसमें कोई स्थान नहीं है, अतः इस क्रिया में शिक्षक का आदर्श अधिक योग नहीं दे सकता। साथ ही साथ इस क्रिया में श्रवण-मूलक तथा वाणी-जन्य अनुभूतियों का पूर्ण निराकरण है, जिससे भाषा सम्बन्धी आदतों के निर्माण में वाञ्छनीय प्रत्यय सम्बन्ध कम मात्रा में अवशेष रह जाते हैं और भाषा-कौशल के समुचित विकास में बाधा होती है।

दोष-निवारण के उपाय--

मौन-पठन की क्रिया को सफलता प्रदान करने के लिए यह आवश्यक है कि मौन-पठन के उपरान्त बोध-परीक्षा अवश्य हो। इससे बालकों को समझ कर पढ़ने तथा प्रयत्नपूर्वक भाव-ग्रहण की चेष्टा करनी पड़ती है। मौन-पठन वस्तुतः मौन हो, उसमें गुनगुनाहट या फुसफुसाहट न हो, तभी वह ठीक समझा जायगा अन्यथा कक्षा को परिस्थिति में तो विघ्न

होगा ही; किन्तु साथ ही साथ समुचित प्रशिक्षण भी नहीं सम्पन्न होगा। मौन-पठन सदैव प्रयोजन-पूर्ण हो। इसके द्वारा बालक अपना प्रयोजन पूरा करने की धुन में हो, तभी यह पूर्णतया सफल हो सकेगा। बालक को इस कार्य के लिए इस भाँति प्रेरित किया जाय कि वह इसमें अपना ही प्रयोजन समझ कर संलग्न हो। पुस्तकालय-पठन तो विशेषकर ऐसी ही प्रेरणा तथा लगन से सफल होता है। कार्य में ऐसी प्रेरणा तथा प्रयोजन-पूर्णता का समावेश करने की दृष्टि से पठन के आरम्भ में ही प्रेरक प्रश्न दे देना हितकर होता है, जिसका उत्तर वे अनुच्छेद पढ़कर ज्ञात करने का प्रयत्न करें। छात्रों की रुचियों, आवश्यकताओं तथा योग्यताओं का ध्यान रखकर उन्हें उनके योग्य पठन-सामग्री बतलाना भी शिक्षक का कर्त्तव्य है, तभी वह इस क्रिया को पूर्ण सफल बना सकेगा। इससे साहित्यिक सुरुचि का निर्माण करने में सहायता मिलती है।

निष्कर्ष—

यह तो मान ही लेना पड़ेगा कि चरम लक्ष्य तो तीव्रगति से मौन-पठन की योग्यता उत्पन्न करना ही है, इसके अतिरिक्त सस्वर पठन तो वैशेषिक कौशल या योग्यता है जो विशेष अवसरों पर ही उपयोगी सिद्ध होती है, अतः उसे मुख्य लक्ष्य के रूप में स्थान नहीं दिया जा सकता। परन्तु यह भी ध्यान रखना चाहिए कि सस्वर पठन भाषण-अभ्यास में सहायक है और अनुकरण की प्रवृत्ति का उपयोग भी इसी सस्वर पठन में सम्भव है। अतः इसे सर्वथा निर्वासित नहीं किया जा सकता। दोनों प्रकार के पठन का यथोचित अभ्यास कराया जाय; किन्तु मौन-पठन को उच्चतर कक्षाओं में अधिकाधिक प्रधानता दी जाय।

अशुद्धियों का सुधार—

पठन-क्रिया में भी छात्रों द्वारा अशुद्धियाँ होती ही हैं और इनका सुधार करना पठन सम्बन्धी पाठों में एक मुख्य समस्या होती है। मौन-पठन में तो केवल अर्थ-ग्रहण या भावबोध की ही गलती हो सकती है, जिसे दूसरे बालकों से सुधारवा देना चाहिए या पुनः पठन का अवसर

देकर उसी छात्र से सुधरवा लेना कठिन नहीं होता। किन्तु सस्वर पठन में उच्चारण आदि की अशुद्धियों को पठन के अन्त में उसी पाठक को प्रथम अवसर देकर, तब अन्य छात्रों की सहायता से या स्वयं बता कर ठीक कराना चाहिए। पाठक को पठन के बीच में न रोका-टोका जाय।

तुलनात्मक अध्ययनार्थ ग्रन्थ-सूची

Thompson & Wyatt : The Teaching of English in India, Chapter VI & VIII

Ryburn : Suggestions for the Teaching of English in India, Chapter IV

Morris : The Teaching of English as a Second Language, Chapter IX

Godfrey D'Souza : The Teaching of English, Chapter VIII

Menzel : Suggestions for the Teaching of Reading in India.

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) अँग्रेजी-शिक्षण में सस्वर-पठन की क्या आवश्यकता है? विभिन्न प्रकार के सस्वर-पठन का परिचय देते हुए उनकी उपयोगिता बताइए।

(२) सस्वर-पठन के गुण-दोषों का विवेचन कीजिए और दोषों के निवारण के उपाय बताइए।

(३) मौन-पठन का क्या उद्देश्य है? सस्वर-पठन से इसकी तुलना करते हुए बताइए कि आप किसे अधिक महत्व देंगे और क्यों?

(४) बालकों द्वारा पठन-क्रिया में क्या अशुद्धियाँ हो सकती हैं? उनका सुधार कैसे करोगे?

चतुर्थ खण्ड

पुस्तकों का पठन-पाठन

- पुस्तकें तथा पाठ्य सामग्री
- पाठ्य तथा पूरक पुस्तकें।
- शब्दज्ञान की समस्या।
- साहित्य, सौन्दर्यानुभूति तथा रसास्वादन की शिक्षा।
- गद्य तथा कविता-शिक्षण में अन्तर।

अध्याय १३

पुस्तकें तथा पाठ्य सामग्री

पुस्तकों का उपयोग--

किसी भी विषय के शिक्षण का एक मुख्य साधन या उपकरण है, उस विषय की उपयुक्त पाठ्य पुस्तक। जिन विषयों में अच्छी पाठ्य-पुस्तकें प्राप्य नहीं होतीं उन विषयों का पठन-पाठन अत्यन्त अव्यवस्थित तथा असंतोषजनक रह जाता है। विदेशी भाषा के विषय में भी यह तथ्य अक्षरशः सत्य उतरेगा। कुछ विद्वान तथा शिक्षक पाठ्य पुस्तक को हेय समझते हैं और उनके मतानुसार पाठ्य पुस्तक विषय के सम्यक बोध में बाधक है सहायक नहीं। इससे स्वतन्त्र तथा बन्धनमुक्त रहकर वे अधिक अच्छा और ठोस कार्य कर सकते हैं। किन्तु इस सम्बन्ध में दो बातें ध्यान देने की हैं। एक तो यह कि ऐसी आलोचना प्रचलित पुस्तकों की अनुपयुक्तता पर प्रकाश डालती है न कि उपयुक्त पुस्तकों को भी बहिष्कृत करने के पक्ष में है। और दूसरी बात यह कि पुस्तक तो औसत योग्यतावाले शिक्षक के प्रदर्शनार्थ है न कि प्रकाण्ड प्रतिभा सम्पन्न शिक्षक के लिए। और तिस पर पुस्तक तो साधनमात्र है न कि साध्य—वह तो भाषाकार्य का श्रीगणेश करने के लिए है न कि इतिश्री करने के लिए।

पाठ्य तथा पूरक पुस्तकें--

विदेशी भाषा में प्राय: दो प्रकार की पुस्तकें प्रयोग की जाती हैं—एक तो पाठ्य पुस्तकें और दूसरी पूरक-पुस्तकें। पाठ्य पुस्तकों का गहन अध्ययन करना पड़ता है तथा पूरक-पुस्तकों का साधारण अध्ययन। पाठ्य पुस्तक का गहन अध्ययन भाषा पर अधिकार बढ़ाने के ध्येय से किया जाता है। पूरक-पुस्तक का अध्ययन इस नवार्जित

अधिकार को पुष्ट तथा स्थायी बनाने के विचार से किया जाता है। इसीलिए पाठ्य पुस्तकों का अध्ययन तथा बहुत सूक्ष्म एवं विस्तृत विवेचन कक्षा में शिक्षक की सहायता से सम्पन्न करना आवश्यक है। पूरक-पुस्तकों का पठन अपने आप ही सम्पन्न किया जा सकता है। परन्तु जैसा ऊपर संकेत किया गया है पाठ्य पुस्तक को आरम्भ विन्दु या केन्द्र विन्दु-मात्र समझना चाहिए न कि भाषा-कार्य को सर्वेसर्वा। पाठ्य पुस्तकों के द्वारा भाषा में अन्य सभी प्रकार के अभ्यासों के लिए प्रेरणा मिलनी चाहिए। परन्तु उसे सेवक बनाकर उससे काम लिया जाय, उसको स्वामी बनाकर उसकी उपासना न की जाय। शिक्षक तथा विद्यार्थी दोनों का पाठ्य पुस्तक पर पूर्ण अधिकार हो न कि वे दोनों उसके वशीभूत हो जायँ।

पूरक-पुस्तकों के तीन मुख्य कार्य होते हैं—(१) भाषा सम्बन्धो ज्ञान की पुष्टि करना (२) कुछ नवीन विषय-वस्तु का परिचय देना या जानकारी बढ़ाना और (३) अध्ययन तथा पठन की क्रिया द्वारा आनन्द तथा मनोरंजन प्रदान करना। ये तीनों कार्य सुचारुतापूर्वक तभी सम्पन्न हो सकते हैं जब वे निम्नाङ्कित गुणों से युक्त हों :—

(१) वे अत्यन्त सरल हों अर्थात् पाठ्य पुस्तकों की अपेक्षाकृत अधिक सुबोध हों, जिससे वे विद्यार्थियों के व्यक्तिगत प्रयास से सुगमता पूर्वक अध्ययन की जा सकें।

(२) वे अत्यन्त रुचिकर हों जो बालकों के ध्यान को एक बार आकर्षित करके उसे पर्याप्त समय तक लगाए रह सकें।

(३) वे उपयुक्त चित्रों से सुसज्जित हों।

(४) उनमें विषय-वस्तु कम ही हो; लेकिन छापे के अक्षर बड़े हों और अधिक सुन्दर हों।

(५) उनमें रुचि की व्यक्तिगत विभिन्नता तथा विकल्प के लिए पर्याप्त क्षेत्र हो।

(६) वे सस्ती हों जिससे वे अधिक संख्या में कक्षा-पुस्तकालय तथा स्कूल-पुस्तकालय में प्राप्त हो सकें।

(७) वे हर प्रकार से चित्ताकर्षक तथा मनमोहक हों—विषयवस्तु की दृष्टि से भी और शीर्षक, जिल्द, चित्र, स्याही, छपाई आदि की दृष्टि से भी।

पाठ्य सामग्री का चयन—

इन पुस्तकों की पाठ्य सामग्री चयन करते समय बहुत सावधानी रखने की आवश्यकता है। यह कार्य शिक्षकगण या विद्यार्थीगण का नहीं है। यह तो लेखकों, सम्पादकों, संकलन-कर्त्ताओं और पुस्तक-प्रणेताओं का है। विदेशी भाषा की छात्रोपयोगी पाठ्य तथा पूरक पुस्तकों के लिए सामग्री की रचना करते समय, उसका संकलन तथा उसको प्रस्तुत करने में, जिन आधारभूत सिद्धान्तों तथा तत्त्वों का ध्यान रखना पड़ता है, उनका संक्षिप्त विवेचन यहाँ आवश्यक है। इस विषय की पाठ्य सामग्री के रचने तथा संकलन करने में कई प्रकार के तत्त्वों का ध्यान रखना पड़ता है जिनमें से कुछ तो भाषा तथा साहित्य सम्बन्धी हैं तथा कुछ मनोविज्ञान तथा अध्यापन-शास्त्र सम्बन्धी। इनका पृथक-पृथक स्पष्टीकरण अधिक उपयुक्त होगा।

भाषा-तत्त्व—

भाषा सम्बन्धी तत्त्वों में सर्व-प्रमुख है शब्दावली। सर्वप्रथम अधिकतम प्रयुक्त होने वाले शब्दों से युक्त विषय-वस्तु रचित तथा संकलित की जाय। तदुपरान्त उससे कुछ कम प्रयुक्त होने वाले शब्द और तब फिर और भी कम प्रचलित। अमेरिका तथा इंगलैंड आदि देशों में थार्नडाइक, राइस आदि विद्वानों ने इस प्रकार की शब्दावली प्रकाशित की है जो शब्दों को प्रचलन की मात्रा के अनुसार वर्गबद्ध करती है। परन्तु विदेशी वातावरण में कुछ दूसरे शब्द अधिक प्रचलित होंगे जबकि भारत में कुछ दूसरे। अपने देश के वातावरण के अनुसार शब्दावली तैयार करने का कार्य डॉ० माइकेल वेस्ट ने किया था। अब तो केन्द्रीय अध्यापनकला

संस्था इलाहाबाद से भी इस प्रकार की शब्दावली तैयार की गई है। इन छँटे हुए शब्दों में से एक समय में थोड़े-थोड़े नए शब्द प्रयोग करते हुए पुराने शब्दों की निरन्तर पुनरावृत्ति करते हुए पाठ्य-सामग्री रचित तथा संकलित की जाय। शब्द की प्रथम आवृत्ति में उसका सर्वाधिक प्रचलित अर्थ तथा प्रयोग ही ध्यान में लाया जाय। कुछ रचना-संगठन में सहायक शब्द जो अन्य शब्दों के प्रयोग में सहायक सिद्ध होते हैं, जल्दी ही सिखा दिए जायँ।

भाषा सम्बन्धी दूसरा तत्त्व है व्याकरण तथा वाक्य-संगठन का। अँग्रेज़ी भाषा के सबसे अधिक प्रचलित वाक्य-संगठनों का प्रयोग पहले किया जाय। इसके उपरान्त कम प्रचलित प्रकार के वाक्य-संगठन प्रस्तुत किए जायँ। इनमें भी शब्दों की ही भाँति दीर्घकालीन नियोजन तथा अधिक सूक्ष्म श्रेणीकरण की आवश्यकता पड़ेगी। जहाँ तक हो सके केवल एक ही प्रकार का नया वाक्यसंगठन एक समय में लिया जाय। इसको खूब अभ्यास कर लेने के बाद ही दूसरा नया वाक्य-संगठन लिया जाय। पुराने प्रकार के वाक्य-संगठन की निरन्तर पुनरावृत्ति होती रहे। बहुत वैशेषिक तथा पारिभाषिक व्याकरण उच्च कक्षाओं के लिए छोड़ दी जाय और आरम्भिक कक्षाओं में प्रयोगात्मक या व्यावहारिक व्याकरण ही यत्र-तत्र समाविष्ट की जाय।

साहित्यिक तत्त्व—

साहित्यिक तत्त्व के दृष्टिकोण से यह ध्यान रख कर संकलन किया जाय कि सभी प्रकार की साहित्यिक रचनाओं को स्थान मिल सके यथा गद्य, कविता, नाटक, कहानी, बोलचाल, वर्णनात्मक, कथात्मक, भावात्मक रचनाएँ आदि आदि। इन सब में समृद्धि तथा विभिन्नता का पर्याप्त समावेश हो। बालकों की आयु तथा योग्यतानुसार श्रेष्ठतम नमूने उपस्थित किए जायें और यथाशक्ति उत्तम लेखकों की रचनाओं में से जो उपयुक्त हों उन्हें अवश्य स्थान दिया जाय। भाषा के माध्यम पर अधिकार हो जाने की अधिक प्रतीक्षा न की जाय। साहित्य का पूर्वस्वाद

देने के लिए कुछ परिस्थितियाँ प्रयत्नपूर्वक ही उत्पन्न कर दी जायँ। इस तत्त्व का एक और भी आवश्यक गुण होना चाहिए, उसका प्रतिनिधित्व—अर्थात् साहित्य के इतिहास में से प्रायः सभी धाराओं तथा प्रतिधाराओं का तथा विभिन्न शैलियों तथा मतान्तरों का समावेश हो सके—इस बात का भी प्रयत्न किया जाय। यह सब कक्षा की योग्यता तथा मानसिक विकास के अनुसार ही करना पड़ेगा।

मनोवैज्ञानिक तत्त्व--

मनोवैज्ञानिक तत्त्व के अन्तर्गत जिन बातों का ध्यान रखना पड़ेगा उनमें से मुख्य-मुख्य यह हैं। एक तो बालक के अनुभव तथा पूर्वज्ञान का ध्यान रखकर पाठ्य सामग्री संकलित करनी होगी। दूसरे उसकी आवश्यकताओं तथा रुचियों का भी ध्यान रक्खा जायगा। उदाहरणार्थ छोटी कक्षाओं में बहुत साफ बड़े-बड़े अक्षर, रंगीन स्याही तथा चित्र आदि रक्खे जायँगे। शब्दों, वाक्यों तथा पाठों का आकार बालकों के बोध-विस्तार का ध्यान रखते हुए निर्धारित करना पड़ेगा। बालकों के समीपतम दैनिक वातावरण की बातें पहले संकलित की जाएँगी और दूर की बाद को। नाटकीय तत्त्व का पूरा लाभ उठाया जायगा और इसका प्रयोग कथा, कहानी, कथोपकथन, आदि संकलित करके किया जायगा। अँग्रेज़ बालकों के तुलनात्मक अनुभवों को क्रमशः समाविष्ट किया जायगा और धीरे-धीरे अँग्रेज़ों के सामान्य जीवन के अन्य पक्षों का परिचय देने वाले अँश लिए जाएँगे। परन्तु नितान्त स्थानीय साहित्य की रचना का प्रयास न करके सार्वभौमिक साहित्य के मुख्यतम श्रेष्ठ आदर्शों को ही स्थान देने का अधिक प्रयत्न किया जायगा।

अध्यापन-शास्त्रीय तत्त्व—

अध्यापन-शास्त्र से सम्बन्धित तत्त्वों में से अधिक विचारणीय हैं उसके सर्वमान्य-सूत्र। वस्तु-सामग्री को शब्दावली, वाक्य-संगठन तथा व्याकरण के रूपों की दृष्टि से भी और साथ ही साथ भाव-पक्ष की दृष्टि से भी इन सर्वमान्य सूत्रों के ही अनुकूल क्रमबद्ध करना पड़ेगा। इनका उल्लंघन

होने पर शिक्षण-कार्य में अड़चन तथा असफलता होगी। सामग्री का क्रमविन्यास सरल से जटिल, सुगम से कठिन, परिचित से अपरचित, ज्ञात से अज्ञात, समूर्त से अमूर्त, मनोवैज्ञानिक से तार्किक तथा अनुभव-जन्य से विवेक-जन्य की ओर अग्रसर होगा। अभिव्यक्ति की स्वाभाविकता की यथाशक्ति रक्षा करते हुए सीमित क्षेत्र के अन्तर्गत ही अनुभूतियों की विभिन्नता एवं समृद्धि को सङ्कलन में समाविष्ट किया जाएगा। बहुत सरल तथा सुबोध प्रकार के उदात्त, गम्भीर, विनोद-पूर्ण, दुःखान्त, रोमाञ्चकारी, साहसिक, उपाख्यान, परीकथाएँ, जीव-जन्तुओं की कथाएँ तथा अन्य सभी प्रकार के साहित्य का सङ्कलन करके विदेशी लोगों के जीवन तथा विचारों की प्रतिनिधि अनुभूतियों तथा प्राकारिक परिस्थितियों का दिग्दर्शन कराया जाएगा। तभी वस्तुतः विदेशी भाषा-शिक्षण द्वारा मानवतावादी उद्देश्यों की पूर्त्ति हो सकेगी। विदेशी लोगों के जीवन तथा विचारों के उन पक्षों को सङ्कलित किया जाएगा, जिन्हें हमारे विद्यार्थी अवगत करके उनका मर्म ग्रहण कर सकें। भूगोल, इतिहास मातृभाषा आदि अन्य विषयों में किए गए कार्य से सम्बन्धित सामग्री को अँग्रेज़ी माध्यम के द्वारा व्यक्त करके प्रस्तुत करने की भी चेष्टा की जाएगी, जिससे समन्वय के सिद्धान्त का भी निर्वाह हो सकेगा। इस प्रकार सर्वप्रथम विदेशी जीवन के उन पक्षों को प्रधानता देते हुए जो हमारी संस्कृति से साम्य रखते हैं तदुपरान्त, उच्च कक्षाओं में उनकी अनोखी परिस्थितियों को हृदयङ्गम कराने की चेष्टा की जायगी।

पुस्तकों की व्याख्या—

पुस्तकों का सम्पादन तथा पाठ्य-सामग्री का सङ्कलन अत्यन्त वैशेषिक कार्य है। इसी की कुशलता तथा सफलता पर समस्त शिक्षण-कार्य की सफलता तथा उस पाठ्य-विषय के शिक्षण की उद्देश्य-पूर्त्ति निर्भर है। परन्तु सङ्कलन-मात्र तो अत्यन्त यांत्रिक प्रक्रिया है—उसका गतिशील पक्ष है पुस्तकों की व्याख्या। व्याख्या की ही सहायता से सङ्कलित सामग्री को अवगत तथा हृदयङ्गम कराया जा सकेगा। व्याख्या के अन्तर्गत दो प्रधान पक्ष होते हैं—एक तो विषय-वस्तु का सम्यक्-ग्रहण और दूसरा उसकी

सुन्दरताओं का सुबोध-मुखरण। यह द्विपक्षीय व्याख्या-प्रक्रिया चार भिन्न स्तरों पर घटित होती है जो निम्नाङ्कित हैं :—

(१) शाब्दिक या यांत्रिक स्तर—इसमें शब्दार्थ या मुहावरों का अर्थ साधारण रूप से स्पष्ट कर देते हैं।

(२) व्याकरण या पारिभाषिक-स्तर—इसमें शब्दों के रूप-रूपान्तर, उनका प्रयोग, वाक्य-संगठन तथा उनका विशिष्ट प्रभाव स्पष्ट करते हैं। गद्य में शब्द-व्युत्पत्ति या पद-व्याख्या तथा कविता-शिक्षण में अन्वय तथा रस, अलंकार, छन्द-योजना आदि इसी स्तर की व्याख्या के उदाहरण हैं।

(३) विवेचनात्मक या तार्किक स्तर—इसमें भाव-शृङ्खला या विचार-क्रम का बौद्धिक विश्लेषण होता है।

(४) कलात्मक या सौन्दर्यात्मक-स्तर—इसमें साहित्यिक रसास्वादन तथा मार्मिक-अभिव्यञ्जना होती है, जो कल्पना तथा सूझ के द्वारा विषय-वस्तु के भावनात्मक पक्ष को हृदयङ्गम करने पर ही सम्भव है।

इन सभी प्रकार की व्याख्याओं का स्पष्टीकरण इन पक्षों की शिक्षण विधियों का वर्णन करते समय यथा-स्थान किया जाएगा।

तुलनात्मक अध्ययनार्थ ग्रन्थ-सूची

Tomkinson : The Teaching of English in India, Chapter IV

French : The Teaching of English Abroad, Book I, Chapter VII; Book II, Chapter V, VI, and VII; Book III, Chapters II and VI

Ryburn : Suggestions for the Teaching of English in India, Chapter IV

Thompson & Wyatt : The Teaching of English in India, Chapters V, VI, VIII & X

Champion : Lectures on Teaching English in India, Lectures VIII & IX

Mehta : The Teaching of English in India, Chapters V, VI & XIV

Godfrey D'Souza : The Teaching of English, Chapters V, VI, & VII

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) अँग्रेज़ी पाठ्य तथा पूरक पुस्तकों की सामग्री का संकलन किन सिद्धान्तों के अनुसार होना चाहिए ?

(२) पाठ्य पुस्तक तथा पूरक पुस्तकों में क्या अन्तर होता है और उनकी पठन-विधि किस प्रकार भिन्न है ?

अध्याय १४

शब्द-ज्ञान की समस्या

शब्द-व्याख्या की युक्तियाँ—

भाषा-कुशलता का आधारभूत तत्त्व है, शब्द-ज्ञान और उनके यथोचित प्रयोग की योग्यता! पठन सम्बन्धी पाठों में नित्य-नवीन शब्दों का साक्षात्कार सहज सम्भव है। इन नए-नए शब्दों का प्रथम यथेष्ट परिचय तथा बोध कराना अध्यापन-कला की एक कसौटी है। शब्द की व्याख्या किस प्रकार, किस सहायक सामग्री के योग से की जाय कि वह बालक के मानसिक अनुभव का स्थायी अँग बन जाय—इसकी युक्ति सोच कर उसे कार्यरूप में परिणत करके सफलता पाना सिद्ध-हस्त शिक्षक का लक्षण है। किसी शब्द-विशेष की व्याख्या किसी वर्ग-विशेष की मानसिक पृष्ठभूमि देखकर ही सफलता-पूर्वक की जा सकती है। किन्तु उसकी कोई एक ही युक्ति हो, ऐसी बात नहीं। उसी शब्द की व्याख्या करने की अनेक उत्कृष्ट युक्तियाँ हो सकती हैं। शिक्षक स्वयं जिस युक्ति को कुशलतापूर्वक कार्यान्वित करके कार्य सिद्ध करले, वही अच्छी युक्ति मानी जाएगी। इस सम्बन्ध में जो विविध युक्तियाँ उपयोग की जाती हैं उनका परिचय यहाँ दे देना उचित है।

स्थूल युक्तियाँ—

शब्द-व्याख्या की सबसे अधिक लोकप्रिय युक्ति है, वस्तु या पदार्थ का साक्षात कराना। देखो और कहो विधि का तो मुख्य आधार यही है। विशेषकर परिचित पदार्थों तथा गुणों के वाचक शब्दों के लिए यह युक्ति सर्वोपयुक्त हैं। आरम्भिक अवस्था में तथा निम्न कक्षाओं में इसी का प्रयोग अधिक करना चाहिए। यह स्थूलतम स्तर है। ज्यों-ज्यों अवस्था प्रथा ज्ञान बढ़ता जाय त्यों-त्यों सूक्ष्मतर स्तरों की ओर अग्रसर

होना चाहिए। जहाँ वास्तविक पदार्थ का साक्षात् सम्भव न हो वहाँ उसका मॉडल या चित्र या उसका रेखाचित्र ही प्रस्तुत कर दिया जाय।

कार्य-प्रदर्शन—

इसी प्रकार की एक अन्य युक्ति है, कार्य-प्रदर्शन ! यह क्रिया-पदों या क्रिया-विशेषण-पदों के लिए अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होती है। किन्तु इस युक्ति का प्रयोग अत्यन्त सावधानी-पूर्वक करना चाहिए अन्यथा शिक्षक का उपहास होगा और युक्ति भी विफल हो जाएगी। यह निश्चित है कि यदि प्रदर्शित क्रिया इस ढङ्ग से प्रदर्शित की जाय कि वह कक्षागत साधारण व्यवहार से पृथक स्पष्ट झलक जाय तो इस की बराबर रोचक तथा प्रभावोत्पादक अन्य कोई युक्ति नहीं सिद्ध होगी।

वाक्य-प्रयोग—

जब इस प्रकार की युक्ति न सूझ पड़े या जब कक्षा-वर्ग उच्च-स्तर का हो जिसमें स्थूल-युक्तियों की अपेक्षा-कृत सूक्ष्म-युक्तियाँ अधिक छात्र-प्रिय सिद्ध हों तब एक मुख्य युक्ति है वाक्य-प्रयोग। यह पूर्णतया मौखिक स्तर की युक्ति है और भाषा-योग्यता पर ही आधारित है। ऊपर से देखने में तो यह अत्यन्त सुगम प्रतीत होती है किन्तु इसके सफल प्रयोग के लिए जो वाक्य निर्मित किए जायँ उनसे नवीन शब्द का वही मनोवांछित अर्थ निकलना चाहिए अन्य कोई नहीं। इस युक्ति से सूक्ष्म भाव-वाचक शब्दों की भी व्याख्या की जा सकती है। यह कोई आवश्यक नहीं कि केवल एक ही वाक्य में प्रयोग पूरा कर दिया जाय। आवश्यकतानुसार पूर्ण तथा सही परिस्थिति अवगत कराने का प्रयत्न किया जाय।

सूक्ष्म युक्तियाँ—

जहाँ उपर्युक्त कोई भी युक्ति प्रयुक्त न हो सके वहाँ भी प्रत्यक्ष अर्थकथन की अपेक्षाकृत अन्य उपाय अपनाए जायँ तो अधिक श्रेयस्कर होगा। इनमें से कुछ उपाय हैं—परिभाषा, व्युत्पत्ति, तुलना, विलोम, पर्याय,

आदि देकर व्याख्या करना। किन्तु जहाँ यह भी सम्भव न हो वहाँ भावार्थ-कथन या अनुवाद ही से काम लिया जाय। जहाँ कहीं अवसर प्राप्त हो वहाँ व्याख्या के उपरान्त बालकों से वाक्य-प्रयोग भी करवाया जाय। इससे शब्द-ज्ञान निष्क्रिय न रह कर सक्रिय हो जाता है।

इन युक्तियों की उपयोगिता—

किन्तु प्रश्न किया जा सकता है कि आखिर इन युक्तियों की आवश्यकता ही क्या है? क्यों न बालक को सीधे से अर्थ बताकर फुरसत ली जाय? व्यर्थ में उसको भी हैरान करना और अपनी भी माथा-पच्ची किस लिए? ऐसे प्रश्न तो अध्यापन-कला एवं प्रशिक्षण कार्य-क्रम में पद-पद पर उठते हैं। और उनका एकमात्र उत्तर है कि वास्तविक शिक्षा प्रत्यक्ष-रूप से बता देने में नहीं, बल्कि बालक को इस भाँति प्रोत्साहित एवं प्रेरित करने में है कि वह स्वयं अपने परिश्रम एवं प्रयास से ज्ञान तथा कौशल सीखे और अर्जित करे। तभी वह ज्ञान स्थायी एवं उपयोगी सिद्ध होगा। इसी सिद्धान्त को लेकर अनेकों शिक्षा-विधियाँ आधुनिक युग में प्रचलित हुई हैं और उन्हें आशातीत सफलता भी मिली है। उपर्युक्त शब्द-व्याख्या युक्तियों का भी यही मन्तव्य है कि बालक अपने निजी प्रयास से अपने शब्द-ज्ञान की वृद्धि करे, तभी वह चिरस्थायी होगा।

तुलनात्मक अध्ययनार्थ ग्रन्थ-सूची

Champion	:	Lectures on Teaching English in India, Lecture VIII
Ballard	:	Teaching and Testing English, Chapter III
Morris	:	The Teaching of English as a Second Language, Chapter IV
Stott	:	Language Teaching in the New Education, Chapter XI

Thompson & Wyatt : The Teaching of English in India, Chapter IV & VI

V. S. Mathur : Studies in the Teaching of English in Indian Schools, Chapter II

French : The Teaching of English Abroad, Book I, Chapters III & IV; Book III, Chapter IV

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) विद्यार्थियों का अँग्रेज़ी शब्द-ज्ञान स्पष्ट तथा स्थायी बनाने के लिए तुम क्या उपाय करोगे? इस ज्ञानोपार्जन में तुम किस प्रकार उन्हें प्रेरित करोगे?

(२) शब्द-व्याख्या में तुम किन-किन युक्तियों का प्रयोग करोगे? इन युक्तियों की क्या आवश्यकता है?

अध्याय १५

साहित्य, सौंदर्यानुभूति तथा रसास्वादन की शिक्षा

साहित्य का महत्व—

मनुष्य की सांस्कृतिक निधि का एक बहुमूल्य रत्न है साहित्य—विशेषकर ललित साहित्य। और "साहित्य संगीत कला-विहीनः" वाली लोकोक्ति में जो साहित्य को ही प्राथमिकता दी गई है, वह संयोगवश नहीं, सकारण है, और वह उचित भी है। मानव-जीवन में साहित्य का महत्व स्वयं-सिद्ध है। आजकल के भौतिकवादी तथा विज्ञानवादी युग में यंत्रों की प्रगति तथा कलाओं की क्षति हुई है। परन्तु मनुष्य की अन्तरात्मा तथ्यज्ञान, प्रकृति-विजय तथा भौतिक समृद्धि-सञ्चय-मात्र से सन्तुष्ट नहीं हो जाती। रोटी मानव-जीवन का आरम्भ है, अन्त नहीं। मनुष्य की अन्तरात्मा को भावनानुभूति भी चाहिए—एक मर्मस्पर्शी हृदयग्राही काल्पनिक जगत की साकार झाँकी, जिसमें रमण करके वह यथार्थ जगत के शुष्क और क्लान्तिपूर्ण अनुभवों के भार से कुछ क्षणों के लिए मुक्ति पा सके। ऐसा अवसर उसे कलाओं तथा साहित्य के सेवन में प्राप्त होता है।

साहित्य के अध्ययन से मनुष्य की सौन्दर्योपासना की प्रवृत्ति तृप्त होती है। साहित्यकार के दृष्टिकोण से तादात्म्य स्थापित करके पाठक की सृजनात्मकता की भी तुष्टि हो जाती है। साहित्य मनुष्य को शुद्ध आनन्द की अनुभूति कराता है, जिसमें कलुषित अनुभवों या विचारों का संसर्ग नहीं होता। यह मनुष्य को उच्च विचारशील बनाता है। उच्च आदर्शों के दिग्दर्शन द्वारा जनता में नैतिकता का प्रचार करता है, और हमें उसी प्रकार के उच्च विचारों के अनुरूप आचरण करने के लिये प्रेरित

करता है। सौन्दर्य के पहचानने में अभ्यास देकर यह हमें अपने वातावरण के मार्मिक पक्षों की ओर अधिक सचेत तथा जागरुक कर देता है, और इस भाँति हमारे मानसिक अनुभव को अधिक समृद्ध तथा सूक्ष्म बनाता है। भावनाओं के उदात्तीकरण तथा रेचन में भी साहित्य सहायक होता है। इसके द्वारा लोगों के अवकाश-काल का सदुपयोग हो जाता है। वे खाली समय को सुन्दर, आनन्ददायक तथा शिक्षात्मक क्रिया में लगा कर सुखी रह सकते हैं। यह हर प्रकार से मनुष्यों के मन तथा हृदय को सुसंस्कृत तथा परिष्कृत बनाता है। और भाषा-शिक्षण में साहित्य की महत्ता तो इसलिए अधिक है कि यह शब्दों के प्रतीकात्मक पक्ष का बोध कराने में बहुत सहायक होता है। शब्दों को केवल आन्तरिक अनुभूतियों का प्रतीक समझकर हमें लक्षण तथा व्यंजना द्वारा उनकी शाब्दिक ध्वनि से परे विस्तृत तात्पर्य को ग्रहण करने का अभ्यास मिलता है। साहित्य में प्रयुक्त होकर शब्दों की प्रतीकात्मक अर्थशक्ति बढ़ जाती है। इस विवर्द्धित अर्थगाम्भीर्य को साहित्य के अध्ययन तथा मनन द्वारा ही ग्रहण किया जा सकता है।

स्कूल में स्थान—

साहित्य यदि सांस्कृतिक जीवन का इतना महत्वपूर्ण अँग है तो इसका सेवन और अध्ययन होना ही चाहिए। परन्तु क्या इसे स्कूल के पाठ्यक्रम में स्थान दिया जा सकता है? इस पर बहुधा दो आपत्तियाँ की जाती हैं। एक तो यह कि साहित्य और विशेषकर काव्य-साहित्य कक्षा-शिक्षण की वस्तु नहीं। वह तो स्वाध्यायपूर्वक मनन की वस्तु है। और दूसरी यह कि अल्पायु में बालकों की बुद्धि इतनी परिपक्व नहीं हो पाती कि वे काव्य तथा साहित्य के वास्तविक सूक्ष्म सौन्दर्य का यथेष्ट बोध एवं रसास्वादन कर सकें। यह दूसरी आपत्ति विदेशी भाषा के संदर्भ में एक और रूप से रक्खी जाती है, कि बालकों का भाषा-ज्ञान इतना थोड़ा और त्रुटिपूर्ण रहता है कि काव्य-सौन्दर्य हृदयंगम कराने की सभी चेष्टाएँ विफल हो जायँगी। लाख प्रयत्न करके भी केवल शब्दार्थ में ही समय गँवा देना पड़ता है। साहित्यिक पक्ष की व्याख्या की बारी ही

नहीं आने पाती। अतः जो कुछ साहित्य-रसास्वादन सम्भव है वह केवल मातृभाषा की कक्षा में ही। विदेशी भाषा के शिक्षण में इसे कोई स्थान नहीं दिया जा सकता। यह धारणा अधिकाँश शिक्षकों तथा शिक्षा-कार्य से सम्बन्धित अन्य लोगों की है। इन सभी प्रचलित भ्रमपूर्ण धारणाओं तथा उनसे जनित शङ्काओं का समाधान अति आवश्यक है।

सौंदर्य-बोध की योग्यता अंशतः अन्तर्जात होती है और अंशतः उपार्जित। कला-सौन्दर्य तथा साहित्य-सौंदर्य की परख करने की क्षमता अभ्यास के द्वारा बढ़ती है। सभी मनुष्यों में सौन्दर्य का साक्षात्कार करने की अभिलाषा स्वभावजन्य है और इस साक्षात्कार से आनन्द की अनुभूति भी स्वाभाविक है। बालकों की सौदर्य-साक्षात्कार-शक्ति बढ़ाने की चेष्टा साहित्य के अध्ययन द्वारा सफल हो सकती है। साहित्य के क्षेत्र में सौंदर्य की अनुभूति अभी बालकों के अनुभव में परम नवीन प्रकार की आन्तरिक चेतना है, जिसकी अस्पष्टता दूर करके उसको अत्यन्त स्पष्ट करने की आवश्यकता है। साथ ही साथ उस चेतना का परिष्कार तथा उसकी गहराई तथा तीव्रता की वृद्धि भी परम आवश्यक है। उदाहरणार्थ, बालकगण साधारणतया यह तो अनुभव कर लेते हैं कि अमुक उक्ति अथवा पद अत्यन्त सुन्दर है; परन्तु वे यह नहीं ज्ञात कर पाते हैं कि उस सुन्दरता का प्रधान कारण या आधार क्या है? यदि उनको संकेत कर दिया जाय कि इस सौन्दर्य का रहस्य यह है तो उनकी सौंदर्यानुभूति कई गुनी बढ़ जाती है।

कहने का तात्पर्य यह है कि यद्यपि साहित्य या काव्य का समुचित बोध बाह्य-पठन से नहीं अपितु अन्तरानुभूति द्वारा ही सम्भव है, तथापि किसी कविता को स्वयं अपना सन्देश वहन करने को न छोड़ देना चाहिए। अधिकाँश छात्र-वर्ग के लिए साहित्य-सौंदर्यानुभूति तथा रसास्वादन में शिक्षक जैसे अग्रणी, पथप्रदर्शक तथा सहायक की आवश्यकता होती है। अतएव इस कार्य को कक्षा-शिक्षण में स्थान देना ही पड़ेगा। विदेशी भाषा सम्बन्धी शङ्काएँ भी अधिकाँशतः निर्मूल हैं। जब मातृभाषा

के साहित्य-रसास्वादन में शिक्षक की सहायता अपेक्षित है तो विदेशी भाषा में तो वह और भी अधिक वाञ्छनीय तथा आवश्यक होगी।

परीक्षणात्मक प्रमाण—

इस बात की जाँच करने के लिए कि क्या पाठशाला-गामी बालक विदेशी भाषा के काव्य तथा साहित्य का रसास्वादन कर सकते हैं, एक परीक्षण 'केन्द्रीय अध्यापनकला संस्था', इलाहाबाद में किया गया था। इस परीक्षण में ८ वीं कक्षा पास १३५ बालक लिए गए, जिन्होंने ६ वीं, ७ वीं तथा ८ वीं कक्षा में अँग्रेज़ी पढ़ी थी। इन तीनों कक्षाओं की पुस्तकों से ६ कविताएँ लेकर परीक्षण में आदर्श पठन तथा संक्षिप्त व्याख्या के उपरान्त कुछ लिखित प्रश्न सौंदर्यानुभूति विषयक दिए गए। उनके उत्तर बालकों को देने थे, चाहे हिन्दी में चाहे अँग्रेज़ी में। कविताओं की उत्तमता या श्रेष्ठता की जाँच भी कराई गई। इस परीक्षण का निष्कर्ष यह निकला कि आठवीं कक्षा के विद्यार्थी अँग्रेज़ी कविता का रसास्वादन कर सकते हैं, यदि उसकी पृष्ठभूमि परिचित हो और भाषा उनके पठित गद्य के स्तर की ही हो। वे लय, संगीत तथा अभिव्यक्ति आदि के सौंदर्य की भी अनुभूति में समर्थ हैं और इससे उन्हें भाव-बोध में सहायता मिलती है। अतएव जूनियर हाई स्कूल अवस्था में भी अँग्रेज़ी कविता तथा साहित्य के लिए स्थान देना चाहिए।

रसानुभूति का अर्थ—

वास्तविक कठिनाई तो यह है कि इस सन्दर्भ में 'सौन्दर्यानुभूति' या 'रसास्वादन' शब्द का प्रयोग दो भिन्न अर्थों में होता है, और यह कहना कठिन हो जाता है कि कब कौन सा अर्थ इष्ट है। एक अर्थ तो इसके पारिभाषिक पक्ष से सम्बन्धित है, जिसके अन्तर्गत किसी कला-कृति के गुणों की परख कुछ विशेष सिद्धान्तों, नियमों या पूर्वनिर्धारित सुनिश्चित मापदण्डों के आधार पर की जाती है जैसा कि साहित्याचार्यगण या समालोचक-वृन्द किया करते हैं। इसका दूसरा इसके साधारणपक्ष से सम्बन्धित है, जिसके अन्तर्गत किसी कलाकृति से सन्तोष तथा आनन्द

लाभ करने की क्षमता-मात्र आती है। सामान्य शिक्षा के क्षेत्र में हमें दूसरे अर्थ को मान्यता देनी चाहिए, प्रथम अर्थ को नहीं। प्रथम अर्थ में तो सभी विद्यार्थी तथा अधिकाँश शिक्षणगण भी अँग्रेज़ी कविता का पूर्ण रसास्वादन या गुणविवेचन करने में असमर्थ रहेंगे। अतः इस प्रकार का कार्य कक्षा में करना वस्तुतः असम्भव होगा। परन्तु दूसरे अर्थ में यह क्रिया साधारण विद्यार्थियों द्वारा सुगमता-पूर्वक तथा उपयोगितापूर्वक सम्पन्न की जा सकती है।

शिक्षण-विधि--

साहित्यिक सौन्दर्यानुभूति की शिक्षणविधि का प्रश्न भी बड़ा जटिल है। यह कहा गया है कि प्रणय की भाँति ही साहित्य-शिक्षण की भी कोई पूर्वनिर्धारित सफल विधि नहीं है। यह तो व्यक्तिगत प्रेरणा, कल्पना तथा भावना का प्रश्न है और भावुकता के अतिरिक्त यहाँ अन्य कोई विधि सफल नहीं हो सकती। जो शिक्षकगण अपने कवियों तथा लेखकों से परिचित हैं और विद्यार्थियों के स्वभाव को समझते हैं उन्हें इस विषय पर कोई और परामर्श नहीं चाहिए। परन्तु सौन्दर्यानुभूति के पाठों को इस प्रकार अनियोजित छोड़ देना घातक होगा। वस्तुतः भाषा के अन्य पक्ष यथा साधारण पठन, लेखन, निबन्ध, व्याकरण, श्रुतिलेख आदि तो सभी साधारण शिक्षक सफलता-पूर्वक पढ़ा लेते हैं; किन्तु रसानुभूति पाठ पढ़ाने की क्षमता बहुत थोड़े ही शिक्षकों में होती

परिस्थिति की विषमता यह है कि प्रायः सभी भाषा-शिक्षकों को यह पाठ भी लेने ही पड़ते हैं। अतः इनके पथ-प्रदर्शनार्थ कुछ नियमों का उल्लेख कर देना ही हितकर होगा।

सौन्दर्यानुभूति पाठ का प्रधान उद्देश्य होता है, प्रस्तुत कलाकृति अर्थात् कविता या गद्याँश के समस्त रूप में निहित सौन्दर्य का साक्षात्कार कराके आनन्द की अनुभूति प्रदान करना। शब्दार्थ-व्याख्या को बहुत गौण स्थान दिया जाय और केवल उतना ही जो रसास्वादन में सहायक हो। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि शिक्षक स्वयं उस कविता

या गद्यांश विशेष के लिए सच्चा उत्साह तथा आनन्द अनुभव करे। बालकों को उसकी भावनाध्वनि तथा लय तथा शब्दविन्यास की विशेषताओं का परिचय कराया जाय। उन्हें अपना सच्चा व्यक्तिगत मत स्वतन्त्रता-पूर्वक व्यक्त करने दिया जाय। सुरुचि तथा निर्णयशक्ति धीरे-धीरे विकसित होती रहेगी। शिक्षक अपना मत मानने के लिए उन्हें बाध्य कदापि न करे। संकेत-मात्र देकर एक संभव वैकल्पिक मार्ग का आभास करा दे। उन्हें सर्वश्रेष्ठ पंक्तियों या पदों की पहचान तथा चयन करने को प्रोत्साहित किया जाय। वैशेषिक ज्ञान की अपेक्षाकृत सामान्य पृष्ठभूमि का परिचय दिया जाय।

अवसर तथा ऋतु एवं वातावरण के अनुरूप यदि रसानुभूति पाठ को कुछ आगे-पीछे लेकर पढ़ा दिया जाय तो अधिक अच्छा है। इस प्रकार के पाठ में स्वच्छन्द तथा परीक्षा-बन्धन-मुक्त खेल-भावना का समावेश हो। यदि परीक्षा-भय या कार्य-भार का आभास क्षणमात्र को भी हुआ तो रङ्ग में भङ्ग हो जाएगा और समस्त गुड़-गोबर हो जायगा। फिर शिक्षक के लाख प्रयत्न करने पर भी वातावरण पुनः नहीं निर्मित हो सकेगा। अधिक अच्छा तो यह है कि परीक्षा के दृष्टिकोण से सर्वथा मुक्त पाठ कहीं बाहर से लेकर रसानुभूति कराई जाय या उसी पाठ को एक बार परीक्षा या शब्दार्थ के दृष्टि से पढ़ा देने के उपरान्त रसास्वादन की दृष्टि से फिर कभी पढ़ाया जाय। कठिनाई यही है कि एक बार परीक्षा से संयुक्त कर देने पर उससे मुक्त कर देना कक्षा-वातावरण में सम्भव न हो सकेगा। इसका एक सुन्दर उपाय है—एक ही कक्षा के सभी वर्गों में कोई कविता पढ़ा चुकने पर सभी वर्गों का सम्मिलित समूह लेकर या अन्य कक्षाओं को भी सम्मिलित करके किसी कुशल अध्यापक द्वारा उसे रसानुभूति की दृष्टि से पढ़वा दिया जाय। परन्तु ऐसा करने पर व्यक्तिगत मत-प्रकाशन के लिए बहुत सीमित-क्षेत्र रहेगा।

सौन्दर्यानुभूति की परीक्षा—

सौन्दर्यानुभूति को कक्षा-पाठन में कार्यान्वित करने की अपेक्षा-कृत परीक्षा द्वारा उसकी जाँच करना और भी कठिन है। साहित्यिक

सुरुचि की परिपक्वता की जाँच की एक प्रचलित विधि है कई पद देकर उनको सुन्दरता की मात्रा के अनुसार क्रम-बद्ध कराना या सर्व-श्रेष्ठ पद की पहचान कराना। कण्ठाग्र की हुई सामग्री के नमूने देखकर भी जाँच की जाती है; परन्तु यह कोई निश्चित परीक्षा नहीं कही जाएगी। वैसे तो प्रचलित धारणा के अनुसार इस पक्ष की जाँच तथा परीक्षा अनावश्यक है; परन्तु यह तो वास्तविक समस्या का समाधान नहीं उससे पलायन ही कहा जायगा। शिक्षा-कार्य की सफलता तथा विद्यार्थियों की प्रगति की जाँच समय-समय पर होनी ही चाहिए। साहित्यिक रसानुभूति को भी इस नियम का अपवाद नहीं माना जा सकता।

रसास्वादन या सौन्दर्यानुभूति का सम्यक मापन तो तभी सम्भव है जब उसके अन्तर्निहित तत्त्वों तथा प्रधान लक्षणों का विश्लेषण कर लिया जाय। इस प्रकार के मापन-योग्य कुछ तत्त्वों का उल्लेख अमेरिका के प्रगतिवादी शिक्षा-संघ के पदाधिकारियों ने किया है। वे निम्नाङ्कित हैं—

(१) उस कलाकृति-विशेष से प्राप्त सन्तोष।

(२) उसके लिए अधिक अभिलाषा।

(३) उसके विषय में अधिक जिज्ञासा।

(४) सृजनात्मक तथा रचनात्मक आत्माभिव्यक्ति।

(५) उसके साथ तादात्म्य भाव।

(६) उससे उद्वेलित जीवन-समस्याओं के विषय में अपनी विचार-धारा को स्पष्ट करने की अभिलाषा।

(७) उसका मूल्याङ्कन करने की अभिलाषा।

खेद का विषय है कि इनमें से किसी भी पक्ष के लिए सन्तोषजनक परीक्षा अभी तक नहीं बनी। इन सभी पक्षों तथा अन्य आवश्यक पक्षों के लिए सुनिर्मित वस्तुपरक या बहिरङ्ग परीक्षाएँ होनी चाहिएँ तभी इस जटिल प्रक्रिया की जाँच ठीक प्रकार से हो सकती है।

तुलनात्मक अध्ययनार्थ ग्रन्थ-सूची

Tomkinson : Teaching of Appreciation
T. W. Sussans : Poetry and the Teacher
Thompson & Wyatt : The Teaching of English in India, Chapter XI
Charles Fox : Educational Psychology, Chapter XI
Jordan : Measurement in Education, Chapter VI
V. S. Mathur : Studies in the Teaching of English in Indian Schools, Chapter X
Mehta : The Teaching of English in India, Chapter XVIII
Central Pedagogical Institute Allahabad, The Pamphlet No. 8 Article No. 6

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) अँग्रेजी में साहित्यिक रसास्वादन की शिक्षा के लिए वर्त्तमान भारतीय स्कूलों में क्या क्षेत्र है ? ऐसी शिक्षा क्यों आवश्यक है ?

(२) अपने विद्यार्थियों की साहित्यिक सौन्दर्यानुभूति किस प्रकार बढ़ाओगे ? और उसकी जाँच किस प्रकार करोगे ?

अध्याय १६

गद्य तथा कविता-शिक्षण में अन्तर

पाठ्य पुस्तकों में पठन-सामग्री कुछ गद्य के रूप में होती है और कविता के रूप में। इन दोनों की शिक्षण-विधि में आकाश-पाताल का अन्तर होता है, उसे सकारण अवगत कर लेना चाहिए। यों तो विदेशी भाषा की पाठ्य पुस्तक में अधिकांश पाठ गद्यात्मक ही होंगे और जो पद्य भी होंगे वे निरे पद्य ही—कविता तो बहुत कम। तथापि इन दोनों प्रकार के पाठों का शिक्षण साधारणतया शिक्षक को कराना ही पड़ता है।

स्वरूप--

गद्य तथा कविता में स्वाभाविक अन्तर है और इस अन्तर का मूल है उनके सृजन-काल में लेखक की मनोदशा। अभिव्यक्ति के ये दोनों प्रकार मानव-अनुभव के दो भिन्न पक्षों से सम्बन्धित हैं। गद्य का सम्बन्ध है विवेक या तर्क-पक्ष से, कविता का सम्बन्ध है भावना-पक्ष या संवेग-पक्ष से। जब मानसिक पृष्ठ-भूमि में विवेक तथा तर्क की प्रधानता होती है तब भाषा अभिव्यक्ति स्वभावतः गद्यरूप में होती है। जब भावनानुभूति प्रवल होती है तब स्वाभाविक अभिव्यक्ति कवितामय होती है। गद्य का मुख्य ध्येय होता है—ज्ञानवर्धन करना, सूचित करना तथा तर्क द्वारा मत सिद्ध करना। कविता का मुख्य उद्देश्य होता है—मर्म को स्पर्श करना तथा भावनाओं का उद्रेक करना।

उद्देश्य—

इन दोनों के स्वरूप, उनकी उत्पत्ति तथा उनके ध्येय का यही अन्तर उनकी शिक्षण-विधि में भी प्रकट होता है। गद्य-पाठ का प्रधान लक्ष्य बौद्धिक होता है। विषय-वस्तु का बोध करना मुख्य कार्य है। यह

प्राकारिक रूप से ज्ञानात्मक पाठ है जो उपयोगिता-वादी उद्देश्यों से परि-प्लावित रहता है—अर्थात् विषय-वस्तु का बोध कराने के प्रयोजन से। इसके विपरीत कविता-पाठ सौन्दर्यानुभूति को प्रधान लक्ष्य मानकर अग्रसर होता है—उद्वेग की अनुभूति तथा तज्जनित आनन्द की अनु-भूति ही मुख्य कार्य है। यह प्राकारिक-रूप से रसानुभूति पाठ है जो सांस्कृतिक तथा कलात्मक उद्देश्यों से ओत-प्रोत होता है अर्थात् सुरुचि-उत्पादन तथा कल्पना-शक्ति को विकसित करने की चेष्टा करता है। गद्य-पाठन में जोर देने योग्य महत्वपूर्ण वस्तु है, पाठ का भाव-नियोजन या उसका तर्क-क्रम। इसी को समझने पर विशेष ध्यान रहता है। कविता-पाठन में जोर देने योग्य महत्वपूर्ण तत्त्व है, उसकी भावना-ध्वनि को हृदयंगम कराना या उसकी अन्तरात्मा की झलक दे देना। वस्तुतः गद्य तो पढ़ाया जा सकता है; किन्तु कविता पढ़ाई नहीं जा सकती। वह तो हृदयंगम की जा सकती है।

भूमिका—

गद्य-पाठन में भूमिका का प्रभावशाली रूप वह होता है जिसके द्वारा विद्यार्थियों के तत्सम्बन्धी पूर्वज्ञान की थाह ले ली जाय और प्रस्तुत होने वाले पाठ की ओर उनकी जिज्ञासा और ध्यान उन्मुख हो सके। कविता-पाठन की सर्वोत्तम भूमिका वह होती है जो पाठ्य-कविता के समानान्तर भावनाओं तथा उद्वेगों एवं स्थायी भावों के उद्रेक में समर्थ हो और जो विद्यार्थियों को आज की पाठ्य-कविता में अभिव्यक्त-भावों के अनुरूप अनुभूतियों को मुखरित एवं शब्द-बद्ध करने को आतुर एवं आकुल कर दे। फलतः गद्य के पाठ में कुछ सहायक सामग्री के योग से अथवा स्मृति पर ही आधारित करके कुछ सरल प्रश्नों द्वारा भूमिका सम्पन्न होती है। इसके विपरीत कविता के पाठ में समानान्तर कविता को सुना कर तथा उसका मुख्य भाव स्पष्ट करके भूमिका सम्पन्न की जाती है।

वस्तु-प्रस्थापन—

वस्तु-प्रस्थापन में गद्य-पाठ को अन्वितियों में विभाजित करके पढ़ाते हैं, जिससे उसे समझने और विश्लेषण करने में सुविधा हो। परन्तु कविता-पाठ को अन्वितियों में विभाजित करने पर कलाकृति का सौन्दर्य नष्ट होने की आशका रहती है। अतः उस समस्त पाठ को एक ही अन्विति के रूप में पढ़ाया जाता है। इससे समस्त रूप का विशिष्ट कला-सौन्दर्य खण्डित होकर नष्ट नहीं होने पाता। कला के समस्त रूप की सौन्दर्यानुभूति के लिए अनुभूति की एकात्मता की रक्षा आवश्यक होती है। फूल जैसी सुन्दर वस्तु का सौन्दर्य उसके अङ्गोपाङ्ग को खोल खोल कर विश्लेषण करने की क्रिया में ही लुप्त हो जाता है। इससे वैज्ञानिक ज्ञान में वृद्धि भले ही हो जाय; परन्तु सौन्दर्य के साक्षात्कार में तथा रसानुभूति में तो ह्रास ही होता है। ठीक यही स्थिति कविता-पाठ की भी है।

सस्वर-पठन—

जैसा पहले भी संकेत किया जा चुका है गद्य तथा कविता को पढ़ने का ढँग बहुत भिन्न होता है। यह अन्तर दोनों को सुन कर स्पष्ट रूप से अनुभव किया जा सकता है। यद्यपि उसे शब्दों में व्यक्त कर देना सरल नहीं। कविता में लय-बद्ध ध्वनियों की पुनरावृत्ति होती है, और उन ध्वनियों का क्रमविन्यास भी भावना के अनुरूप होता है। गद्य में भी प्रवाह होता है; किन्तु उसमें लयपूर्ण ध्वनियों की पुनरावृत्ति नहीं होती। किन्तु यह ध्यान रहे कि कविता-पठन का ढँग गद्यात्मक न होते हुए भी गीत-गायन नहीं होता। कविता का संगीत अत्यन्त गम्भीर तथा संयत होता है, विशेषकर कक्षा-परिस्थिति में अध्ययन की जाने वाली कविता का। तो भी प्रभावोत्पादकता के लिए कविता का पुनः पुनः आदर्श पठन करके वातावरण को काव्यमय बनाए रखने की चेष्टा कविता के पाठ में की जाती है।

व्याख्या—

शब्दों तथा अभिव्यक्तियों की अर्थ व्याख्या करने का ढँग भी इन दोनों प्रकार के पाठों में बहुत भिन्न होता है। गद्यपाठ में शब्दों का यथार्थ बहिरंग या (Objective) वस्तुपरक तात्पर्य विशद व्याख्या द्वारा स्पष्ट किया जाता है और इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए विविध युक्तियों पर बल दिया जाता है। कविता-पाठ के शब्दों या पदों की व्याख्या करने में उनके अन्तरंग या आत्मपरक (Subjective) तथा भावनात्मक महत्व को हृदयंगम कराने की चेष्टा की जाती है। इस आन्तरिक सौन्दर्य का बोध कराने के साथ ही साथ उनके विशिष्ट ध्वनि-प्रभावों तथा स्वर-विन्यास, लय आदि की सुन्दरता का भी आभास कराया जाता है। इस पाठ में अन्य सभी युक्तियों का परित्याग करके केवल समानान्तर पदों और समानान्तर पंक्तियों की यथा-अवसर आवृत्ति करते हुए काव्यमय वातावरण की सृष्टि तथा शब्द या पंक्तिगत भाव की व्यञ्जना की जाती है। साराँश यह है कि गद्य के स्पष्टीकरण में बाह्य पक्ष या शब्द की अभिधा शक्ति पर ज़ोर रहता है, जबकि कविता के स्पष्टीकरण में आन्तरिक पक्ष या शब्द की लक्षणा एवं व्यञ्जना शक्तियों पर ज़ोर दिया जाता है ।

प्रश्नोत्तर—

इन दोनों पाठों में किए गये प्रश्म भी स्वरूप तथा उद्देश्य की दृष्टि से सर्वथा भिन्न होते हैं। गद्य-पाठ में बोध-परीक्षा के लिए प्रश्न किए जाते हैं। विचार-क्रम को ठीक से ज्ञात कर लिया या नहीं—इसी बात की जाँच कर लेना मुख्य ध्येय होता है। फलतः यह प्रश्न यथार्थ तथ्यों सम्बन्धी तथा तार्किक होते हैं। कविता-पाठ में प्रश्नों का मन्तव्य होता है—भावनाभूति की गहराई की थाह लेना। छात्र किस शब्द तथा पद की कितनी मार्मिक अनुभूति कर सके हैं यह देखना तथा इस मार्मिक अनुभूति को संकेत द्वारा बढ़ाना या उत्पन्न करना भी इन प्रश्नों का ध्येय

होता है। अतएव यह प्रश्न अधिकाँशतः आलोचनात्मक, रसानुभूति-विषयक तथा मनोवैज्ञानिक होते हैं।

पुनरावृत्ति—

पुनरावृत्ति भी इन पाठों के अन्य सभी पक्षों की भाँति नितान्त भिन्न-भिन्न होती है। गद्यपाठ में अधिकाँश यह ऐसे प्रश्नों के रूप में होती है जो पाठगत तथ्यों को दुहराने में सहायक हों तथा मुख्य भावशृंखला का एक बार पुनः स्मरण करा दें। कविता-पाठ में पुनरावृत्ति अधिकाँशतः पुनः पुनः सस्वर-पठन, आदर्श-पठन तथा इसके बीच-बीच सुरुचि-मापक प्रश्नों द्वारा सम्पन्न की जाती है। इसका मुख्य ध्येय होता है कि कविता-गत भावना-चक्र का सिंहावलोकन तथा पूर्वानुभूत भावनाओं तथा स्थायी भावों की अनुभूति को तीव्रतर बना देना। और यह कार्य उन्हीं अभि-व्यक्तियों के मौलिक रूप को दोहराकर तथा उनके मुख्य-प्रभाव का आभास कराके सम्पन्न किया जाता है।

गृहकार्य—

गृहकार्य देने में गद्य-पाठ का मुख्य ध्येय रहता है, नवार्जित ज्ञान का प्रयोग कराना और इस प्रयोग द्वारा उसे पुष्ट करना। परन्तु कविता-पाठ में प्रथम तो गृहकार्य दिया ही नहीं जाता और यदि दिया भी गया तो साहित्यिक सुरुचिनिर्माण के उद्देश्य से ही दिया जाता है। फलतः गद्य-पाठ में कुछ लिखित कार्य के रूप में या नए शब्दों से सम्बन्धित कोई अन्य अभ्यास देकर दूसरे दिन उस कार्य की जाँच तथा शोधन भी करते हैं। कविता-पाठ में अधिकाँश रूप से कोई अच्छा पद कण्ठस्थ करने को दे देते हैं और लिखित कार्य तो यथाशक्ति दूर ही रखते हैं। तदुपरान्त कोई कड़ी जाँच भी नहीं करते। सुरुचि-निर्माण में अपनी रुचि के अनुकूल विकल्प को स्थान देना आवश्यक है। किसी कार्य को बाध्य करके रुचिकर नहीं बनाया जा सकता। अतः इस विषय में छात्र स्वतंत्र ही रक्खे जायँ तभी इसके सफल होने की सम्भावना है।

तुलनात्मक अध्ययनार्थ ग्रन्थ-सूची

Champion : Lectures on Teaching English in India, Lectures VIII & X

Thompson & Wyatt : The Teaching of English in India, Chapter XI

Tomkinson : The Teaching of English in India, Chapter VIII

V. S. Mathur : Stories in the Teaching of English in Indian Schools, Chapter VI

Mehta : The Teaching of English in India, Chapter V, VI, XVI & XVII

Godfrey D' Souza : The Teaching of English, Chapter IX

T. W. Sussams : Poetry and the Teacher

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) गद्य तथा कविता की शिक्षण-विधि किस प्रकार भिन्न है और क्यों ?

(२) "कविता का पाठन सम्भव नहीं, वह तो हृदयङ्गम ही की जा सकती है", इस उक्ति की व्याख्या करते हुए कविता के कक्षा-शिक्षण की सम्भावना पर प्रकाश डालिए।

पञ्चम खण्ड

लेखन तथा व्याकरण

- लेखन तथा लिखित कार्य की शिक्षा।
- लेखन-शिक्षण की विधियाँ।
- प्रमुख लिखित अभ्यास।
- अनुवाद-शिक्षण।
- निबन्ध-लेखन।
- श्रुतिलेख।
- लेखन-कार्य की अशुद्धियाँ।
- अक्षरान्वय-शिक्षण।
- व्याकरण-शिक्षण।
- व्याकरण-शिक्षण की विधियाँ।

अध्याय १७

लेखन तथा लिखित कार्य की शिक्षा

का महत्व—

मना बेकन ने कहा था कि लेखन मनुष्य को निश्चितमना बना विचार को यथेष्ट रूप से लिखित शब्दों में प्रकट करने के लिए स्पष्ट चिन्तन तथा सफल प्रकाशन शैली दोनों अपेक्षित हैं। लिखित रूप में शब्दबद्ध करने का प्रयास नहीं होता तब तक श्चयात्मक तथा चञ्चल बना रहता है। शब्द-बद्ध होने पर रता आ जाती है। भाव को यथातथ्य रूप प्रदान करने में युक्त शब्द की खोज तथा उसी का प्रयोग करना पड़ता है, तभी ल होता है और उससे सन्तुष्टि होती है। इसीलिए लेखन- "एकमात्र शब्द" की कला कहा गया है। इसके विपरीत ता "प्रथम-शब्द" की कला मानी गई है। भाषण में शीघ्रता ञ्छनीय है; परन्तु लेखन में उपयुक्तता। लेखन-अभ्यास के बिना षा पर पूर्ण अधिकार ही प्राप्त किया जा सकता है और न याङ्कन तथा रसास्वादन की योग्यता ही उत्पन्न हो सकती है। न का माध्यम होने के नाते लेखन भी व्यक्तित्व के विकास में है। साथ ही साथ इस रचनात्मता का आनन्द भी प्राप्त।

लेखन-क्रिया के भाषा ज्ञानोपार्जन की माप एवं मूल्याङ्कन यदि नहीं तो दुस्तर अवश्य हो जायेंगे। क्या व्याकरण, क्या , क्या शब्दाक्षरन्यास तथा क्या निबन्ध किसी भी पक्ष में यता की जाँच करने के लिए हमें लेखन का ही सहारा लेना । प्रचलित परीक्षा-प्रणाली तथा आधुनिकतम बहिरंग ज्ञानो-

पार्जन-परीक्षाएँ सभी लेखन-योग्यता पर आधारित हैं। इस रूप में किया गया कार्य अत्यन्त ठोस एवं प्रत्यक्ष होता है। वह कितने ही समय बाद देखा और जाँचा जा सकता है। भाषा का सबसे अधिक क्रियात्मक पक्ष यही है। इसमें विद्यार्थी को अपनी इच्छानुसार समय लगाने का अवसर रहता है। अतएव इसमें अधिकाधिक कुशलता लाने की चेष्टा करनी चाहिए। सभी विद्यार्थी अपनी योग्यता तथा अपनी गति के अनुकूल अग्रसर हो सकते हैं। किसी को मञ्चभय की आशङ्का नहीं रहती। अपने आप दोहरा कर अपनी गल्तियाँ ठीक कर लेने का पर्याप्त अवसर भी रहता है। साथ ह ीसाथ सभी विद्यार्थी एक साथ कार्य में लगे रह सकते हैं। किसी का समय व्यर्थ नहीं जाएगा ; व्यावहारिक जीवन में भी लेखन अधिक उपयोग में आता है। कभी पत्र-व्यवहार में, कभी आवेदन-पत्रों में, कभी पुस्तकों से तथ्य नोट करने में ही लेखन-कार्य उपयोगी सिद्ध होता है।

अँग्रेज़ी में लेखन-कार्य कराने का यह ध्येय होता है कि बालक में मुद्रण लिपि को हस्तलिपि में शुद्ध रूप में लिखना आ जाय। इसी प्रकार सुनी हुई अँग्रेजी भाषा यदि उसकी समझ में आ जाती हो तो उसे भी लिपिबद्ध करने की क्षमता उत्पन्न हो जाय। ज्ञान तथा सूचना को लिखित रूप में व्यक्त करके अन्य लोगों को सूचित करने की योग्यता भी जनित हो जाय। अपने अन्तरतम की अनुभूतियों, भावों तथा भावनाओं को इस माध्यम में मुखरित करने की कुशलता उत्पन्न हो और यह सब सुचारु रूप से गतिपूर्वक सम्पन्न हो—इतना अभ्यास हो जाय। मनोगत मन्तव्य एवं तात्पर्य को पूर्णरूपेण तथा शुद्धरूपेण दूसरों को हृदयंगम करा देना लेखन का ध्येय है; परन्तु उसकी पूर्त्ति दीर्घकालीन निरन्तर अभ्यास से ही सम्भव है। अतः कक्षा तथा कक्षा से बाहर लेखन में पर्याप्त अभ्यास देना चाहिए।

लिखित कार्य की कठिनाइयाँ—

लिखित-कार्य में अधिक प्रबल प्रेरणा की आवश्यकता पड़ती है और विशेषकर अँग्रेज़ी जैसी विदेशी भाषा सीखने के पूर्व बालक

मातृभाषा में अपनी अभिव्यक्ति विषयक आवश्यकता की पूर्त्ति कर लेता है, तब तो प्रेरणा प्रदान करने का प्रश्न और भी जटिल हो जाता है। सन्तोष यही है कि मानव व्यक्तित्व स्वयं अभिव्यक्ति से अनेक मार्ग खोजता रहता है। इसी प्रवृत्ति को हम विद्यार्थियों में सहज ही जाग्रत करके अँग्रेज़ी-लेखन में उनकी रुचि उत्पन्न कर सकते हैं। परन्तु इसमें सफलता प्राप्त करने के लिए बड़ी चतुरता एवं मनोवैज्ञानिकता से काम लेना होगा। लिखित कार्य को निबन्ध-लेखन के समकक्ष समझने की भी भूल अधिकांश लोग करते हैं। इस भ्रममूलक धारणा को दूर करना भी कठिन कार्य है। वस्तुतः निबन्ध-लेखन तो लेखन-कला का एक उच्चतम प्रकार है, न कि उसका सर्वेसर्वा।

सबसे बड़ी कठिनाई होती है लिखित-कार्य के संनिरीक्षण, संशोधन तथा उसमें निरन्तर पथ-प्रदार्शन की, जिसके लिए अध्यापक के पास समय ही नहीं रहता। एक लिखित अभ्यास कक्षा में सम्पन्न कराने पर लगभग तीस उत्तर-पुस्तकों को जाँचने का कार्यभार शिक्षक पर पड़ता है, जिसे जाँचने के लिए समय तो चाहिए ही और परिश्रम भी कम नहीं पड़ता। व्यक्तिगत रूप से हर एक बालक को संशोधन समझाना और उससे शुद्ध-रूप लिखवाकर देखना और भी कष्टसाध्य क्रिया है। समय, श्रम तथा धैर्य की जितनी मात्रा भाषा के इस पक्ष में आवश्यक है उतनी अन्य पक्षों में नहीं। यदि कार्य को बिना जाँचे ही छोड़ दिया जाय तो और भी अहितकर है; क्योंकि उससे शुद्ध रूपों एवं प्रयोगों का ज्ञान एवं अभ्यास तो हुआ ही नहीं। तिस पर जब बालक जानते हैं कि कार्य देखा तो जाएगा ही नहीं तब उनमें लापरवाही, टालूपन आदि बुरी आदतें पड़ जाती हैं, जो समस्त अच्छे शिक्षा-प्रभाव को नष्ट-भ्रष्ट कर देती हैं।

लिखित अँग्रेज़ी भारतीय भाषाओं के लिखित रूप से एक बात में तो कई गुनी कठिन है। वह है उसकी चार तरह की लिपि। मुद्रण-लिपि तथा हस्त-लिपि और उसमें भी बड़े अक्षर (Capitals) तथा छोटे अक्षर (Small letters)। इस प्रकार एक साथ चार समानान्तर प्रतीक शृंखलाओं से परिचय प्राप्त करना पड़ता है, जो वस्तुतः कठिन

सिद्ध होता है। इस प्रकार इन सब कठिनाइयों से युक्त होने के कारण अँग्रेज़ी में लिखित-कार्य बहुधा अनमने ढँग से सम्पन्न किया जाता है। शिक्षक तथा विद्यार्थी—दोनों इसके प्रति उदासीन रहते हैं, जिससे और भी अनर्थ होता है। इस दूषित परिस्थिति का सुधार करने में शिक्षक का सचेष्ट रहना अत्यन्त आवश्यक है। वह तरह-तरह की युक्तियों से लिखित कार्य को विद्यार्थियों के लिए रुचिकर बनाए और स्वयं उसमें रुचि ले।

लेखन का यांत्रिक पक्ष—सुलेख—

लेखन-कला का अभ्यास होने के पूर्व पहले लेखन के याँत्रिक पक्ष पर अधिकार प्राप्त कर लेना आवश्यक है। सुलेख में सुन्दर हस्तलिपि-लेखन की ही क्षमता उत्पन्न करने की आवश्यकता है। मुद्रण-लिपि का सुलेख सिखाना अनावश्यक प्रयास है। मुद्रण-यन्त्रों तथा टाइप-यन्त्रों के प्रचार के कारण सुलेख-कला का भी अब उतना महत्व नहीं रहा, जितना कभी पहले था। सुन्दर हस्तलिपि का अभाव इन यन्त्रों से सहज ही पूरा कर लेते हैं। परन्तु फिर भी सुन्दर हस्तलिपि तो चित्ताकर्षक होती ही है, पाठक को बरबस अपनी ओर आकृष्ट करती है। सुलेख सिखाने में जिन बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए वे निम्नाङ्कित हैं—

सर्वप्रथम यह ध्यान रक्खा जाय कि सुलेख सीखने के लिए विशेष प्रकार की लेखन-सामग्री प्रयोग करने पर ही सर्वोत्तम परिणाम प्राप्त होंगे यथा विशेष प्रकार की चार रूल की कापियाँ, 'जी' निब, 'क्लि' कलम, मोटा अच्छा कागज़, ठीक स्याही आदि आदि। बैठने के ढँग तथा मेज-कुर्सी की बनावट तथा ऊँचाई आदि का भी बड़ा असर पड़ता है तथा प्रकाश एवं स्वच्छ वायु का भी। सभी बाह्य परिस्थितियों का ध्यान रखते हुए सुलेख में अनुकरण के आधार पर अग्रसर होना चाहिए। इसके लिए सर्वप्रथम शिक्षक लेखन का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करे। उसी नमूने का यथाशक्ति वैसा ही अनुकरण बालकों से कराए। जिस शिक्षक की हस्तलिपि अच्छी न हो वह दूसरों से सहायता ले या चार्ट

आदि का प्रयोग करे। नमूने व छपी हुई अभ्यास पुस्तिकाओं का भी प्रयोग किया जा सकता है।

हस्तलिपि के सर्वप्रथम अभ्यासों में शिक्षक कक्षा के सम्मुख लेखन का प्रत्यक्ष प्रदर्शन करते हुए विभिन्न अक्षरों के आकार, साइज़, बनावट, अङ्गों के अनुपात, सापेक्ष मोटाई, ऊँचाई, घुमाव तथा कोण का समुचित आकार प्रकार, कलम चलाने का सही दिशा-क्रम, उसे पकड़ने का सही ढँग आदि का विस्तृत विश्लेषण करते हुए विस्तृत विश्लेषण करे। आवश्यकतानुसार व्यक्तिगत सहायता करे और पुनः पुनः कार्य-प्रदर्शन करके तथा उसका ढँग समझा कर बालकों के अनुकरण को सफल बनाने का प्रयत्न करे। बालकों ने मातृभाषा में लेखन-कला सीख ली है—इससे यह कार्य अत्यन्त सुगम हो जायगा। केवल विश्लेषणात्मक व्याख्या सुबोध हो, प्रदर्शन का स्तर अनुकरणीय के साथ-साथ अनुकरण-सुलभ भी हो और अभ्यास का समुचित परिस्थिति एवं पर्याप्त अवसर का प्रबन्ध कर दिया जाय। यथा-स्थान अँग्रेज़ी लिपि की बनावट का मातृभाषा से अन्तर भी स्पष्ट करते जाना चाहिए।

मानव आवश्यकताओं के तीन स्तरों—(आवश्यकता, आराम तथा विलास) की ही भाँति लेखन के यांत्रिक पक्ष के तीन गुण बताए गये हैं। प्रथम गुण है, उसकी पठनीयता। जो कुछ लिखा जाय वह ऐसा लिखा हो कि कोई अन्य व्यक्ति उसे सुविधापूर्वक ठीक-ठीक पढ़ ले। लेखन की पठनीयता अनिवार्य है। इसके बिना वह व्यर्थ ही है। दूसरा गुण है, उसकी गतिपूर्णता। यह गुण यदि लेखन में उत्पन्न नहीं हो सका तो उसकी उपयोगिता अत्यन्त कम हो जाती है। हर समय इतना अव-काश नहीं होता कि बहुत देर तक बैठे-बैठे प्रतीक्षा की जा सके। यहाँ तो तनिक देर लगी कि अवसर हाथ से गया। परीक्षाओं में नित्य यही शिकायत सुनने में आती है—उच्च कक्षाओं की व्याख्यान-विधि की पढ़ाई में भी यह—कि बहुत सी बातें लिखने से छूट गईं। उससे विद्यार्थी-जीवन में पर्याप्त हानि होती है, जिसका असर शेष जीवन पर भी पड़ता ही है। शीघ्र-लेखन बहुत उपयोगी कला है; किन्तु पठनीयता की बलि न होने पाये

तभी। तीसरा गुण है, लेखन की सुन्दरता। यह गुण वांछनीय है; परन्तु गतिपूर्णता की बलि करने पर इसकी उपयोगिता बहुत घट जाती है। यदि गतिपूर्णता के साथ ही साथ यह गुण भी हो तब तो सोने में सुहागा है अन्यथा कुछ विशेष अवसरों पर ही इसके प्रगट होने एवं महत्वपूर्ण सिद्ध होने की सम्भावना रहती है।

इन तीनों गुणों को उत्पन्न करने के लिए सुलेख में पर्याप्त अभ्यास देना आवश्यक है। सर्वप्रथम सुन्दरतम लेखन का ही अभ्यास देना चाहिए। बालकों के समक्ष समुचित कार्य-प्रदर्शन, विवेचन कर लेने आदि के उपरान्त संनिरीक्षण करते समय शिक्षक इस बात का विशेष ध्यान रक्खे कि बालकों की लिखावट के अक्षरों में सुडौलता तथा एकरूपता हो। उनके विन्यास में स्थान-विभाजन यथेष्ट हो तथा संयोजन में स्पष्टता हो। अँग्रेज़ी अक्षर सीधे (Upright) बनाए जायँ, टेढ़े नहीं। अलग-अलग अक्षर बनाने की प्रणाली अच्छी नहीं होती, वे एक-दूसरे से संयुक्त करते हुए बनाए जायँ। अनावश्यक या अस्वाभाविक टाँग-पूँछ (Loops and flourishes) निकालना भी ठीक नहीं माना जाता। अलङ्कारिक (Ornate) बनावट की अपेक्षाकृत सादी बनावट अधिक प्रभावोत्पादक होती है। इस सब के लिए सर्वाङ्ग-सुन्दर नमूना, उत्साहपूर्ण अनुकरण, दीर्घकालीन अभ्यास तथा सहानुभूतिपूर्ण संशोधन अतीव आवश्यक हैं। इनमें से किसी एक की भी कमी होने पर लक्षित उद्देश्य की प्राप्ति नहीं हो सकेगी।

लेखन-शिक्षण की विधियाँ

लेखन सिखाने की किण्डर-गार्टेन तथा मान्तेसरी-विधि—

लेखन सिखाने की एक नवीन विधि है, किण्डर-गार्टेन विधि जिसमें एक लकड़ी के बक्स में विभिन्न आकार के लकड़ी के या प्लास्टिक के टुकड़े प्रयोग किए जाते हैं। इन टुकड़ों की सहायता से २६ भाषाओं के अक्षर तथा सभी अङ्क बन जाते हैं। इसके साथ अनेकों वस्तुओं, पदार्थों, जीव-जन्तुओं आदि की तस्वीरें भी इन्हीं टुकड़ों से बन जाती हैं। अँग्रेज़ी

के २६ अक्षरों की चारों प्रकार की आकृतियाँ इन टुकड़ों की सहायता से सहज ही बनाई जा सकती हैं और अक्षरों का बनाना सीखने के बाद उन्हें शब्दों में संगठित करना सीखा जा सकता है। इन टुकड़ों पर अभ्यास कर लेने पर उनकी बनी हुई पूर्ण आकृति पर उँगली तथा हाथ फिरा कर अभ्यास करके चाक या इसी प्रकार के अन्य पदार्थ द्वारा चौकी या पट्टी या कागज पर ही लिखने का अभ्यास किया जा सकता है। मान्तेसरी-विधि में तो काठ की सतह पर खोदी हुई आकृतियों में हाथ फिराकर तथा उसके अनुरूप लकड़ी के गुटके भर कर प्रथम परिचय प्राप्त कराया जाता है और बालू की तख्ती पर उँगली द्वारा उनकी पुनरावृत्ति द्वारा तदुपरान्त अभ्यास कराया जाता है। इतना अभ्यास कर लेने पर चाक, ब्लैक-बोर्ड तथा कागज़-पेन्सिल या कागज़-कलम-कार्य करना सुगम हो जाता है।

किण्डर-गार्टेन विधि से लेखन सिखाने के लाभ—

इस तरह से लेखन सीखना बालकों को बड़ा रुचिकर प्रतीत होता है। रुचि होने के कारण वे बहुत ध्यान देकर सीखते हैं, जिससे कार्य में प्रगति अच्छी होती है और खूब सफलता मिलती है। इससे सीखने में बालकों का और भी उत्साह बढ़ता है। खेल ही खेल में बच्चे लिखना तथा पढना दोनों सीख जाते हैं और प्रारम्भिक शिक्षा में खेल-विधि का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। समुचित गोलाइयाँ तथा कोण बने-बनाए उपलब्ध रहने के कारण विफलता के कोई अवसर ही नहीं रहते। कई टुकड़ों में से सही चुनने की क्रिया में बुद्धि का प्रयोग होता है। फिर यदि गलत चुन दिया तो बालक स्वय अपनी गल्ती जाँच सकता है और उसे ठीक भी कर सकता है। इस प्रकार यह सहायक-यन्त्र-सामग्री आत्मसंशोधिनी (Self-correcting) है। अनुकरण तथा रचनात्मकता की प्रवृत्ति भी तृप्त होती रहती है। दिए हुए नमूने की आकृति को शीघ्रतम अनुकरण कर देने की क्रिया में प्रतियोगिता तथा प्रतिस्पर्धा की भावना भी उत्पन्न की जा सकती है। स्पर्श, गति, आकार, साइज, बनावट, तथा रंग-सम्बन्धी अनुभूतियों के सम्बन्ध से सीखने की क्रिया में सुचारुता तथा इस

प्रकार सीखी गई विषय-वस्तु में स्थिरता तथा समृद्धि दोनों बातें रहती हैं।

किन्डरगार्टेन-विधि के दोष—

हमारे कार्य के लिए यह विधि बहुत बचकानी है। शैशव तथा बालकपन के मध्य की एक अवस्था होती है जो मान्तेसरी तथा किण्डरगार्टेन अवस्था कहलाती है—यही कोई तीन वर्ष से ६-७ वर्ष तक की अवस्था जिसे शिक्षा की दृष्टि से पूर्व प्रारम्भिक अवस्था भी कहते हैं। इसी अवस्था विशेष के लिए यह विधियाँ अधिक उपयुक्त हैं, रुचि के दृष्टिकोण से भी तथा मानसिक एवं शारीरिक विकास के दृष्टकोण से भी। अँग्रेज़ी आरम्भ करने वाले भारतीय विद्यार्थी उस अवस्था से बहुत आगे बढ़ आए होंगे। अतएव बड़ी उम्र के बालकों को इस क्रिया में कुछ भी रचनात्मक या सृजनात्मक आनन्द न प्राप्त हो सकेगा। आखिर कलम ठीक से पकड़ना, चलाना तथा तरह तरह के कोण, गोलाईयाँ आदि बनाना बालक मातृभाषा-कक्षा में एक बार सीख ही चुके हैं। उन्हें फिर से इस प्रकार की सामग्री देना व्यर्थ का खिलवाड़ होगा। इससे समय की हानि होती है तथा शिक्षा की स्वाभाविक गम्भीरता की भी। तीन प्रकारों में से दूसरा युद्ध मातृभाषा कक्षा में समाप्त हो चुका है। उस घटना की पुनरावृत्ति करके कोई लाभ न होगा।

फिर हमारा अन्तिम लक्ष्य तो होगा कागज पर कलम से लिखने में अभ्यास कर देना। इसके लिए हम शीघ्रतिशीघ्र इसी सामग्री का प्रयोग करें तो ठीक है। प्रत्यक्ष दीक्षा अधिक सुविधाजनक तथा प्रभावशाली होती है न कि अप्रत्यक्ष। यह भी देखा गया है कि इस प्रकार की शिक्षण-सामग्री के प्रयोग करने पर स्वभावतः छात्रगण खिलवाड़ ज्यादा करना चाहते हैं, परिश्रम कम। वे अक्षर तथा अंक बनाना सीखने की अपेक्षाकृत चिड़ियों, जीवजन्तुओं तथा वस्तुपदार्थों की आकृतियाँ बनाना ज़्यादा पसन्द करते हैं और इसी का अभ्यास भी करते हैं। यह शिक्षा-क्रिया के छिछली होने का भ्रम उत्पन्न करता है और बड़ा घातक सिद्ध होता है।

साँचे भरने की विधि (Tracing Method)—

इस विधि से लिखना सीखने में सर्वप्रथम साँचे बनाकर बालक को दे देते हैं। बालक उन्हीं साँचों को भरता है। अर्थात् पट्टी पर या श्यामपट पर या कापी पर अक्षरों की बहुत हल्की-सी रूप-रेखा बना दी जाती है। उसी हल्की-सी रेखा को स्याही या रंगीन चाक या कलम आदि से स्पष्ट कर देने का कार्य बालक से लिया जाता है। बालक उसी रूपरेखा को स्पष्ट करने की क्रिया में अक्षर-लेखन के सभी गतिप्रयासों का अभ्यास पा जाता है। इस प्रकार खूब सीख लेने पर स्वतन्त्र रूप से भी लेखन में समर्थ हो जाता है। छपी हुई लेखन पुस्तिकाएँ भी इस कार्य के लिए आती हैं, जिनमें इस प्रकार की (..........) विन्दु रेखाओं द्वारा अक्षर लिखे रहते हैं और उन्हीं को बालक अपनी कलम-स्याही द्वारा स्पष्ट हस्तलेख में परिवर्तित कर देता है। लेखन-शिक्षण की परम्परागत विधि यही है।

साँचे भरने की विधि के गुण—

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि यह विधि पूर्णतया अनुकरण पर ही आधारित है। अतः बालस्वभाव के सर्वथा अनुकूल ही है। इस विधि से कार्य करने पर अशुद्धियों का कोई अवसर ही शेष नहीं रहता। न विफलता होगी और न निराशा ही। निरन्तर सही गतियों का ही अभ्यास करते-करते सही गतियाँ ही आत्मचालित रूप से बिना साँचों का सहारा लिये घटित होने लगती हैं। सुन्दर अक्षर-निर्माण की कला का भी अभ्यास होता रहता है। बिना मौखिक या शास्त्रीय विवेचन के ही बालकों को आरम्भ से ही विभिन्न अक्षरों के सुडौल आकारों, साइज़ तथा अनुपातों का व्यवहारिक एवं प्रयोगात्मक ज्ञान अनायास उपलब्ध होता है।

साँचे भरने की विधि के दोष—

इस प्रकार के पूर्णतया अनुकरणात्मक कार्य से रचनात्मकता की प्रवृत्ति को सन्तोष नहीं हो पाता जो लेखन की कला का मुख्य ध्येय है।

सृजनात्मक कार्य के आनन्द का तो इसमें नितान्त अभाव है। केवल अनुकरण करने के भाव के साथ-साथ साँचे भरने की स्थिति में, कार्य पर अधिकार कर लेने या वास्तविक उपार्जन कर लेने का भाव भी नहीं उत्पन्न होने पाता। इससे आत्मविश्वास तथा आत्मनिर्भता की हानि होती है तथा उससे उत्पन्न होने वाले उत्साह की भी। इस विधि में प्रतिभा-सम्पन्न बालकों को अपनी योग्यता प्रदर्शित करने का क्षेत्र नहीं है। इससे सभी में मध्यम श्रेणी के उपार्जन का भाव तथा तदर्थ आवश्यक थोड़ा ही परिश्रम करने की मनोवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। शीघ्र ही ऐसा प्रतीत होने लगता है जैसे अब कार्य पूर्ण हो चुका। अब अधिक कुछ करने को शेप नहीं। यह भाव सीखने की प्रगति में बाधक सिद्ध होता है। साँचा भरने में हाथ सही, स्थान से आरम्भ करके ठीक ही दशा में चलाया गया है या नहीं, कुछ ज्ञात नहीं हो पाता।

इस विधि में बालकों को जो वस्तु अपने कठिन परिश्रम से उपार्जित करना चाहिए थी, वही पकी-पकाई दे देने की प्रवृत्ति है। शिक्षण की कुशलता इस बात में नहीं है कि बालकों का सब कार्य-भार हलका कर दिया जाय। वास्तविक कुशलता तो इसमें है कि बालकों को कठिन परिश्रम के लिए प्रेरित एवं प्रोत्साहित किया जाय ताकि वे खुशी से सीखने की क्रिया में परिश्रमपूर्वक अनुरक्त रहें और यथाशक्ति प्रत्यक्ष करके ही सफलता प्राप्त करें। इस विधि में इस आधारभूत सिद्धान्त का उल्लंघन है। जहाँ मातृभाषा की कक्षा में पहले ही कलम चलाना भलीभाँति सीखा जा चुका है, वहाँ तो यह विधि और भी व्यर्थ हो जाती है। यदि हठधर्मीवश इसका अभ्यास किया भी गया तो यह अत्यन्त यान्त्रिक, नीरस, तथा थकान उत्पन्न करने वाली सिद्ध होगी।

मुक्त-हस्त अनुकरण-विधि (Freehand Imitation)—

इस विधि के अनुसार लिखना सीखने में अनुकरणीय नमूना अलग श्यामपट या पट्टी अथवा कापी की शीर्ष पंक्ति में प्रस्तुत करके बालकों से अपने आप उसी की निकटतम आवृत्ति करने का आदेश दिया जाता

है। बालक यथाशक्ति प्रयत्न तथा सावधानीपूर्वक बिलकुल वैसा ही आकार तथा अनुपात पुनरुत्पादित करने में तत्पर रहकर कार्य सम्पन्न करते हैं। त्रुटियाँ होना स्वाभाविक ही है। उनका संशोधन शिक्षक कर देता है और बालक पुनः अभ्यासरत हो जाते हैं। अनुकरण में कोई यान्त्रिक सहायता नहीं मिल पाती। स्वतन्त्र रूप से देख कर ही अक्षरों तथा शब्दों का वही रूप-आकार बनाना पड़ता है। इसीलिए इसे मुक्त-हस्त अनुकरण विधि कहते हैं।

मुक्तहस्त अनुकरण-विधि के गुण--

उपर्लिखित विवेचन के अनुसार स्पष्ट है कि इस विधि में अनुकरण तथा रचनात्मकता का सुन्दर सम्मिश्रण है। दोनों ही आधारभूत बाल प्रवृत्तियों का इसमें यथेष्ट समावेश है। इसके द्वारा प्रतिभा-सम्पन्न विद्यार्थियों को अपनी योग्यता प्रदर्शित करने का पर्याप्त अवसर प्राप्त होता है। आत्मविश्वास तथा आत्मनिर्भरता बालकों में उत्पन्न होती है और उनमें निजी चेष्टा द्वारा सीखने की शक्ति भी आ जाती है। इस विधि के प्रयोग से बालक परिश्रमशील बनते हैं और कार्य कर लेने पर उनमें उपार्जन तथा अधिकार कर लेने का भाव उदय होता है। इससे आगे बढ़ने के लिये उन्हें साहस तथा प्रोत्साहन प्राप्त होता है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि जिस प्रकार की क्रिया लेखन में अन्ततोगत्वा सम्पन्न करनी होती है, ठीक उसी का अभ्यास बिल्कुल आरम्भ से कराया जाता है। इस प्रकार की प्रत्यक्ष दीक्षा ही सर्वोत्तम मानी जाती है।

मुक्तहस्त अनुकरण-विधि के दोष—

इस विधि द्वारा लिखना सिखाने में बालक के स्वतन्त्र प्रयास करने पर अशुद्धियाँ अत्यधिक मात्रा में होती हैं। सिवाय मौखिक-व्याख्या के या प्रारम्भिक-कार्य प्रदर्शन के बालकों को लिखने की वास्तविक क्रिया करते समय कोई स्थूल सहायता या पथनिर्देश नहीं हो पाता। इससे वे निस्सहाय तथा निरुपाय होने की घबराहटवश और भी अधिक

अशुद्धियाँ कर बैठते हैं। इन बहुसंख्यक अशुद्धियों के कारण वे स्वयं बहुत हतोत्साह होते हैं और उनकी प्रगति मन्द हो जाती है। इधर शिक्षक के लिए संशोधन कार्य-भार में अत्यधिक वृद्धि हो जाती है। कम से कम कमजोर विद्यार्थी तो और भी अधिक हीनता का अनुभव करने लगते हैं; क्योंकि उनकी कमज़ोरी अधिकाधिक प्रकट होने लगती है।

लेखन-विधियों-विषयक निष्कर्ष—

अब प्रश्न उठता है कि कौन-सी विधि सर्वोपयुक्त है जिसे अँग्रेज़ी लिखना सिखाने के लिए अपनाया जाय। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है किण्डर-गार्टेन विधि या माण्टेसरी विधि तो इस अवस्था के लिए सर्वथा अनुपयुक्त सिद्ध होगी। उससे प्राप्त होने वाला लाभ इसके बहुत पूर्व मातृभाषा लिखना सीखते समय उठाया जा चुका है। अब ऐसा कुछ उसमें अवशेष नहीं, जो नए सिरे से ग्रहण किया जाय। साँचा भरने की विधि कमज़ोर विद्यार्थियों के लिए बड़ी सहायक तथा उपयुक्त है। उनको पहले कुछ दिन इसी विधि द्वारा अभ्यास देकर तब मुक्तहस्त अनुकरण-विधि की ओर अग्रसर किया जाय। शेष सभी के लिए मुक्तहस्त अनुकरण-विधि ही सर्वोत्तम है और उसी का प्रयोग बिलकुल आरम्भ से ही किया जाय। जैसा कि ऊपर भी कहा जा चुका है, मातृभाषा लिखने में पर्याप्त आधारभूत कुशलता संग्रहीत हो चुकी है और उस कुशलता का सहारा लेकर बिना उन प्रारम्भिक अनुभूतियों एवं प्रयासों की अनावश्यक पुनरावृत्ति किए आगे बढ़ने का प्रयास इसी विधि द्वारा होता है। अतः यही प्रयुक्त की जाय।

लिखना सिखाने का उपयुक्त अवसर तथा कार्यक्रम—

विधि निश्चय कर लेने पर दूसरा प्रश्न यह उठता है कि लेखन कब से आरम्भ कराया जाय? और अँग्रेज़ी भाषा में एक प्रश्न यह भी महत्वपूर्ण है कि चारों लिपियों को किस क्रम से सिखाया जाय? माण्टे-सोरी का अनुभव था कि पढ़ना सीखने के पूर्व बालक लिखना सीखने के लिए अधिक उत्सुक रहते हैं। अतः उन्होंने परामर्श दिया कि यही पहले

सिखाया जाय। इस सुझाव पर बहुत वाद-विवाद हुआ और होता भी रहता है। परन्तु अँग्रेज़ी को विदेशी भाषा के रूप में पढ़ाने पर लेखन की आधारभूत यान्त्रिक क्रिया में तो विद्यार्थी पूर्ण अभ्यस्त रहते हैं; केवल नए प्रतीकों को लिखना जानने की समस्या अवशेष रह जाती है। अतएव यदि चाहें तो पहले ही दिन से लिखना आरम्भ कराया जा सकता है। सफलता अवश्य मिलेगी। परन्तु सर्वोत्तम अवसर वह होगा जब वे कुछ शब्द तथा वाक्य बोलना तथा शब्दों, अक्षरों तथा वाक्यों का पढ़ना सीख गए हों। इन प्रतीकों पर एक प्रकार का अधिकार जमा लेने पर दूसरे प्रकार का अधिकार जमाने का प्रयत्न करना युक्ति-संगत भी है तथा व्यवहारसुगम भी।

इस बात पर भी मतभेद है कि चारों प्रकार की लिपि का लिखना सिखाया जाय या केवल दो ही प्रकार की लिपि का। पढ़ना तो चारों लिपियों का सीखना ही पड़ेगा; क्योंकि मुद्रित तथा हस्तलिखित दोनों प्रकार की सामग्री को पढ़ने के पर्याप्त अवसर साधारण जीवन में नित्य ही आते रहते हैं। परन्तु मुद्रण-लिपि के बड़े (Capital) तथा छोटे (Small) अक्षरों को लिखना सीखने की विशेष आवश्यकता कम से कम व्यावहारिक दृष्टि से तो नहीं प्रतीत होती। तो व्यर्थ ही उसे लिखना सीखने का कष्ट क्यों उठाया जाय? जब समस्त व्यावहारिक जीवन में हस्तलिखित लिपि का ही प्रयोग लेखन-कार्य में होता है तब मुद्रण-लिपि लिखना सीखने का प्रयास सफल होकर भी अनुपयोग द्वारा व्यर्थ ही चला जायगा। तब यह निरर्थक परिश्रम क्यों?

इस प्रकार का कोई सन्तोषजनक उत्तर हम नहीं दे सकते। केवल इतना ज़रूर है कि जीवन में कुछ विशेष अवसरों पर मुद्रण लिपि के अक्षर तथा शब्द भी लिखने पड़ जाते हैं, चाहे भले ही कुछ सुविधाजनक प्रतीकों के ही रूप में या कुछ सूचना नोटिस, नारे, शीर्षक, साइनबोर्ड आदि के ही रूप में। इन अवसरों पर हाथ सिकोड़ कर बैठ रहना शोभाजनक नहीं होगा, इससे लोकनिन्दा तथा उपहास होता है। अतः इसे सीख लेने में ही कल्याण है। दूसरी बात यह है कि मुद्रण लिपि

सीधी-सादी होने के कारण अनुकरण में सुगम है। अतः कठिन कार्य सीखने के पूर्व सुगम कार्य का अभ्यास कर लेने से कुछ तो पथशोधन होता ही है। इन चारों लिपियों का लेखन-क्लिष्टता-क्रम निम्नाङ्कित है—

बड़े प्रकार की मुद्रण लिपि (Capital print) सबसे सुगम
छोटे प्रकार की मुद्रण लिपि (Small print) उससे कठिन
छोटे प्रकार की हस्त लिपि (Small cursive) और भी कठिन
बड़े प्रकार की हस्त लिपि (Capital cursive) सबसे कठिन

एक-एक करके इसी क्रम से इन्हें लिखना सीखना चाहिए और एक को पूरा करके दूसरी आरम्भ करते समय उनका अन्तर्सम्बन्ध स्पष्ट कर देना चाहिए।

———

तुलनात्मक अध्ययनार्थ ग्रन्थ-सूची

Freeman : The Teaching of Handwriting.

Morris : The Teaching of English as a Sceond Language.
Chapter X

French : The Teaching of English Abroad, Book I, Chapter VIII

Thomson & Wyatt : The Teaching of English in India, Chapter IV

Educational Pamphlet No. 40 of the English Board of Education, entitled 'Print-Script'.

Bhatia & Bhatia : Principles and Practice of Teaching, Chapter XVII

———

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) भारतीय बालकों को अँग्रेज़ी-लेखन सीखने की क्या आवश्यकता है ? अँग्रेज़ी लिपि की लेखन संबन्धी कठिनाइयों का विवेचन करते हुए बताओ कि किन तरीकों से तुम अपने विद्यार्थियों को सुलेख सिखाओगे ?

(२) लेखन-शिक्षण की विभिन्न विधियों का संक्षिप्त वर्णन करो। यह निर्णय करो कि कौन-सी विधि सर्वोत्तम है और क्यों ?

———

अध्याय १८

प्रमुख लिखित अभ्यास

विविध प्रकार के लिखित अभ्यास—

अब तक हमने लेखन-क्रिया के यांत्रिक पक्ष पर ही अधिक ध्यान केन्द्रित रक्खा है। हमें यह भी ज्ञातव्य है कि क्या-क्या लिखित अभ्यास कक्षा में सम्पन्न किए जा सकते हैं। बहुधा निबन्ध लेखन को ही समस्त लेखन-कार्य का पर्याय या एकमात्र स्वरूप समझने की भूल की जाती है। शायद इसी भ्रम वश हिन्दी भाषा में निबन्ध को लेख भी कहते हैं। निबन्ध तो केवल एक ही प्रकार का लेखन-अभ्यास है। इस प्रकार के अनेकों लेखन-अभ्यास कक्षा में कराये जा सकते हैं और कराए भी जाते हैं। क्लिष्टता तथा जटिलता की दृष्टि से विविध प्रकार के लेखन-अभ्यासों का क्रम निम्नाङ्कित होगा :—

१. नाम, शीर्षक, सूक्ति, नारा आदि अनुकरण द्वारा लिखना

२. शब्दों, वाक्यों या अनुच्छेदों का लिपि-परिवर्तन (Transcription)

३. श्रुतिलेख (Dictation)

४. स्वयं सोचकर वस्तुओं, पदार्थों, स्थानों, जीवों आदि का नाम रिक्त कार्डों पर लिखना। (सीखे हुए शब्दों का)

५. पाठ्य-पुस्तक पर आधारित अभ्यास—

(क) रिक्त स्थानों की पूर्ति

(ख) शब्द-प्रयोग

(ग) प्रश्नोत्तर-लेखन

(घ) गद्यान्वय (Prose order)

(ङ) शब्दान्तरीकरण (Paraphrase)

(च) संक्षिप्तीकरण (Summary)
(छ) सारांश (Substance)
(ज) व्याख्या (Explanation)
६. सूत्रों पर आधारित कथा या लेख (Hints, Story or Essay)
७. चित्र-निबन्ध (Picture Composition)
८. स्वतन्त्र निबन्ध—
(क) वर्णनात्मक
(ख) कथात्मक
(ग) विचारात्मक
(घ) कल्पनात्मक
९. अनुवाद
१०. साहित्यिक रचना—कहानी, कथोपकथन, कविता आदि

इनमें से विचारात्मक तथा कल्पनात्मक निबन्ध तथा साहित्यिक रचना के लिये विदेशी भाषा होने के नाते अँग्रेज़ी में विद्यार्थियों को कोई विशेष क्षेत्र या उत्साह न रहेगा। परन्तु उच्चतम कक्षाओं में प्रायः अनोखी प्रतिभा वाले विद्यार्थियों द्वारा यह कार्य सम्पन्न हो सकता है। शेष प्रकार के लेखन-अभ्यासों को सहज ही उपर्युक्त क्रम से विविध कक्षाओं में लिया जा सकता है। अनुवाद के स्थान सम्बन्ध में कुछ मतान्तर सम्भव है। उसे और पूर्व स्थान दिया जाता है जो कुछ युक्ति-संगत प्रतीत होता है। दिये हुए विचारों को व्यक्त करने की क्रिया सरल मानी जायगी और विचार सोच कर व्यक्त करने की क्रिया कठिन ! अतः अनुवाद निबन्ध से पहले रखना चाहिए। हमें इसमें कोई विशेष आपत्ति नहीं; किन्तु अनुवाद की सच्ची कला—एक भाषा में व्यक्त, सूक्ष्मतम भाव को दूसरी भाषा के तद्रूप समानान्तर अभिव्यक्ति में परिवर्तित करना—स्वतन्त्र रूप से किसी स्वगत-विचार को प्रगट करने की अपेक्षाकृत क्लिष्ट ही होगा। वस्तुतः यह तो अनुवाद के स्तर पर अधिक निर्भर करेगा। निम्न कोटि का अनुवाद-अभ्यास निम्न कक्षाओं में ही आरम्भ किया जा सकता है।

(क) अनुवाद-शिक्षण

अनुवाद की आवश्यकता--

किसी भी द्वितीय भाषा के सीखने का एक मुख्य उपयोगितावादी उद्देश्य होता है, अनुवाद विषयक। सभी की यह स्वाभाविक इच्छा होती है कि वह अपनी आन्तरिक अनुभूतियों को अधिक से अधिक लोगों के समक्ष प्रगट कर दे। मातृभाषा में कुछ लिख लेने पर ही उसे तृप्ति नहीं हो जाती। अन्य भाषा-भाषी भी उन भावों से परिचित हो जायँ— यह उसकी उत्कट अभिलाषा होती है। इसकी पूर्ति में अनुवाद-कला सहायक सिद्ध होती है। कवीन्द्र रवीन्द्र की 'गीताञ्जलि' इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। परन्तु यह उदाहरण अद्वितीय है। अधिकाँशतः मूल लेखक स्वयं अनुवाद नहीं करता—कारण कि दोनों भाषाओं में इतनी प्रखर मौलिक प्रतिभा का विचित्र संयोग विरला ही देखा जाता है। इसी स्थिति का दूसरा पक्ष भी है। अन्य भाषा की सुन्दर साहित्यिक रचनाओं का या उसके पारिभाषिक वैज्ञानिक अथवा दार्शनिक ग्रन्थों का अनुवाद करके उस बहुमूल्य भाव-राशि को अपने देशवासियों के लाभार्थ प्रकाशित करना तथा मातृभाषा या राष्ट्रभाषा के वाङ्मय को समृद्ध बनाना भी कोई हेय लक्ष्य नहीं। विश्व-साहित्य के चिरन्तन सार्वभौमिक ग्रन्थों का, प्राचीन भाषाओं की शाश्वत गौरव-कृतियों का अथवा वर्त्तमान जगत की नवीनतम बहुमूल्य रचनाओं का अनुवाद किए बिना कोई भी भाषा वाङ्मय की समृद्धि अथवा पूर्णता का स्वप्न नहीं पूरा कर सकती। वस्तुतः किसी ग्रन्थ का महत्व इस बात से भी आँका जाता है कि कितनी भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ है। अँग्रेज़ी भाषा का मौलिक, पारिभाषिक तथा अनुवादित तीनों प्रकार का साहित्य अत्यन्त समृद्ध हैं और भारतीय भाषाएँ अनुवाद के द्वारा उसका पूरा लाभ उठा सकती हैं।

अनुवाद की कठिनाइयाँ--

जैसा अनुवाद-विधि का विवेचन करते हुए हमने कहा था, यह कठिन कला है। इसमें दोनों भाषाओं पर समान अधिकार आवश्यक है,

इसलिए इसको पर्याप्त भाषा-ज्ञान हो चुकने के उपरान्त ही सिखाना चाहिए। प्रचलित परम्परा इस सुझाव के बिलकुल विपरीत है। अनुवाद के अभ्यास छठवीं अर्थात् आरम्भिक कक्षा से ही आरम्भ हो जाते हैं और माध्यमिक अवस्था की अन्तिम परीक्षा—इंटरमीडियेट—से समाप्त हो जाते हैं। वस्तुतः यहाँ से उसका आरम्भ होना चाहिए था। उधर अनुवाद-विधि की अति और विफलता से चिढ़कर बहुत से विदेशी भाषा-विशेषज्ञ इस कला को कक्षा-शिक्षण से पूर्णतः बहिष्कृत कर देना चाहते हैं; परन्तु यह नीति घातक होगी और विदेशी भाषा सीखने की एक उपयोगिता ही नष्ट हो जायगी। अतः अनुवाद-शिक्षण में अत्यन्त सतर्कतापूर्वक अग्रसर होने की आवश्यकता है।

शब्दानुवाद तथा भावानुवाद—

अनुवाद दो प्रकार का होता है—एक तो शब्दानुवाद और दूसरा भावानुवाद। शब्दानुवाद दोनों भाषाओं के पर्यायवाची शब्दों को समतुल्य वाक्य-रचना में संगठित करने की कुशलता पर अधिक बल देता है। बाह्य अभिव्यक्ति की मर्यादा की यथाशक्ति रक्षा ही इसका ध्येय होता है। किन्तु यह अक्षरशः रूपान्तर करने की उपाहासास्पद श्रेणी तक नहीं पहुँचता। फिर भी भाषा की स्वाभाविकता समाप्त हो जाती है और अभिव्यक्ति अत्यन्त यन्त्रात्मक, निर्जीव तथा नीरस बन जाती है। निम्न कक्षाओं में शब्दानुवाद ही की सम्भावना अधिक रहती है। इसके विपरीत भावानुवाद भाव-पक्ष पर अधिक बल देकर उस भाव को व्यक्त करने वाली उपयुक्ततम शब्दावली को स्वाभाविक तथा प्रचलित मुहावरेपूर्ण ढँग से संगठित करने की क्रिया का अनुसरण करता है। इसी के कुछ अधिक विकसित रूप हैं—छायानुवाद तथा मुक्त रूपान्तरण। इससे मौलिक कृति की सरसता, भावपूर्णता तथा उक्ति-चमत्कार का वास्तविक आनन्द अनुवाद रूप में भी प्राप्त होता है। इससे साहित्यिक कृतियों के कला-पक्ष की मर्यादा का भी उचित निर्वाह होता है। अतः अनुवाद-प्रक्रिया के वास्तविक उद्देश्य की पूर्ति तो इसी प्रकार के अनुवाद के द्वारा हो पाती है। किन्तु इस प्रकार का अनुवाद भाषाओं पर पर्याप्त अधिकार

होने के उपरान्त ही सम्भव है। अतः उच्च कक्षाओं में ही इसका अभ्यास किया जा सकता है।

अनुवाद-शिक्षण के उद्देश्य--

कक्षा में अनुवाद पढ़ाने से कई प्रयोजन सिद्ध होते हैं। मातृभाषा तथा अँग्रेज़ी का स्वाभाविक समन्वय होता है। दोनों भाषाओं के तुलनात्मक रचना-संगठन का आभास मिलता है और किसी दिए हुए भाव को अँग्रेज़ी भाषा में प्रगट करने के अभ्यास द्वारा स्वतन्त्र लेखन के लिए अच्छी तैय्यारी भी होती है। निष्क्रिय शब्दाधिकार सक्रिय बन जाता है तथा व्याकरण, वाक्य-संगठन, मुहावरों आदि का ज्ञान पुष्ट होता है। किसी भाव को विविध प्रकार से व्यक्त करने में सूक्ष्मतम अन्तर लक्षित कर लेने की क्षमता का विकास होता है। लेखन-क्रिया के "एकमात्र उपयुक्ततम शब्द की कला" वाले पक्ष का व्यावहारिक परिचय मिलता है, और साथ ही साथ अपने तात्पर्य की विशुद्धता, अखण्ड तथा यथेष्ट अभिव्यक्ति का अभ्यास भी।

शिक्षण-विधि--

इन सब प्रयोजन की सिद्धि के हेतु कक्षा में अनुवाद पढ़ाते समय सर्वप्रथम यह निश्चित कर लिया जाय कि आज के अभ्यास में किस पक्ष पर अधिक बल देना है—अर्थात् व्याकरण सम्बन्धी किसी नियम पर, वाक्य-रचना के किसी ढँग पर, कुछ चयनकृत शब्दावली पर, प्राकृतिक मुहावरों पर या कुछ मौखिक प्रयोगों पर ही। तदनुसार बालकों से उनके पूर्वानुभवकृत उदाहरणों का अँग्रेजी से हिन्दी में मौखिक अनुवाद करवा कर भूमिका सम्पन्न की जाय, और उसके विशिष्ट पक्ष की ओर संकेत करते हुए उद्देश्य-कथन। कक्षा के साथ मौखिक अनुवाद कराने में विश्लेषणात्मक ढँग अपनाया जाय तथा शब्द, वाक्यांश और तब वाक्य का अनुवाद करते हुए अग्रसर हों। मौखिक अनुवाद करते समय बालकों को प्रेरणा तथा प्रोत्साहन दे देकर उन्हीं से अधिकांश कार्य सम्पन्न कराएँ। इस समय कठिन शब्दों या मुहावरों के अँग्रेजी रूपान्तर बालकों को

अंकित कराए जायें परन्तु पूर्ण वाक्य का अनुवाद नहीं। पूर्ण अनुवाद तो प्रयोग कार्य के रूप में बालकों को स्वयं पूरा करना चाहिए। विशिष्ट पक्ष को पुनः उनकी चेतना में दृढ़तापूर्वक स्थापित करने के लिए कुछ नियम-निरूपण या सूत्रीकरण उपयोगी होता है, किन्तु यह भी प्रयोग कार्य के पहले ही पूरा कर दिया जाय।

परिष्कार--

अधिकांश अनुवाद हिन्दी से अँग्रेज़ी में ही करवाया जाता है, जिससे दिए हुए भाव को अँग्रेज़ी में व्यक्त करने से अँग्रेजी-लेखन का अभ्यास हो। परन्तु इसकी विपरीत क्रिया भी कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं है। अतः उसे भी कभी-कभी पूरक प्रक्रिया के रूप में ही कराते रहें तो अच्छा है। अनुवाद की क्रिया को अधिक रुचिकर बनाने के लिए कुछ खेल-विधि के अभ्यास, सामूहिक प्रतियोगिता अथवा विविध प्रकार के बहिरंग परीक्षा-प्रश्न या बौद्धिक पहेलियों का प्रयोग किया जा सकता है। किसी एक ही वाक्य के अनेक सम्भव अनुवादों का तुलनात्मक मूल्याङ्कन कराने का अभ्यास भी अत्यन्त मनोरञ्जक तथा शिक्षाप्रद सिद्ध होता है।

अनुवाद की अशुद्धियाँ और संशोधन--

भारतीय विद्यार्थियों के किए हुए अँग्रेज़ी-अनुवाद में कुछ विशेष प्रकार की अशुद्धियाँ पाई जाती हैं—जैसे भारतीयतावाद भाव की उपेक्षा करके अक्षरशः अनुवाद, गलत शब्द का प्रयोग, नवनिर्मित अप्रचलित शब्दों का प्रयोग इत्यादि। भारतीयतावाद, मातृभाषा के प्रयोग या मुहावरे का यथावत् अँग्रेज़ी में रख देने की प्रवृत्ति है, यद्यपि अँग्रेज़ी मुहावरा भिन्न होता है। यह सब अशुद्धियाँ अनभ्यास के ही कारण होती हैं। शुद्ध रूपों का अभ्यास निरन्तर होते रहने से ही यह छूट सकती हैं। आरम्भ से ही शब्दानुवाद की अपेक्षा भावानुवाद पर अधिक बल देने से यह अशुद्धियाँ कम होंगी।

(ख) निबन्ध-लेखन—

लेखन-शिक्षण का विवेचन आरम्भ करते समय ही हमने लेखन-कार्य

के महत्त्व एवं उसकी कठिनाइयों का परिचय दिया था। यहाँ इतना कहना पर्याप्त होगा कि लेखन-कार्य का सबसे उपयुक्त प्रतिनिधि निबन्ध-लेखन अभ्यास है। अतः निबन्ध-लेखन के गुण-दोषों का विवेचन करके उन्हीं विचार-सूत्रों की पनुरावृत्ति करने से कोई लाभ न होगा। हमें यहाँ निबन्ध-लेखन के कुछ मुख्य उद्देश्यों तथा निबन्ध-लेखन सिखाने के कुछ आधारभूत सिद्धान्तों का विवेचन ही इष्ट है। भाषा-कार्य के अन्य सभी पक्षों से निबन्ध-लेखन अधिक प्रतिष्ठित अभ्यास माना जाता है। इसकी श्रेष्ठता परम्परागत है। विशेषकर विदेशी भाषा में तो लेखन की पूर्णता पर ही अधिक ध्यान दिया जा सकता है, भाषण की पूर्णता पर कम। लेखन के लिए सुन्दर नमूने पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध रहते हैं, इसलिए भी और सोचविचार, काट-छाँट व रद्दोबदल आदि के लिए पर्याप्त अवसर रहता है—कुछ इसलिए भी।

निबन्ध-लेखन के प्रमुख उद्देश्य—

निबन्ध-लेखन की क्रिया का प्रमुख उद्देश्य होता है, लेखक की चिन्तन-शक्ति को प्रेरित करके सक्रिय बनाना। वस्तु, समस्या या घटना विशेष पर ध्यान केन्द्रित करके विचार करने में उसके विविध पक्षों से सम्बन्धित भाव तथा अनुभूतियाँ जागृत होने लगते हैं। अतएव इससे दो अन्य उद्देश्य और भी स्थिर हो जाते हैं। एक तो इन विचारों को सूत्रबद्ध करना या व्यवस्थित रूप में एकत्र करना और दूसरा इन विचारों तथा अनुभूतियों को उपयुक्त प्रचलित भाषा में प्रकट करना। अपने विचारों तथा आन्तरिक अनुभवों को शब्दबद्ध करने या सुसंगत लिखित-रूप प्रदान करने की इस क्रिया में लेखक का शब्दज्ञान तथा शब्द-अधिकार स्वभावतः विस्तृत तथा दृढ़ होता है। विशेषकर निष्क्रिय शब्दज्ञान इसमें प्रयुक्त होने पर अत्यन्त सक्रिय रूप धारण कर लेता है। अतः यह बहुमूल्य उद्देश्य भी निबन्ध-लेखन की क्रिया से सम्बद्ध है और सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है रचनात्मकता तथा सृजनात्मकता की प्रवृत्ति को सन्तुष्ट करना। इन्हीं सब उद्देश्यों से निबन्धलेखन-क्रिया सम्पन्न की जाती है।

निबन्ध-लेखन-शिक्षण के कुछ सिद्धान्त--

कक्षा में निबन्ध लेखन का अभ्यास कराने में शिक्षक को सर्वप्रथम विद्यार्थियों की रुचि का ध्यान रखते हुए प्रबल प्रेरणा प्रदान करनी चाहिए। निबन्ध का विषय ऐसा हो जिसमें बालकगण अत्यन्त रुचि रखते हों तथा जिसके सम्बन्ध में वे कुछ अपने विचार प्रकट करना चाहें। परम्परागत पिटे-पिटाए विषयों पर निबन्ध लिखाने की क्रिया तनिक भी उत्साहवर्धक नहीं होती। न उनसे उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति ही हो पाती है और न भाषा-योग्यता सम्बन्धी कोई अन्य लाभ ही। निबन्ध का विषय बालकों की सम्मति से ही चुना जाय तो अधिक उपयुक्त होगा। शिक्षक को ही वस्तुतः सुझाव देना पड़ेगा। उनके वातावरण से ऐसे तत्त्व लेकर जो उनमें रुचिकर अनुभव उत्पन्न करते रहते हों या जिनकी ओर उनका ध्यान विशेषरूपेण आकर्षित होता हो, निबन्ध-रचना की जा सकती है; लेकिन साथ ही साथ उनके भाषा सम्बन्धी सीमित ज्ञान का भी ध्यान रखना पड़ेगा। अत्यन्त सीमित क्षेत्र के अन्दर रहते हुए उनकी चिन्तन-शक्ति को प्रेरित कर विषयगत भावों को सूत्रबद्ध कराने की कला वास्तव में अत्यन्त दुस्तर है।

विषय-वस्तु संग्रहीत करने तथा उसे उपयुक्त भाषा में प्रकट करने में विद्यार्थियों को सहायता करते हुए भी शिक्षक कभी उन्हें पका-पकाया प्रदान करने की भूल न करे अन्यथा निबन्ध-लेखन-क्रिया का सभी मूल्य लुप्त हो जायगा। विषय-वस्तु सम्बन्धी सहायता मातृभाषा में तथा अन्य पाठ्य-विषयों में किए गए कार्य से भी ली जा सकती है। स्वयं अँग्रेज़ी विषय के मौखिक कार्य, पठन-कार्य, पाठ्य एवं सहायक पुस्तक के ज्ञान से विषय-वस्तु तथा अभिव्यक्ति के ढँग दोनों में सहायता ली जा सकती है। इनके अतिरिक्त स्कूल सम्बन्धी अनुभवों तथा बाह्य जीवन के वास्तविक अनुभवों से वस्तु-सामग्री संग्रहीत करने की भी चेष्टा होनी चाहिए; क्योंकि यही निबन्ध-लेखन-क्रिया को सजीवता प्रदान कर सकते हैं। बालक में जब यह भाव उत्पन्न हो जाय कि हम कोई नई बात या अनुभव अन्य लोगों को बता सकते हैं, जिसे वे जानना

चाहते हैं तभी निबन्ध-लेखन की कला सफल हो सकती है। इसके लिए शिक्षक बालकों को प्रोत्साहित करके उन्हें तथ्यों, मतों तथा कल्पनाओं के प्रकट करने में सहायता करे।

निबन्ध-लेखन-क्रिया की सफलता के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसकी तैयारी के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान किया जाय। सबसे अधिक मूल्यवान प्रक्रिया तो यही है कि यह तैयारी सामूहिक तथा व्यक्तिगत दोनों प्रकार की हो। कक्षा में विवेचन भी किया जाय तथा व्यक्तिगत पठन तथा मनन का भी निर्देश किया जाय। हो सके तो पहले कच्चा कार्य (Rough Work) कराके तब उसे पक्का (Fair) करने का अभ्यास किया जाय। इससे आत्मसंशोधन भी होता है और भाषा-परिष्कार भी। निबन्ध पूरा हो जाने पर उसको जाँचना आवश्यक है। अशुद्धियों को पुनः संशोधित करके लिखने का अभ्यास भी उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना स्वयं निबन्ध-लेखन।

(ग) श्रुतिलेख

श्रुतिलेख की समस्या--

लेखन-कार्य के अन्तर्गत श्रुतिलेख एक मनोरञ्जक एवं उपयोगी अभ्यास है। परन्तु परम्परागत अभ्यास होने के कारण श्रुतिलेख भी आधुनिक शिक्षण-विधियों की दृष्टि में अनुपयोगी एवं महत्वहीन समझा जाता है। अतएव यह अभ्यास आजकल दुर्दिन-ग्रस्त है। श्रुति-लेख में मौखिक शब्द सुन कर उसे लिखित रूप में परिवर्तित कर देना होता है। यह लिखित रूप स्मृति से ही पुनरुत्पादित करना पड़ता है। शीघ्रता भी करनी पड़ती है; क्योंकि दूसरे व्यक्ति के बोलने की गति के अनुरूप अग्रसर होबा पड़ता है और अधिकतर समय कम ही रहता है। अतः इस प्रकार के अभ्यास को दो मुख्य उद्देश्यों से कराया जाता था। एक तो शब्दाक्षरन्यास (Spelling) सिखाने के लिए और दूसरे लेखन की गति तीव्र बनाने के लिए। परन्तु नवीनतम वैज्ञानिक परीक्षणों के आधार पर श्रुतिलेख का यह मूल्य या महत्व प्रश्नापन्न है।

इस बात की जाँच करने के लिए कि क्या वास्तव में श्रुतिलेख शब्दाक्षरान्यास-शिक्षण के लिए उपयोगी अभ्यास है—जो परीक्षण किए गए उनमें समान योग्यता वाले दो विद्यार्थी वर्गों में से एक वर्ग को पर्याप्त समय तक श्रुतिलेख का नियमित अभ्यास दिया गया और दूसरे वर्ग को बिलकुल नहीं। अन्त में दोनों वर्गों की शब्दाक्षरान्यास परीक्षा ली गई। इस परीक्षा के परिणाम में दोनों वर्गों के मध्य कोई अन्तर नहीं दृष्टिगोचर हुआ। अतः इन परीक्षणों से यह सिद्ध हुआ कि श्रुतिलेख शब्दाक्षरन्यास का राजमार्ग नहीं है। इसके कारणों का विवेचन करने पर स्पष्ट हुआ कि शब्दाक्षरन्यास तो दृष्टि के क्षेत्राधिकार की बात है श्रवण के क्षेत्राधिकार की नहीं। सुविस्तृत पठन से उसमें सहायता मिल सकती है, श्रवण द्वारा नहीं। दूसरी बात यह भी अनुभव की गई कि किसी शब्द की ध्वनि द्वारा उसकी दृष्टि सम्बन्धी मनोप्रतिमा नहीं जनित हो पाती और इसमें अभाव में शब्दाक्षरन्यास का आभास अथवा बोध तथा उसका आभास भी असम्भव है। अतएव श्रुतलेख को महत्वहीन तथा निरर्थक अभ्यास ठहरा कर उसका परित्याग करने का परामर्श दिया गया।

परन्तु उपर्युक्त दूसरे उद्देश्य में अधिक शङ्का नहीं की गई—अर्थात् लेखन-गति को बढ़ाने के लिए श्रुतिलेख फिर भी उपयोगी है। एक अन्य महत्ता भी प्रकाश में आई। श्रुतिलेख से शब्दाक्षरन्यास की योग्यता बढ़ती भले ही न हो; परन्तु उसकी जाँच अवश्य की जा सकती है। अतएव शब्दाक्षरन्यास की योग्यता-मापन के लिए या उसकी परीक्षा लेने के लिए श्रुतिलेख फिर भी उपयोगी है। यह भी असत्य नहीं ठहराया जा सकता कि सुने हुए शब्द को तत्काल लिखित रूप में परिवर्तित करने की कला जीवन में अनेकों अवसरों पर व्यावहारिक रूप से उपयोगी सिद्ध होती है। व्याख्या-पद्धति से शिक्षण होने पर यह कला अनिवार्य रूप से आवश्यक हो जाती है। इससे प्राप्त श्रवण-दीक्षा तथा मानसिक दीक्षा अपने आप में महत्वपूर्ण है। इस कार्य को करने में चित्त को एकाग्र करने, किसी की ओर ध्यान जमाने तथा यथाशक्ति त्रुटि-मुक्त तथा शीघ्र लेखन

सम्पन्न करने के मानसिक संस्कार दृढ़ होते हैं। और यह सब कोई हेय या तुच्छ गुण नहीं हैं। नए सीखे हुए शब्दों के अक्षरान्यास की परीक्षा लेना भी आवश्यक है। अतः प्रायः श्रुतिलेख का अभ्यास कक्षा में अवश्य कराना चाहिए।

टामकिनसन महोदय ने कहा है—शब्दाक्षरन्यास का भूत श्रुतिलेख की अभ्यास-अवधि या उसकी विषय-वस्तु पर अधिकार न करने पावे। श्रुतिलेख ने शब्दाक्षरन्यास कभी नहीं सिखाया; न वह सिखाता ही है और न सिखा सकता है। परन्तु फिर भी श्रुतिलेख का अभ्यास देते रहना चाहिए।"

श्रुतिलेख-अभ्यास के क्रमिक पद—

यदि कक्षा में श्रुतिलेख का अभ्यास कराना ही होगा तो उसे विधि-पूर्वक सम्पन्न करने में निम्नक्रमानुसार अग्रसर होना सुविधाजनक एवं प्रभावोत्पादक होगा।

१—अनुच्छेद को छाँटना:— यह कार्य शिक्षक द्वारा पहले ही सम्पन्न हो जाना चाहिये। अनुच्छेद कक्षा की योग्यता के अनुसार पर्याप्त लम्बा हो। कम से कम आधा घण्टे का लेखन अभ्यास हो सके। यदि पाठ्य-पुस्तक या सहायक पुस्तक में पढ़ाया जा चुका हो तो सर्वोत्तम है। भेद-नीति के तत्त्वों से सर्वथा मुक्त हो।

२—श्रुतिलेख की उपयुक्त इकाइयों में अनुच्छेद का विभाजन :—यह कार्य भी कक्षा में आने के पूर्व शिक्षक द्वारा सम्पन्न हो जाना चाहिए। कक्षा की भाषा-योग्यता तथा लेखन-गति का ध्यान रखते हुए, सस्वर-पठन की इकाइयों की यथाशक्ति मर्यादा रखते हुए समस्त अनुच्छेद को श्रुतिलेख-इकाइयों में विभाजित कर लेना चाहिए। एक बार जितना बोल कर रुक जाना है, वही श्रुतिलेख इकाई है। इकाई-विभाजन में सामान्य भाव नष्ट न होने पावें और न भाषा के मौखिक रूप का सन्तुलन ही भंग हो।

३—पूर्व तैयारी का निर्देश तथा कक्षा प्रबन्ध:—विद्यार्थियों के बैठने का उचित प्रबन्ध करके, लेखन-सुविधा प्रदान करके, उन्हें लेखन-कार्य के लिए प्रस्तुत रहने का आदेश दिया जाय। ऐसा स्पष्ट निर्देश कर दिया जाय कि किसी की नकल करने या अन्य प्रकार की बेईमानी करने का प्रयत्न न करें, श्रुतिलेख के बीच बोले नहीं और न प्रश्न करें, पहले ध्यानपूर्वक सुनलें तब लिखें। आरम्भ के परिचय-पठन के समय लेखन प्रयास न करें और किसी भी भाँति दूसरों के कार्य में बाधा न डालें।

४—परिचय-पठन—समस्त अनुच्छेद का मन्दगति-आदर्श पठन। स्वर स्पष्ट तथा कक्षा की आवश्यकतानुसार उच्च हो। पहले ही इन शब्दों द्वारा सावधान कर दिया जाय कि अभी लेखन-कार्य आरम्भ नहीं करना है। कलम रख दीजिए और ध्यानपूर्वक सुनिये, आदि।

५—अनुच्छेद को लेखनार्थ बोलना—बालकों को सावधान करके पूर्वनिश्चित इकाइयों का पर्याप्त यतिपूर्वक अनुसरण करते हुए तथा विद्यार्थियों की लेखन-गति का ध्यान रखते हुए, उच्च स्वर से स्पष्ट उच्चारण पूर्वक, अर्थ-व्यञ्जक ढङ्ग से अनुच्छेद बोला जाय। एक इकाई बोल कर लिखने-भर का समय देकर, एक बार पुनः उसी इकाई को दोहरा कर फिर कुछ सेकण्ड अवकाश देकर तब दूसरी इकाई को उसी तरह बोलते हुए अग्रसर होना चाहिए। कोई प्रश्न करे या दोह-राने का आग्रह करे तो उसे इशारे से ही चुप रहने का संकेत करके अपने कार्य को निर्विघ्न रूप से चालू रक्खे। इस प्रकार अनुच्छेद बोलते हुए समस्त कक्षा का निरीक्षण भी करता रहे; किन्तु उसके लिए टहलने की आवश्यकता नहीं। एक ही स्थान पर स्थिर रह कर दृढ़ एवं गम्भीर स्वर से बोला जाय और इसी ढङ्ग से समस्त अनुच्छेद पूरा किया जाय।

६—तुलना-पठन—कुछ एक आध मिनट का अवकाश देकर पुनः सावधान करके बालकों को आदेश दिया जाय कि एक बार फिर से अनुच्छेद पढ़ा जायगा ताकि सब लोग उससे मिला लें; कुछ छूटा तो

नहीं है। तदुपरान्त जैसे परिचय-पठन किया था, उससे भी कुछ मन्दगति तथा उच्च स्वर से आदर्श पठन किया जाय।

७—अभ्यास-पुस्तिका-संग्रह—कुछ मुख्य विद्यार्थियों की सहायता से यह कार्य अत्यन्त सुव्यवस्थित ढङ्ग से सम्पन्न किया जाय। कक्षा में शोर-गुल तथा कुछ झगड़ा या गड़बड़ी न होने पावे, इस बात का ध्यान शिक्षक स्वयं रक्खें।

८—अशुद्धियों का संशोधन—यह कार्य बड़ी सावधानीपूर्वक होना चाहिए। इसके लिए तीन विधियाँ हो सकती हैं—

(क) शिक्षक द्वारा—शिक्षक सभी विद्यार्थियों की अभ्यास-पुस्तिकाएँ स्वयं देखकर जाँचे और अशुद्धियों का संकेत करे। कक्षा में जो समय हो उसमें एक-एक विद्यार्थी को बुला-बुला कर उसकी अशुद्धियाँ समझाता जाय। शेष विद्यार्थियों को कुछ पठन-कार्य देदे। शेष अभ्यास पुस्तिकाएँ घर से जाँच कर लौटा दे। यही प्रचलित रीति है। परन्तु इससे शिक्षक पर अत्यधिक कार्य-भार बढ़ जाता है और बालकों में आत्म-संशोधन की क्षमता का भी विकास नहीं हो पाता।

(ख) परस्पर-संशोधन—इसमें विद्यार्थीगण एक-दूसरे की अभ्यास-पुस्तकें आपस में बदल कर अशुद्धियों की मूलपाठ से तुलना करके चिन्हित कर देते हैं और शिक्षक कक्षा-निरीक्षण करते हुए टहल-टहल कर शेष कार्य पूर्ण करके हस्ताक्षर करता जाता है। इसमें बहुत झंझट है। परस्पर छीना-झपटी तथा वैमनस्य की बहुत सम्भावना है। सभी बालकों में तुलना करके भी संशोधन करने की क्षमता नहीं होती। अतः बहुत सा कार्य अनिश्चित तथा स्वयं विद्यार्थियों को असंतोषजनक रहेगा।

(ग) आत्मसंशोधन—इसमें हर एक विद्यार्थी स्वयं अपनी अभ्यास-पुस्तिका में मूलपाठ से तुलना करके अशुद्धियाँ निकलता है। यह विधि है तो आदर्श ही; परन्तु इसमें बेईमानी के अधिक अवसर हैं, जिससे लाभ की जगह हानि ही होगी। परन्तु कक्षा का वातावरण अच्छा बनाए

रहने पर और शिक्षक द्वारा उचित निरीक्षण करते रहने पर बेईमानी की सम्भावना हटाई जा सकती है।

इनमें से जो विधि कक्षा एवं परिस्थिति तथा स्वभाव के अनुसार उपयुक्त जान पड़े उसका प्रयोग करे।

६—अशुद्धियों के शुद्धकृत रूप का अभ्यासः—यह अन्तिम पद होने के कारण अत्यन्त असंतोषजनक रूप से सम्पन्न किया जाता है, जिससे इस समस्त अभ्यास का असली मूल्य बहुत घट जाता है, वस्तुतः सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य तो यही है और इसे अवश्य पूरा कराना चाहिए। अन्यथा श्रुतिलेख पाठ लेना न लेना बराबर हो गया।

इस उपर्युक्त क्रम से श्रुतिलेख-पाठ सम्पन्न करने पर स्पर्धा तथा प्रतियोगिता की भावना का भी समावेश किया जा सकता है—व्यक्तिगत तथा सामूहिक दोनों प्रकार की। इससे इसका शिक्षात्मक मूल्य और भी बढ़ जाएगा।

तुलनात्मक अध्ययनार्थ ग्रन्थ-सूची

Ballard : Teaching & Testing English, Chapter VI

Otto Jespersen : How to Teach a Foreign Language

Greening Lamborn : Expression in Speech and Writing

Thompson & Wyatt : The Teaching of English in India, Chapters V, VI, IX & X

Stott : Language Teaching in the New Education, Chapter VII

Morris . The Teaching of English as a Second Language, Chapter X

Champion : Lectures on Teaching English in India, Lecture XII

French : The Teaching of English Abroad, Book I Chapter IX ; Book III Chapter VII

Godfrey D' Souza : The Teaching of English, Chapter XI
V.S. Mathur : Studies in the Teaching of English in Indian Schools, Chapter IV
Mehta : The Teaching of English in India, Chapters VI, VIII, IX, X, XIII & XV
Tomkinson : The Teaching of English in India, Chapters VI & VII
Bhatia : The Teaching of Composition.

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) विभिन्न प्रकार के लिखित अभ्यासों का उल्लेख करो और निर्णय करो कि कौन से अभ्यास किन कक्षाओं के लिए उपयुक्त हैं और क्यों ?

(२) अनुवाद कितने प्रकार का होता है ? तुम किस प्रकार के अनुवाद को अधिक महत्व दोगे और उसके शिक्षण के लिए क्या-क्या उपाय करोगे ?

(३) निबन्ध-लेखन-शिक्षण के प्रमुख उद्देश्यों तथा सिद्धान्तों की विवेचना करो।

(४) श्रुतिलेख की अँग्रेजी-शिक्षण में क्या आवश्यकया है ? कक्षा में श्रुतिलेख-अभ्यास किस प्रकार सम्पन्न करोगे ?

अध्याय १६

अशुद्धियाँ और अक्षरान्वय

(क) अशुद्धियाँ और उनका संशोधन

लेखन-कार्य की अशुद्धियाँ--

शिक्षक के निरन्तर प्रयत्नशील रहने के उपरान्त भी बालकों के लिखित कार्य में अनेकों अशुद्धियाँ होती रहेंगी। इन अशुद्धियों का सुधार करना अत्यावश्यक है, और सुधारे हुए शुद्ध रूपों का पुनः अभ्यास भी। भारतीय बालकों के अँग्रेज़ी के लिखित कार्य में कुछ मुख्य प्रकार की अशुद्धियाँ अधिक पाई जाती हैं। वे निम्नाङ्कित हैं:—

(१) अक्षरान्वय।

(२) शब्द-प्रयोग, (तात्पर्यबोध तथा रूप दोनों ही)।

(३) अक्षरशः अनुवाद।

(४) वाक्यरचना-दोष।

(५) व्याकरण-दोष।

वाक्यरचना दोषों के अन्तर्गत प्रश्नात्मक तथा निषेधात्मक वाक्य में सहायक क्रिया 'do', 'did' आदि को छोड़ देना या गलत स्थान में प्रयोग कर देना; अप्रत्यक्ष कथन में जहाँ 'that' का संयोजक नहीं लगना चाहिए वहाँ उसका प्रयोग करना, सम्बन्धवाचक सर्वनाम से संयुक्त वाक्यांश के पूर्व 'that' संयोजक लगा देना, अर्द्ध वाक्य को ही पूर्ण वाक्य समझ कर लिखना तथा इसी प्रकार के अन्यान्य दोष बहुधा पाए जाते हैं। व्याकरण-दोषों में से 'Articles' का अशुद्ध प्रयोग या छोड़ देना, एक प्रकार के पद का दूसरे प्रकार के पद के रूप में प्रयोग करना यथा संज्ञा को क्रिया या विशेषण को क्रिया-विशेषण की भाँति, 'Preposi-

tion' का अनुचित प्रयोग, दोहरा भूतकाल (Did, Went), सकर्मक-अकर्मक क्रिया का दूषित प्रयोग आदि अधिक मात्रा में घटित होने वाली अशुद्धियाँ हैं। शब्दाक्षरन्यास-शिक्षण की समस्या का हम पृथक विवेचन करेंगे। यहाँ इतना जान लेना पर्याप्त है कि शब्दाक्षरन्यास की अशुद्धि बहुत व्यापक है। इन अशुद्धियों के अतिरिक्त विराम चिन्हों की अशुद्धियाँ, तथ्यों, ज्ञान, या सूचना सम्बन्धी अशुद्धियाँ तथा मुहावरे-सम्बन्धी अशुद्धियाँ भी प्रचुर मात्रा में मिलेंगी।

अशुद्धियों के कारण—

इन अशुद्धियों के अनेक कारण हैं। कुछ तो अज्ञान के कारण, कुछ भ्रम या संदेहवश, कुछ पर्याप्त अभ्यास के अभाव के कारण, कुछ लापरवाही-वश, कुछ जल्दबाजी के कारण, कुछ मातृभाषा प्रयोग के अनुचित अनुकरण के कारण, कुछ अशुद्ध नमूनों का अनुकरण करने के कारण, कुछ सुनने-समझने, सोचने तथा तर्क करने की गलती या स्मरण रखने की असमर्थता के कारण तथा कुछ अवाञ्छनीय पूर्व संस्कारों के कारण लिखित कार्य में अनेक प्रकार की अशुद्धियों की पुनरावृत्ति हुआ करती है। इस विषय में शिक्षक को दो प्रकार के उपाय करने चाहिएँ—एक तो उनके रोकने के लिए तथा दूसरे उनके सुधारने के लिए। जैसी कि अँग्रेज़ी कहावत है—Prevention is better than Cure' अर्थात् चिकित्सा से निरोध अच्छा।

अशुद्धियों को रोकने के उपाय—

अशुद्धियाँ रोकने के उपाय में सर्वप्रथम है, अच्छे निर्दोष नमूनों का साक्षात्कार कराना। बालक में इससे निर्दोष प्रथम संस्कार जनित होंगे। इन प्रथम संस्कारों को 'यथाशक्ति स्पष्ट, सशक्त तथा रुचिकर एवं स्थायी बनाया जाय। अच्छे संस्कार जनित करके उनके रक्षण एवं पूर्ण विकास के लिए घनीभूत अभ्यास दिया जाय, जिसमें थकान या अरुचि या उदासीनता लेशमात्र भी न आने पावे। साथ ही साथ समय-समय से इनसे सम्बन्धित परीक्षाएँ, पुनरावृत्ति तथा प्रतियोगिताएँ आदि करते रहना चाहिए

ताकि अच्छे संस्कार पुनर्जाग्रत एवं सबल हों। इससे अशुद्धियों की संख्या अवश्य कम होगी, परन्तु वे पूर्णतया समाप्त न होंगी, क्योंकि सही रास्ता एक ही है, किन्तु गलत रास्ते अनेक हैं। अतः अशुद्धियों के सम्भावित अवसर शुद्धियों की अपेक्षाकृत स्वभावतः बहुत अधिक हैं।

अशुद्धि-सुधार के सिद्धान्त—

अशुद्धियों का सुधार करने में कई बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। शिक्षक का मनोभाव अत्यन्त सहानुभूतिपूर्ण तथा संतुलनपूर्ण रहना चाहिए। हरएक बालक का स्वभाव तथा योग्यता, अशुद्धि का स्वरूप तथा कारण और कार्य के स्तर एवं परिस्थितियों का ध्यान रखते हुए यांत्रिक भूलों के लिए विनोदपूर्ण अवसरानुकूल चेतावनी देनी चाहिए, लापरवाही जनित भोंड़ी तथा अप्रत्याशित अशुद्धियों के लिए नियमित कड़ी आपत्ति की जाय, विशेषकर जब कोई अशुद्धि शोधन के पश्चात् बार-बार घटित होती रहे। हाँ, सौन्दर्य त्रुटियों में—विशेषकर सृजनात्मक कार्य से सम्बन्धित अभिव्यक्तियों की सौन्दर्य त्रुटियों के सुधार में विशेष मृदुलता से कार्य किया जाय। प्रायः सहानुभूति-पूर्ण पथ-प्रदर्शन तथा गुणानुवाद पूर्वक आलोकन के रूप शोधन कार्य सम्पन्न करना चाहिए। साधारण प्रकार के लिखित कार्य की अशुद्धियों का शोधन विद्यार्थियों पर व्यक्तिगत रूप से ध्यान देकर शिक्षक स्वयं सम्पन्न करे। वह सदैव आत्म-संशोधन की ओर अग्रसर होने में उन्हें सहायता दे। पहले-पहल कुछ मोटी-मोटी या मुख्य प्रकार की अशुद्धियों को सुधारने का प्रयत्न करे, तदुपरान्त अन्य सूक्ष्म अशुद्धियों को सुधारे। इस प्रकार उसका शोधनकार्य प्रगतिशील हो। कुछ संकेत-चिन्हों का प्रयोग करके यह व्यक्त करे कि किस प्रकार की अशुद्धि है और शुद्धरूप बालक स्वयं अपने प्रयत्न द्वारा ज्ञात करे। शोधन अत्यन्त मितव्ययपूर्ण अर्थात् मूल रूप में कम से कम परिवर्तन करने वाला हो। साथ ही साथ वह अत्यन्त विवेकपूर्ण एवं व्यावहारिक हो, जो किसी साधारण नियम से समझाया जा सके।

कुछ अशुद्धियों का मौखिक निर्देश करके बालक से स्वयं शोधन कराए। उन्हें बार-बार पिछले शोधन कार्य को दोहराने का आदेश दिया

करे। शोधनकार्य कभी ध्वंसात्मक या कटु रूप में न किया जाय। सदैव विधेयात्मक एवं सहानुभूतिपूर्ण भाव ही अपनाया जाय तभी अशुद्धि-सुधार का उद्देश्य पूरा हो सकेगा। भूलों की भर्त्सना करने के साथ गुणों की प्रशंसा का सम्मिश्रण कर देने से भी सुधारकार्य की कटुता कम तीक्ष्ण हो जाती है। अशुद्धियों के निराकरण तथा शुद्ध रूपों के स्थापन का एकमात्र मार्ग है—दीर्घकालीन घनीभूत अभ्यास, जिसे हर प्रकार से रुचिकर एवं आकर्षक बनाने का प्रयास करते रहना चाहिए। भूलों के सुधारे हुए रूप का अनेक बार अभ्यास करा देना अत्यावश्यक है।

व्यक्तिगत विद्यार्थी की भूलें सुधारने के साथ-साथ विभिन्न कक्षाओं में पुनःपुनः घटित होने वाली साधारण एवं सर्वमान्य भूलों की सूची भी वर्ष-प्रतिवर्ष बनाते रहना चाहिए। इन भूलों से यथा-समय विद्यार्थियों को सचेत करते रहना चाहिए। यदि हो सके तो नियमित अवसरों पर कुछ मुख्य प्रकार की भूलें सुधारने को कक्षा-परीक्षाएँ तथा प्रतियोगिताएँ आदि भी आयोजित की जायँ। हर प्रकार से यह चेतना बालकों में जनित करना चाहिए कि अपनी भूल को जान लेना तथा उसे सुधार लेना बहुत महत्वपूर्ण तथा आवश्यक कार्य है। इसमें कोई अपमान या लज्जा की बात नहीं। अपमान या लज्जा का अनुभव सुधारी हुई अशुद्धियों का ध्यान न रख कर उन्हें पुनः पुनः दोहराते रहने में होना चाहिए।

(ख) अक्षरान्वय-शिक्षण

अक्षरान्वय की कठिनाइयाँ—

अक्षरान्वय अँग्रेज़ी भाषा का अत्यन्त कठिन पक्ष है। विशेषकर उन विदेशियों को जिनकी मातृभाषा की लिपि ध्वन्यात्मक हो, यह और भी दुस्तर सिद्ध होता है। परन्तु बिना इसके सीखे काम भी नहीं चल सकता। वस्तुतः ठीक अक्षरान्वय कर लेने को कोई विशेष श्रेय नहीं दिया जाता परन्तु इसमें असमर्थता तो महान् कलङ्क है। अँग्रेज़ी अक्षरान्वय की कठिनाई के कुछ विशेष कारण हैं। एक तो है इसके अक्षरों की ध्वनि-विषयक नियमहीनता या असंगति। एक ही अक्षर अनेक ध्वनियों का प्रतीक हो

सकता है और एक ही ध्वनि अनेक अक्षरों या उनके समूहों से व्यक्त हो सकती है। इस सम्बन्ध में व्यञ्जनों की अपेक्षा स्वर अधिक चञ्चल हैं। उदाहरणार्थ ये शब्द देखिए—book, boot, blood cooperate, poor, door—इनमें 'oo' की ध्वनि बिलकुल भिन्न-भिन्न है। दूसरा उदाहरण इन शब्दों का लीजिए—sees, seas, cease, seize, या sailor, sulphur, singer, soldier, vulgar—इनमें से प्रथम पंक्ति के सभी शब्दों की ध्वनि एक सी है; किन्तु उनके अक्षर भिन्न-भिन्न हैं। द्वितीय पंक्ति के सभी शब्दों की अन्तिम ध्वनि एक ही है ; किन्तु उसको भिन्न-भिन्न स्वर-अक्षरों (Vowels) में अङ्कित किया जाता है। इसी प्रकार read कभी रीड है, तो कभी रैड या learned कभी 'लर्न्ड' है तो कभी 'लर्नेड'।

साराँश यह है कि शब्दों की ध्वनि को उनके अक्षरान्वय का सूचक नहीं बनाया जा सकता। भारतीय भाषा-भाषियों के लिए यह वस्तुतः बड़ी उपहासास्पद और आपत्तिजनक स्थिति है। हर एक शब्द का शब्दाक्षरन्यास बिना किसी नियम से बिलकुल पृथक रूप में जानना पड़ेगा। यहाँ तक कि पुराने शब्दों के आधार पर निर्मित होने वाले नए व्याकरण-रूपों में शब्दाक्षर क्रम का बड़ा आकस्मिक परिवर्तन होता है और उन्हें अलग से सीखने की आवश्यकता पड़ती है; क्योंकि यह बड़े अनियमित ढँग से घटित होता है। और फिर शब्दों की संख्या कुछ कम नहीं, एक-एक शब्द कहाँ तक रटा जाय? परन्तु फिर भी अक्षरान्वय-पुस्तिकाओं को रटवाने की परम्परा अभी तक चलती रही है।

अक्षरान्वय-शिक्षण के लिए कुछ सुझाव—

अँग्रेज़ी भाषा में कभी उच्चारण को अक्षरान्वय का निरपेक्ष आधार बनाने की भूल न की जाय। इन दोनों पक्षों के हर एक शब्द को पृथक-पृथक जान लेना आवश्यक है। जिन शब्दों में इन दोनों पक्षों में पूर्ण साम्य है उनसे कोई डर नहीं। किन्तु जिन शब्दों के इन दोनों पक्षों में विषमता है, उन्हें विशेष ध्यान देकर सीखने की आवश्यकता है। सामान्य नियमों के

साथ-साथ उनके अपवादों को भी भलीभाँति जान लेना चाहिए। वस्तुतः अक्षरान्वय तो अभ्यास से सीखने की वस्तु है, नियम से सीखने की नहीं। भाषा के सभी शब्दों का अक्षरान्वय सीखने की आवश्यकता नहीं होती। अक्षरान्वय की व्यावहारिक आवश्यकता तो लिखित कार्य में ही पड़ती है। अतः उन्हीं शब्दों का अक्षरान्वय जानना ज़रूरी है जिनका हम लिखित प्रयोग करें—अर्थात् लिखित प्रयोग में लाने के पूर्व हमें अक्षरान्वय अधिकृत कर लेना चाहिए। इस प्रकार का सक्रिय अधिकार वाला शब्द-वर्ग सभी व्यक्तियों का अत्यन्त सीमित होता है। इसी सीमित शब्द-वर्ग का अक्षरान्वय भली-भाँति सीख लेने की आवश्यकता है।

लिख-लिख कर अक्षरान्वय सीखना सर्वोत्तम है। सर्वप्रथम अधिकतम प्रयुक्त होने वाले शब्दों का अक्षरान्वय सीखना चाहिए। तब फिर उनसे कम प्रयुक्त होने वाले शब्दों का। किसी नवीन शब्द के प्रथम परिचय के समय ही उसके इस पक्ष का समुचित आभास करा दिया जाय। शिक्षक हर कक्षा के लिए न्यूनतम आवश्यक शब्दों की सूची बनाले जिनका अक्षरान्वय उन्हें जानना चाहिए और उन्हें सिखाने का उपक्रम करे। शेष को बालकों की सुविधा पर छोड़ दे। कुछ भी संशय के समय सदैव किसी अच्छे शब्दकोष का सहारा लेना चाहिए। लिपि-परिवर्तन अक्षरान्वय के अभ्यास के लिए उपयुक्त है तथा श्रुतिलेख उसकी परीक्षा करने के लिए। बालकों को अपनी-अपनी निजी अक्षरान्वय-पुस्तिका बनाने के लिए प्रेरित किया जाय, जिनमें वे उन शब्दों को अङ्कित करलें, जिनका अक्षरान्वय वे गलत लिखते हैं।

साधारणतया अक्षरान्वय सीखने का अभ्यास बड़ा नीरस तथा शुष्क प्रतीत होता है। इसे रुचिकर तथा सरस बनाने के लिए कुछ खेल-विधि का समावेश करना चाहिए। शब्द-निर्माण के खेल, अक्षरान्वय-प्रतियोगिताएँ तथा इसी प्रकार के अन्य अभ्यास यदा-कदा प्रयोग करते रहने से मनोरंजन के साथ-साथ यह अरुचिकर कार्य बिना कठिनाई के सम्पन्न हो जाता है। विविध प्रकार की बहिरङ्ग ज्ञानोपार्जन परीक्षाओं का प्रयोग अक्षरान्वय-योग्यता का मापन करने के लिए होने लगा है। इससे

किसी भी व्यक्ति की इस योग्यता का अन्दाज़ सुगमतापूर्वक लगाया जा सकता है। इन परीक्षाओं को भी बालकों के प्रोत्साहनार्थ उनको उनकी प्रगति का विश्वसनीय आभास देने के लिए किया जाय।

अक्षरान्वय की अशुद्धियों के कारण—

अँग्रेज़ी अक्षरान्वय की कठिनाई का विवेचन करते हुए हमने लिपि के अध्वन्यात्मक होने पर विशेष बल दिया था। शब्दाक्षरन्यास अशुद्धियों का बाह्य तथा प्रमुखतम कारण तो यही है। परन्तु इसके अतिरिक्त अनेकों आन्तरिक कारण भी इस प्रकार की अशुद्धियों के लिए उत्तरदायी हो सकते हैं। इन कारणों की विवेचना करते हुए लीटा हालिंगवर्थ ने निम्न तत्वों का निर्देश किया है:—

(१) ज्ञानेन्द्रियों के दोष—दृष्टि, श्रवण तथा गति सम्बन्धी त्रुटियाँ।

(२) बुद्धि-हीनता—बौद्धिक क्षमता का अत्यधिक अभाव।

(३) अशुद्ध प्रत्यय सम्बन्ध जो स्मृति में बाधक होते हैं।

(४) अल्पस्मृति-विस्तार, जिससे अधिक इकाइयों की वस्तु एक साथ स्मरण नहीं रह पाती।

(५) धारणाशक्ति का अभाव, जिससे किसी वस्तु को सीख लेने पर भी उसे स्मृति में अधिक समय तक स्थिर नहीं रख सकते।

(६) शब्दबोध का अभाव, जिससे विना जाने ही उसी ध्वनि का कोई अन्य सार्थक या निरर्थक शब्द लिख दिया जाता है।

(७) गति सम्बन्धी असन्तुलन, जिससे एक प्रकार का आकार बनाने के प्रयास में अन्य आकार बरबस बन जाँय। किसी अक्षर को लिखने के प्रयास में कोई अन्य अक्षर लिख जाय।

(८) लापरवाही या ध्यानहीनता, जिससे सीखने में ही अपूर्णता रह जाती है।

(९) आरम्भिक दूषित संयोग तथा प्रतिवर्त्तनात्मक निरोध, जिससे प्रयत्न करने के उपरान्त भी अशुद्ध रूप की ओर ही प्रतिगमन होता रहता है।

(१०) व्यक्तिगत सनक—कुछ विशेष शब्दों के लिए कुछ पूर्वसंस्कारों के कारण किसी विशेष अशुद्धि का निरन्तर: घटित होते रहना—पुनः पुनः सावधान करने के उपरान्त भी।

(११) स्वभावगत विशेषता—कुछ लोगों की यह स्वभावगत दुर्बलता होती है कि वे किसी कार्य को शुद्ध प्रकार से सम्पन्न करने के लिए उत्सुक नहीं होते। उनकी यह दुर्बलता इस पक्ष में भी प्रकट होती है।

उपचार—

उन सभी कारणों का निवारण पूर्वोक्त युक्तियों द्वारा करना चाहिए। जैसा अन्य प्रकार की अशुद्धियों के शोधन के विषय में कहा गया था, वही यहाँ भी सत्य ठहरता है कि चिकित्सा से निरोध अधिक अच्छा। शुद्ध रूपों के सतत अभ्यास से अशुद्धियों की सम्भावना ही समाप्त कर देनी चाहिए। गलती होने की सम्भावना वाले शब्दों की सूची तैयार कर लेने में यही एक बड़ा लाभ है कि उनका पूर्वाभ्यास करा के इतने दृढ़ संस्कार डाल दे कि अशुद्धि का अवसर ही न उठे। जब कभी अक्षरान्वय की अशुद्धि पकड़ में आए तभी उसके शुद्ध रूप का खूब लिखित अभ्यास करा दिया जाय। इसमें बिलकुल भी कसर न छोड़े।

तुलनात्मक अध्ययनार्थ ग्रन्थ-सूची

Smith Pearse : English Errors in Indian Schools.

French : Common Errors in English—Their Cause, Prevention and Cure.

French : The Teaching of English Abroad, Book III Chapter VIII

Thompson & Wyatt : The Teaching of English in India Chapter X

Ryburn : Suggestions for the Teaching of English in India, Chapter X

V.S. Mathur : Studies in the Teaching of English in Indian Schools, Chapter V
Champion : Lectures on Teaching English in India, Lecture XII
Morris : Teaching of English Abroad, Chapter X
Central Pedagogical Institute, Allahabad, Pamphlet No. 8, Article No. 5
Bhatia : Suggestions for the Teaching of English spelling in India
Godfrey D' Souza : The Teaching of English, Chapters XI & XIII

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) लेखन-कार्य की अशुद्धियों को रोकने तथा सुधारने के उपायों का वर्णन करो।

(२) भारतीय बालक अँग्रेजी-लेखन में किस प्रकार की अशुद्धियाँ करते हैं और इनके क्या कारण हैं ?

(३) अँग्रेजी में अक्षरान्वय क्यों कठिन है ? अपने बालकों को सही अक्षरान्वय कैसे सिखाओगे।

(४) अक्षरान्वय की अशुद्धियों के क्या कारण हैं ? इनका निवारण किस प्रकार सम्भव है ?

अध्याय २०

व्याकरण-शिक्षण

व्याकरण और उसका महत्व—

भाषा का एक महत्वपूर्ण पक्ष है, उसका व्याकरण। व्याकरण का अर्थ है, भाषा-प्रयोग के नियमों की समष्टि। इसके अन्तर्गत शब्द-निर्माण, उनका रूपपरिवर्तन तथा पारस्परिक सम्बन्ध, वाक्य-रचना तथा विविध प्रकार के शब्द-क्रम परिवर्तन, शब्दों, वाक्यांशों तथा वाक्यों का अनेक प्रकार से वर्गीकरण तथा उनके शुद्ध-अशुद्ध रूपों एवं प्रयोगों का शास्त्रीय विवेचन रहता है—यथा पदव्याख्या, वाक्य-विश्लेषण आदि-आदि। भाषा की रचना, उसके संगठन तथा प्रयोग के निर्धारक नियमों, उपनियमों, अपवादों आदि का साङ्गोपाङ्ग विवरण ही व्याकरण है। हर एक भाषा का अपना पृथक व्याकरण होता है, चाहे वह लिखित संहिता के रूप में हो और चाहे केवल व्यावहारिक प्रयोग-मात्र में। जहाँ तक व्याकरण-शिक्षण का प्रश्न है, विशेषज्ञों के बीच जितना घोर अन्तर्विरोध इस विषय में है, उतना भाषा के किसी अन्य पक्ष में नहीं। एक ओर तो यहाँ तक कहा गया है कि केवल व्याकरण ही पढ़ाने की आवश्यकता है, शेष भाषा तो अपने आप आ जाएगी। और दूसरी ओर यह घोषित किया जाता है कि भाषा सीखने के लिए व्याकरण की बिलकुल आवश्यकता ही नहीं। इन दो अतिशयवादी दृष्टिकोणों के बीच अनेकों प्रकार के मध्यवर्ती मत-मतान्तर हैं, जिनका पृथक-पृथक विवेचन यहाँ अनावश्यक है।

व्याकरण के प्रति परम्परावादी दृष्टिकोण—

व्याकरण-शिक्षण की परम्परा बहुत पुरातन है। प्राचीन शिक्षा-प्रणालियों में व्याकरण अत्यन्त प्रतिष्ठित पाठ्य विषय था। मध्यकालीन युगों में और आधुनिक काल में भी प्राचीन भाषाओं का शिक्षण पूर्णतः

व्याकरण के आधार पर ही होता आया है। उन भाषाओं का व्याकरण अत्यन्त सुविकसित, सर्वाङ्गपूर्ण तथा पुस्तकबद्ध है। उसमें अब कोई नवीन परिवर्तन या विकास होने की सम्भावना नहीं। अतः वह स्थिर और अचल है। इस प्रकार की भाषा स्थिति से ऐसे पठन-पाठन के मूल में कुछ अनोखी धारणाएँ क्रियाशील रही हैं, जिनका परिचय यहाँ कर लिया जाय।

व्याकरण ही भाषा का मूलमन्त्र है। बिना उसका ज्ञान प्राप्त किए भाषा पर अधिकार नहीं हो सकता। और बिना भाषा पर अधिकार प्राप्त किए अन्य किसी विषय का ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता; क्योंकि भाषा के ही माध्यम से अन्य विषयों का अध्ययन सम्भव है। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि व्याकरण ही प्रधान पाठ्य विषय है अन्य सब गौण। जहाँ तक भाषा का प्रश्न है व्याकरण उसके नाना बाह्यरूपों का सरलीकरण कतिपय नियमों एवं तर्कपूर्ण श्रेणियों में कर देता है। इन नियमों तथा श्रेणियों का ज्ञान शीघ्रतम प्राप्त करके तब भाषा के अन्य पक्षों तथा अन्य विविध विषयों के अध्ययन में अग्रसर हुआ जाय। अतएव आरम्भिक अवस्था में ही इन नियमों को उदाहरण-सहित कण्ठस्थ कर लिया जाय। किसी वस्तु के आधारभूत नियमों को जान कर ही उस वस्तु पर वास्तविक अधिकार प्राप्त होता है। एक कहावत है—We possess only what we understand अर्थात् केवल वही वस्तु हमारे वास्तविक अधिकार में है, जिसकी हमें पूर्ण जानकारी हो। यही बात भाषा पर अधिकार प्राप्त करने के विषय में भी सत्य है, चाहे वह पुरातन भाषा हो चाहे आधुनिक, चाहे मातृभाषा हो चाहे विदेशी, चाहे राष्ट्रभाषा हो और चाहे प्रादेशिक अतएव इन सभी में इसी उपर्युक्त विधि से व्याकरण के नियमों का ज्ञान सर्वप्रथम प्राप्त करना चाहिए।

व्याकरण-अध्ययन के लाभ—

व्याकरण के विधि-अध्ययन से दो प्रकार के लाभ हैं—

एक तो ज्ञानात्मक और दूसरा अनुशासनात्मक। ज्ञानात्मक लाभ हमें दो रूपों में प्राप्त होगा। एक तो भाषा के मौखिक तथा लिखित पक्षों पर अधिकार-वृद्धि तथा उसके बोध एवं अभिव्यक्ति पक्षों में सुचारुता-वृद्धि के रूप में। और दूसरे हमें भाषा-प्रयोग की अशुद्धियों से मुक्ति देने के रूप में। एक ओर तो व्याकरण द्वारा हम अपने अन्तरतम के भावों के सूक्ष्म प्रकाशन में समर्थ बनकर अपनी मौलिक प्रतिभा के सहारे साहित्य-सृजन तथा रसास्वादन कर सकते हैं और दूसरी ओर त्रुटियों तथा अशुद्धियों से रहित भाषा-प्रयोग में कुशल होकर उनकी आवृत्ति पर आलोचना तथा उनका सुधार करके भाषा-परिष्कार में योग दे सकते हैं। यह तो हुआ व्याकरण का ज्ञानात्मक लाभ। अब अनुशासनात्मक लाभ को लीजिए।

व्याकरण का विषय अत्यन्त सूक्ष्म एवं जटिल है और साथ ही क्लिष्ट भी। इसका नियम निरूपण तथा वर्गीकरण या श्रेणी-विभाजन बड़ा तर्क-युक्त है। पद-पद पर सूक्ष्मातिसूक्ष्म समानताओं एवं असमानताओं का निरीक्षण, तुलनात्मक विवेचन तथा तर्कवितर्क करते रहने का अवसर इसमें प्रचुर मात्रा में है। अतएव इस विषय के अध्ययन से कई प्रकार का बहुमूल्य मानसिक अनुशासन प्राप्त होता है। इसके निरन्तर अध्ययन या मनन से कठिन से कठिन विषय में चित्त को एकाग्र कर लेने का अभ्यास हो जाता है, हर विषय को सूक्ष्मता-पूर्वक गहराई तक समझने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है, निर्णय-शक्ति, निरीक्षण-शक्ति, तर्क-शक्ति तथा स्मृति विशेष रूप से समुन्नत हो जाती हैं। इस प्रकार समुन्नत होने पर ये सभी मानसिक शक्तियाँ तथा संस्कार अन्य पाठ्य विषयों के अध्ययन में तथा जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी सहायक सिद्ध होते हैं। यही व्याकरण का अनुशासनात्मक लाभ है।

इन्हीं सब दृष्टिकोणों से परम्परावादी समुदाय नियमबद्ध व्याकरण के शिक्षण का दृढ़ समर्थक है। अब भी बहुत से स्कूलों में व्याकरण इसी विचार-धारा से प्रभावित होकर पढ़ाई जाती है। इङ्गलैंड की शिक्षा-व्यवस्था में तो परम्परागत स्कूलों का नामकरण ही इसी आधार

पर व्याकरण-पाठशालाएँ (Grammar Schools) अभी तक प्रच-लित हैं। परन्तु इसकी विरोधी विचारधारा भी कुछ कम प्रबल तथा प्रभावशाली नहीं।

व्याकरण के प्रति आधुनिक दृष्टिकोण—

इस दृष्टिकोण का सूत्रपात आधुनिक विदेशी भाषाओं के शिक्षण से हुआ है। इसके अनुसार जीवित भाषा का शिलाधार है, उसका मौखिक रूप न कि लिखित रूप। और भाषा का मौखिक रूप, कतिपय श्रेणियों एवं नियमों के क्षुद्र बन्धनों की सीमा नहीं स्वीकार करता। वह तो सदा गतिशील, विकास-शील, वृद्धिशील तथा परिवर्तनशील शक्ति का रूप है, जिसके पीछे जीवन की सतत् प्रेरणा अन्तर्निहित है। व्याकरण का वास्तविक कार्य है, भाषा का अनुसरण करना न कि उसका पथ-निर्धारण करना। इतिहास इसी तथ्य का साक्षी है। उसके पन्ने उलट कर देख लिए जायँ। मानव अनुभव में भाषा का उदय पहले हुआ है—शताब्दियों तथा युगों पहले। तदुपरान्त धीरे-धीरे व्याकरण ने पदार्पण किया है। जातिगत अनुभव के इतिहास-क्रम का यही चक्र अँग्रेज़ी-शिक्षण में भी घटित किया जाय।

सच तो यह है कि भाषा सीखने के लिए उसके व्याकरण-ज्ञान की आवश्यकता ही नहीं। सूर तथा तुलसी ने हिन्दी-व्याकरण का नाम भी न सुना होगा और न शेक्सपियर तथा मिल्टन ने अँग्रेज़ी-व्याकरण का। फिर भी वे इन भाषाओं के कुशलतम प्रयोग में सिद्धहस्त थे। कभी-कभी तो धुरंधुर साहित्य-रचयिता अत्यन्त हीन वैयाकरण होता है। इतना ही नहीं इन कवियों तथा लेखकों की रचनाओं का अध्ययन तथा सम्यक सौन्दर्य-बोध करने में हमें व्याकरण की तनिक भी सहायता अपेक्षित नहीं। उससे तो उल्टे बाधा ही होगी। इन अनुभवगत तथ्यों का समर्थन ह्वायट तथा रैपियर के परीक्षणों से भी हुआ है, जिनका निष्कर्ष है कि व्याकरण न तो लिखित भाषाओं में अधिकार प्रदान कर पाती है और न

मौखिक भाषा में ही; न उससे बोध-पक्ष की सुचारुता बढ़ती है और न अभिव्यक्ति-पक्ष की।

उधर डा० ब्रिग्स के परीक्षणों से यह भी सिद्ध हो चुका है कि व्याकरण से कोई विशेष मानसिक अनुशासन नहीं होता। किसी भी विषय को ठीक ढँग से पढ़ाकर वही मानसिक संस्कार जनित किये जा सकते हैं। अतः क्यों न उपयोगी तथा रुचिकर विषय ही पढ़ाए जायँ। वस्तुतः व्याकरण तो अति सूक्ष्म, शुष्क, दुरुह तथा अरुचिकर होने के कारण बालकों में चिंतन-क्रिया को भी नहीं प्रेरित कर पाती। बालकों की व्यक्तिगत राय लेने पर व्याकरण सबसे अधिक अरुचिकर विषय ठहराया गया। ऐसे विषय के बलात् शिक्षण से हानि अधिक हो सकती है लाभ कम। इसलिए व्याकरण बिलकुल न पढ़ाई जाय तो सबसे अच्छा है।

परन्तु यदि व्याकरण पढ़ाना ही हो सो सार्वभौमिक तथा प्रयोगिक (Functional)व्याकरण पढ़ाना चाहिए। इस दृष्टि से भाषा प्रयोग (Usaje) तथा वाक्य-संगठन में शब्द-क्रम अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। विशेषकर अँग्रेज़ी भाषा तो शब्द-रूपों की अधिकांश जटिलताओं से इतनी मुक्त है कि उस ओर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। विदेशी भाषा के रूप में अँग्रेज़ी का अध्ययन करने पर व्याकरण दो बातों में सहायता करती है—एक तो लिखित कार्य की अशुद्धियों को रोकने में और दूसरे बड़ी अवस्था के बालकों की भाषा-नियमों-विषयक स्वाभाविक जिज्ञासा को तृप्त करने में। पढ़ाने की विधि नियम रटवाने की नहीं, प्रत्युत बहुसंख्यक पढ़े हुए उदाहरणों की सहायता से स्वयं बालकों द्वारा नियम निकलवाने की होनी चाहिए। यह है, व्याकरण-विषयक नवीन विचार-धारा। विषय पर अपना निर्णय देने के पूर्व हमें व्याकरण पढ़ाने की मुख्य विधियों पर भी दृष्टिपात कर लेना चाहिए।

व्याकरण-शिक्षण की विधियाँ--

भाषा के अन्य पक्षों की ही भाँति व्याकरण के शिक्षणार्थ भी कई विधियों का प्रतिपादन किया गया है—जैसे अगमन-विधि, निगमन-

विधि, कण्ठस्थीकरण, संयोग-विधि, व्यवस्थित-विधि आदि। इनमें से आगमन तथा निगमन विधियाँ मुख्य हैं। इनका विशद् विवेचन हम पृथक रूप से करेंगे। परन्तु कतिपय शब्दों में पहले शेष विधियों का स्पष्टीकरण कर देना उचित है।

कण्ठस्थीकरण-विधि--

कण्ठस्थीकरण की विधि में व्याकरण के समस्त सूत्र कण्ठस्थ करा दिए जाते हैं। थोड़ा-थोड़ा नित्य कण्ठस्थ कराया जाता है। आगे बढ़ते हुए पिछले की सदैव पुनरावृत्ति करते रहते हैं। इस प्रकार समस्त व्याकरण-सूत्र पुञ्ज कण्ठस्थ कर लिया जाता है। इस विधि में सूत्र का वास्तविक अर्थबोध आरम्भ में आवश्यक नहीं समझा जाता। आगे पहुँच जाने पर उसके प्रयोग के व्यवहारिक अवसर आने पर वह स्वयं स्पष्ट हो जाएगा, ऐसा विश्वास किया जाता है। यहाँ तक कि सूत्रों की टीका-टिप्पणी, व्याख्या तथा उदाहरण आदि अक्षरशः रटा रहता है, परन्तु उस सब का तात्पर्य-बोध भी हो ऐसा अनिवार्य नहीं। संस्कृत पाठशालाओं में व्याकरण-शिक्षण की यही विधि प्रचलित हैं। पाँच-छः वर्ष की अवस्था से लेकर १०, ११ वर्ष तक की अवस्था में सिद्धान्त-कौमुदी के सारे सूत्र टीका, व्याख्या, उदाहरण-सहित छात्रों को कण्ठस्थ कराने में उनकी पूर्ण आस्था आज भी ज्यों की त्यों बनी है। इस विधि की निष्कृष्टता स्वयं स्पष्ट है। इसमें अधिक कहने की आवश्यकता ही नहीं।

संयोग तथा व्यवस्थित विधियाँ--

संयोग-विधि के अनुसार व्याकरण का शिक्षण पृथक रूप से किसी सुनियोजित पाठ्यक्रमानुसार करने की कोई आवश्यकता नहीं। अवसरानुकूल भाषा के अध्ययन में जब कोई व्याकरण-गत विचित्रता का उदाहरण आजाय तब यथेष्ट व्याख्या, तुलना, विभेदीकरण, नियम, उपनियम, अपवाद आदि का सहारा लेकर उसे स्पष्ट कर दिया जाय। इस प्रकार जितना व्याकरण भाषा के व्यवहारिक प्रयोग के लिए

आवश्यक है उतना सीख लिया जायगा। शेष अनर्गल भागों में व्यर्थ समय नहीं नष्ट होगा। व्यवस्थित विधि का कथन इसके बिलकुल प्रतिकूल है। उसके अनुसार व्याकरण का नियमित शिक्षण आयोजित पाठ्यक्रमानुसार पृथक विषय के रूप में किया जाय। एक-एक करके सभी आवश्यक व्याकरण के तत्वों का विवेचन, स्पष्टीकरण, अभ्यास तथा प्रयोग हो तभी इस पर बालकों का भी अधिकार हो सकेगा, अन्यथा नहीं। इन दोनों ही दृष्टिकोणों में कुछ सत्य का अंश है। संयोग-विधि बालक की मानसिक तैयारी के उपयुक्त अवसर पर अधिक जोर देती है और व्यवस्थित विधि उनके द्वारा उपार्जित ज्ञान के सुसंगठित होने पर। यह दोनों ही वांच्छनीय स्थितियाँ हैं। बालकों में समुचित जिज्ञासा उत्पन्न करके ही किसी व्याकरण तत्व का शिक्षण किया जाय। परन्तु इससे आरम्भ करने का अर्थ यह नहीं कि यहीं अन्त भी हो जाय। उस व्याकरण तत्व का ज्ञान अन्ततोगत्वा व्यवस्थित ही करना पड़ेगा, चाहे आज करें या कल। अतः स्पष्ट है कि संयोग-विधि तथा व्यवस्थित-विधि वस्तुतः एक ही प्रक्रिया के दो पक्ष हैं। एक तो आरम्भ की ओर संकेत करती है तथा दूसरी अन्त की ओर।

अगमन-विधि--

इस विधि में बहुसंख्यक उदाहरणों का परिचय तथा पूर्वानुभव कराने के पश्चात् उनके आधारभूत नियम का आभास कराया जाता है। बल्कि यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि उदाहरणों का निरन्तर निरीक्षण करते-करते नियम स्वतः चेतना-पटल पर उदय हो जाता है। यह विधि भौतिक विज्ञानों के तथ्यों का ज्ञान उपार्जित करने में तथा उनके क्रिया-व्यापारों की व्याख्या करने में अधिकांशतः प्रयुक्त होती है। गणित तथा तर्कशास्त्र में भी इसको विशिष्ट श्रेय प्राप्त है। व्याकरण पढ़ाने में भी इसी विधि से कार्य में अग्रसर होने का परामर्श दिया गया है, जैसा कि भौतिक विज्ञानों में। इसमें चार उपक्रियाएँ लक्षित की जा सकती हैं—१. तथ्य-संग्रह २. तथ्य-विन्यास ३. नियमानुमान या नियम निरूपण ४. नियम-परीक्षण। यदि इतने चारों पदों सहित व्याकरण में न

भी कार्यान्वित किए जा सकें तो तथ्य-विन्यास कराके नियम-निरूपण तो कराया ही जा सकता है। और इतना ही वस्तुतः व्याकरण में परम आवश्यक भी है।

आगमन-विधि के गुण—

यह विधि विशेष से सामान्य की ओर अग्रसर होती है तथा स्थूल से सूक्ष्म की ओर। बालक के प्रत्यक्ष अनुभव का आधार लेकर चलती है। उसके पूर्व अनुभव का लाभ उठाती है। इस प्रकार अनुभव-जन्य से तर्क-जन्य तथा मनोवैज्ञानिक से तार्किक की ओर अग्रसर होती है जो शिक्षण-सिद्धान्त के सर्वमान्य सूत्र हैं। अभ्यास तथा निरीक्षण को पर्याप्त समय देकर यह बालकों को अत्यन्त स्थायी एवं पुष्ट ज्ञान प्रदान करती है, जिसको वे प्रयोग भी कर सकते हैं। इस विधि की श्रेष्ठता तो इसी से सिद्ध है कि इसका प्रयोग भौतिक-विज्ञानों में होता है। इसी विधि के सहारे उनकी इतनी आशातीत उन्नति हो गई है। बालकों को स्वयं नियम खोज निकालने से आत्मविश्वास तथा एक विशेष प्रकार का सन्तोष होता है, जिससे वे इस विधि से जानी हुई बात कभी भूलते नहीं और साथ ही परिश्रम-पूर्वक कार्य करने में प्रोत्साहित होते हैं।

आगमन-विधि के दोष—

यह विधि बड़ी विलम्बकारिणी है। इसमें व्यर्थ ही अनेकों अनावश्यक बातों का भी समावेश करना पड़ता है, जिनसे नियम-निरूपण में कोई विशेष सहायता तो नहीं मिलती किन्तु वे बातें बालक के पूर्व अनुभव में सम्मिलित हैं। इससे बालक का ध्यान बहुत बँट जाता है। वह नीर-क्षीर-विवेक में असमर्थ, हत-बुद्धि और किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो जाता है। भौतिक विज्ञानों का तथ्य-संग्रह तथा निरीक्षण स्वयं एक आनन्ददायी अभ्यास है। व्याकरण के नीरस तथा शुष्क उपकरण उसकी तुलना नहीं कर सकते। यहाँ तो अमूर्त्त से अमूर्त्त की ओर अग्रसर होने की समस्या है न कि समूर्त्त से अमूर्त्त की ओर। कतिपय सीमित संख्यक उदाहरणों के आधारपर व्यापक नियमों का निरूपण आगमन-विधि का

थोथा अनुकरण है—उसका परिहास है न कि उसका यथोचित अनुसरण। अधिकांश नियम अन्ततोगत्वा शिक्षक को ही देने पड़ते हैं। अतः पूर्वगत उदाहरणों का प्रयोग करना न करना सब बराबर हो जाता है और बालकों को स्वयं ज्ञान का आनन्द भी नहीं प्राप्त हो पाता। इसके विपरीत वे उदाहरणों के विषम जाल से पूर्णतया अभिभूत हो जाते हैं और उनकी दशा अत्यन्त शोचनीय तथा दयनीय हो जाती है।

निगमन-विधि—

कार्य-प्रणाली में निगमन-विधि पूर्वोक्त अगमन-विधि से बिलकुल विपरीत है। यहाँ सर्वप्रथम कोई सामान्य नियम या सूत्र देकर उसे कुछ उदाहरणों द्वारा समर्थित किया जाता है या कुछ प्रयोगात्मक स्वरूपों में घटित किया जाता है। उदाहरणार्थ—ज्योमिति का कोई सामान्य नियम देकर उस पर आधारित कोई अभ्यास हल करवाना या व्याकरण में संज्ञा की परिभाषा देकर उसके उदाहरण प्रस्तुत करना। इस प्रकार की विधि का प्रयोग तर्कशास्त्र में, गणित में, दर्शन तथा नीति-शास्त्र के विवेचन में और साथ ही सौंदर्यालोचन-शास्त्र (Aesthetics) के कुछ अङ्गों में होता है। यों तो प्रायः सभी भौतिक-विज्ञानों में भी पूरक रूप में तो इसका प्रयोग होता ही रहता है।

निगमन विधि के गुण—

पहले नियम का आभास करा देने से आगामी पद के वाञ्छनीय पक्षों की ओर ही ध्यान आकर्षित होता है, अवाञ्छनीय पक्षों की ओर नहीं। समस्तरूप से अंशरूप की ओर अग्रसर होने का यही मुख्य उद्देश्य है जो यहाँ भी पूरा हो जाता है। इससे समय और मानसिक श्रम की बचत होती है। निगमन विधि बहुत मितव्ययशील विधि है। नियम मुख्य वस्तु है तथा उदाहरण गौण—अतः नियम को प्राथमिकता देने में यह विधि न्यायोचित ठहरती है। नियम प्रत्यक्ष रूप से देने पर प्रायोगात्मक अभ्यास के लिए पर्याप्त समय प्राप्त हो जाता है अन्यथा सारा समय नियम-निरूपण में ही खप जाता है। इसके द्वारा प्रदत्त ज्ञान अत्यन्त स्पष्ट तथा

सुनिश्चित होता है, जो एक बार अर्जित हो जाने पर बालकों को आजीवन स्मरण रहता है।

निगमन-विधि के दोष—

इस विधि में शिक्षण-सिद्धान्त के कुछ सर्वमान्य सूत्रों की अवहेलना है, उदाहरणार्थ—स्थूल से सूक्ष्म की ओर अग्रसर होने की या विशेष से सामान्य की ओर अग्रसर होने की या समूर्त से अमूर्त्त की ओर अग्रसर होने की या अनुभव-जन्य से तर्क-जन्य की ओर अग्रसर होने को। व्याकरण के क्षेत्र में निरपेक्ष नियम बहुत थोड़े ही होते हैं, अधिकाँश नियमों के अपवाद होते हैं और इन अपवादों के उप-नियमों के भी अपवाद होते हैं। अँग्रेज़ी में तो ऐसा बहुत है। ऐसी दशा में नियम को प्रारम्भ में अत्यन्त आदेशात्मक रूप से प्रस्तुत करने की क्रिया भ्रमोत्पादन करेगी और अपवाद पर अपवाद उपस्थित होकर विद्यार्थी को बड़ी संशयात्मक मनोवृत्ति वाला बना देंगे। स्पष्टता की अपेक्षा उसमें विचारविभ्रम अधिक जनित होगा। बिना पर्याप्त परिश्रम के दिया गया नियम उतनी ही आसानी से तथा शीघ्रतापूर्वक विस्मृत भी हो जायगा। यह विधि बालक को पका-पकाया देने की भूल करती है।

समाहार—

इस प्रकार इन दोनों विधियों में पर्याप्त त्रुटियाँ हैं। वस्तुतः ये दोनों विधियाँ एकाङ्की ही हैं। पूर्वानुभवकृत तथ्यों से व्यापक नियम निकाल कर ही क्रिया समाप्त नहीं हो जाती। उस नियम का प्रयोग तथा घटन करना भी उसी क्रिया का एक अंग है। अगमन विधि पूर्वार्द्ध को श्रेय देती है और निगमन विधि उत्तरार्द्ध को। अतः पूर्ण विधि संयुक्त अगमन निगमन विधि ही कही जायगी और इसी संयुक्त रूप में इसका प्रयोग करना भी चाहिए।

अन्य विधियाँ—

इन विधियों के अतिरिक्त व्याकरण शिक्षण के लिए दो और भी विधियाँ बताई गई हैं। एक तो तुलनात्मक-विधि, जिसमें मातृभाषा के

व्याकरण से विदेशी भाषा के व्याकरण की तुलना करते हुए पढ़ाने का सुझाव है। और दूसरी अभ्यास-विधि, जिसमें मौखिक तथा लिखित अभ्यास देकर व्याकरण पढ़ाने का संकेत किया गया है—विशेषकर शब्द-परिवर्तन-विधि प्रकार का अभ्यास देकर। उन दोनों की चर्चा हम क्रमशः अनुवाद-विधि तथा शब्दपरिवर्तन-विधि के साथ कर चुके हैं। यह दोनों अत्यन्त आँशिक विधियाँ हैं। अतः इनकी यहाँ अधिक विस्तार-पूर्वक वर्णन न करके व्याकरण-शिक्षण-विषयक कुछ सामान्य निष्कर्षों का उल्लेख करेंगे।

व्याकरण-शिक्षण पर सामान्य निष्कर्ष--

(१) परम्परावादी वर्ग की व्याकरण सम्बन्धी धारणाएँ तथा सिद्धान्त एक-एक करके सब असत्य पाए गये हैं।

(२) उसकी विधियाँ तथा युक्तियाँ मनोविज्ञान तथा शिक्षा की दृष्टि से हीन तथा असन्तोषजनक हैं।

(३) उसके दावेपूर्ण कथन परीक्षणों की कसौटी पर खरे नहीं उतरे।

(४) यदि व्याकरण पढ़ाई जाय तो किसी सांस्कृतिक उद्देश्य या मानसिक अनुशासन के लिए नहीं, वरन् केवल व्यावहारिक उपयोगिता के लिए।

(५) आधुनिक दृष्टिकोण की धारणाएँ तथा सिद्धान्त मातृभाषा के क्षेत्र में तो पूर्णतया मान्य हैं और इस क्षेत्र में उनका पालन यथेष्ट रूप में करना चाहिए।

(६) किन्तु विदेशी भाषा के क्षेत्र में व्याकरण पर कुछ न कुछ ध्यान देना अनिवार्य है। यहाँ व्याकरण को स्वाभाविक परिस्थितियों पर ही पूर्णतया छोड़ देना समुचित नहीं।

(७) नियमों का शिक्षण आगमन-निगमन विधि द्वारा सम्पन्न किया जाय; अपवादों का शिक्षण संयोग विधि द्वारा हो तथा मुहावरों का शिक्षण अभ्यास तथा शब्द-परिवर्तन विधि द्वारा हो। आवश्यकतानुसार

तुलना-विधि का भी आश्रय ले सकते हैं और सभी के अन्त में तो व्यवस्थिति-विधि आएगी ही। परन्तु कण्ठस्थनीकरण तो हेय है, अप्रत्यक्षरूप से परिभाषाओं तथा नियमों के स्मरण कराने में इसका भले ही प्रयोग हो जाय।

(८) अनेक प्रकार के उपयोगी तथा मनोरञ्जक क्रियात्मक अभ्यासों द्वारा व्याकरण का प्रयोगात्मक कार्य सम्पन्न कराया जाय। नियमों तथा परिभाषाओं का स्मरण कराना न्यूनतम मात्रा में किया जाय।

(९) खेल-विधि के रुचिकर उपायों द्वारा व्याकरण-कार्य की आन्तरिक शुष्कता तथा भारपूर्णता को यथाशक्ति सरस तथा आकर्षक बनाया जाय।

(१०) पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग जब तक हो सके टाला जाय और इसे उच्च कक्षाओं में ही प्रयोग किया जाय। निम्न कक्षाओं में पारिभाषिक शब्दों के स्थान पर व्यावहारिक तथा सुविधाजनक समानान्तर शब्दों का प्रयोग ही किया जाय।

तुलनात्मक अध्ययनार्थ ग्रन्थ-सूची

Champion : Lectures on Teaching English in India.
Lecture XI

Thompson & Wyatt : The Teaching of English in India, Chapter VII

Ryburn : Suggestions for the Teaching of English in India, Chapter VII

Morris : The Teaching of English as a Second Language, Chapter V

Stott : Language Teaching in the New Education, Chapter IV

Godfrey D' Souza : The Teaching of English, Chapters IV & X

V. S. Mathur : Studies in the Teaching of English in Indian Schools, Chapter III

Mehta : The Teaching of English in India, Chapter XII

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) व्याकरण-शिक्षण के विवादग्रस्त पक्षों का संक्षिप्त परिचय दो और बताओ कि उनके विषय में तुम्हारा क्या मत है ?

(२) व्याकरण-शिक्षण की कौन-कौन-सी विधियाँ हैं ? उनमें से तुम किसे सर्वोपयुक्त समझते हो और क्यों ?

(३) व्याकरण-शिक्षण की अगमन तथा निगमन विधियों का तुलनात्मक विवेचन करो और बताओ कि इन दोनों का समाहार कैसे सम्भव है ?

षष्ठम खण्ड

नवीनतम विकास-सूत्र

- बेसिक अँग्रेज़ी।
- नवीन प्रणालियों तथा उपकरणों का प्रयोग।
- डाल्टन योजना।
- प्रोजेक्ट पद्धति।
- खेल-विधि।
- सामान्य उपकरण।
- बहुमूल्य यन्त्र-सामग्री।
- मानसिक या बौद्धिक अभ्यास।
- परीक्षा की समस्या।
- बहिरंग अँग्रेज़ी ज्ञान-परीक्षा।
- उपसंहार।

अध्याय २१

बेसिक अँग्रेज़ी

बेसिक अँग्रेज़ी की आवश्यकता--

अँग्रेज़ी भाषा संसार के प्रायः सभी समुन्नता देशों में विचार-विनियय का कार्य दे जाती है; क्योंकि दुनियाँ के प्रायः सभी भूभागों में इसको बोलने तथा समझने वाले लोग मिल जाते हैं। फ्रेञ्च नामक विद्वान का कथन है कि अँग्रेज़ी की माँग और लोक-प्रियता निरन्तर बढ़ती जा रही है। अन्तर्राष्ट्रीय भाषा तो वह है ही, लेकिन वह विश्व-भाषा का रूप भी ग्रहण कर सकती है। इस स्वप्न के पूरा होने में एक बड़ी बाधा है, अँग्रेज़ी की क्लिष्टता। यों तो सभी को अपनी भाषा सबसे सरल तथा अन्य भाषाएँ क्लिष्ट प्रतीत होती हैं। परन्तु अँग्रेज़ी की क्लिष्टता उसके विश्लेषणात्मक भाषा होने से तथा उसके विस्तृत शब्द-भण्डार के कारण बहुत बढ़ जाती है। अन्य शब्दों के आधार पर नए शब्द कम बन पाते हैं, अतः नित्य नए शब्द जुड़ते चले जा रहे हैं। और अँग्रेज़ी का शब्द-भण्डार अपरिमेय होता जा रहा है। इसमें लगभग ढाई लाख शब्द तो अभी विद्यामान हैं और निरन्तर गति से यह भण्डार बढ़ता ही जाता है। अतएव अँग्रेज़ी को सरल बनाने के लिए उसके शब्दों की संख्या सीमित करने के प्रयास किए गए हैं। कुछ लोगों ने शब्द-संख्या २५०० निर्धारित की तथा कुछ ने १५००। परन्तु इन प्रयासों में से सबसे अधिक प्रसिद्ध तथा सराहनीय प्रयास हुआ है C. K. Ogden महाशय का, जिन्होंने बेसिक अँग्रेज़ी नामक एक सरलकृत भाषा-प्रणाली ८५० अँग्रेज़ी शब्दों के योग से निर्मित की।

बेसिक अँग्रेज़ी के मूल-तत्त्व—

इस प्रकार स्पष्ट है कि बेसिक अँग्रेज़ी C. K. Ogden द्वारा रचित अँग्रेज़ी भाषा का एक लघु-संस्करण है तथा महात्मा गाँधी द्वारा

चलाई गई बेसिक शिक्षा-प्रणाली से यह सर्वथा असम्बद्ध है। इस बेसिक अँग्रेज़ी के ८५० शब्दों का वर्गीकरण निम्नाङ्कित है:—

६०० संज्ञाएँ—जिनमें से ४०० सामान्य वस्तुओं (Substantives) के नाम हैं और २०० चित्रात्मक वस्तुओं के।

१५० विशेषण (Qualifiers)।

६१ क्रियाविशेषण (Modifiers)

२१ अव्यय (Directives)

१८ क्रियाएँ (Operators)

---

८५० कुलयोग

इन शब्दों के चयन में ओगडेन ने दो बातों पर विशेष ध्यान दिया। एक तो यह कि कौन-कौन से भाव साधारणतया प्रकट करने पड़ते हैं? और दूसरे यह कि उन भावों को प्रकट करने के लिए कितने न्यूनतम शब्दों की आवश्यकता है? इस प्रकार छँटनी करने पर उसे केवल १८ क्रियापद आवश्यक प्रतीत हुए जो निम्नाङ्कित हैं—come; get, give, go, keep, let, make, put, seem, take, be do, have, say, see, send, may, will. इन्हें विभिन्न अव्ययों के साथ जोड़ने पर स्वयंसिद्ध विश्लेषणात्मक समूह (Selfevident analytic Combinations) बन जाते हैं। इस प्रकार कुछ आधारभूत वस्तुओं के वाचक तथा समय एवं स्थान और कार्यकारण के कुछ आधारभूत सम्बन्धों के वाचक शब्दों के द्वारा शब्द-संख्या घटाने में बहुत सहायता मिली। ४०० संज्ञाओं का प्रयोग क्रियापदों की भाँति भी हो सकता है और उनसे 'er' 'ing' तथा 'ed' में अन्त होने वाले रूप बनाए जा सकते हैं। सभी विशेषणों को 'ly' प्रत्यय जोड़ कर क्रिया-विशेषण की भांति प्रयोग किया जा सकता है।

इसके उपरान्त ओगडेन ने आक्सफोर्ड शब्दकोष के प्रत्येक शब्द का भाव इन्हीं ८५० शब्दों में व्यक्त करके देखा और सफलतापूर्वक कार्य सम्पन्न कर लिया। इन्हीं ८५० शब्दों पर आधारित भाषा को ओगडेन ने आज से ३०-३५ वर्ष पूर्व बेसिक अँग्रेज़ी कोष में संकलित किया और

इसके प्रचार एवं शिक्षण के लिए परिचायक, पाठ्य तथा शिक्षणविधि-ग्रन्थों की रचना की। वस्तुतः ओगडेन का यह कार्य बड़ा-साहसपूर्ण, सुव्यवस्थित तथा सराहनीय था। कई देशों में इसके चमत्कारिक आकर्षण से परीक्षणात्मक प्रयोग हुए। परन्तु इन प्रयोगों का अनुभव एवं निष्कर्ष उतना आशाजनक नहीं रहा, जितना इसके संरक्षकों तथा अभिभावकों का विश्वासपूर्ण अनुमान था। कुछ देशों में इस सम्बन्ध में जांच-पड़ताल तथा छान-बीन करने के लिए आयोग नियुक्त हुआ। उसके द्वारा संग्रहीत मत भी कोई बहुत उत्साहवर्द्धक नहीं सिद्ध हुए। भारत में भी इसी प्रकार की एक कमेटी नियुक्त हुई थी, उसकी भी राय इसके पक्ष में नहीं हुई।

बेसिक अँग्रेज़ी के दोष—

केवल शब्द-संख्या घटा देने से अँग्रेज़ी भाषा की सब कठिनाइयाँ दूर नहीं हो जातीं। अनियमित उच्चारण तथा शब्दाक्षरन्यास ज्यों के त्यों बने हैं, उदाहारणार्थ—do तथा go। इसके अतिरिक्त वाक्य-रचना की कठिनाई तो घटने के बजाय कुछ बढ़ ही गई है। हर एक बात को बुरी तरह से घुमा-फिरा कर कहना पड़ता है। मरने के लिए to die के स्थान पर to take last breath कहना पड़ता है। मुहावरे तथा स्वयं-सिद्ध विश्लेषणात्मक समूहों को स्मरण रखना एक शब्द स्मरण रखने से अधिक कठिन है, विशेषकर अत्यधिक समानता के कारण भी। कुछ समूह भले ही स्वयं-सिद्ध कहे जा सकें किन्तु शेष तो अपने आप व्यञ्जित नहीं हो पाते। बेसिक अँग्रेज़ी सीखने पर भी वास्तविक अँग्रेज़ी तो अनसीखी ही रह जाती है। उसका समस्त साहित्य हमारी समझ से परे रहता है। अपने उद्देश्यों की पूर्ति हम नहीं कर पाते। फिर अपने बोलने तथा लिखने के शब्द हम भले ही सीमित रख लें; परंतु दूसरे लोग तो पूरे वृहत्त शब्द-भण्डार का ही प्रयोग करेंगे—अतः उनकी बात समझने के लिए हमें असली अँग्रेजी ही जाननी पड़ेगी। इन्हीं सब कठिनाइयों के कारण बेसिक अँग्रेज़ी को व्यापक मान्यता नहीं प्राप्त हो सकी है।

तुलनात्मक अध्ययनार्थ ग्रन्थ-सूची

C. K. Ogden : Basic English

Myers : Basic and the Teaching of English in India

Thompson & Wyatt : The Teaching of English in India, Chapter IV

Morris : The Teaching of English as a Second Language, Chapter IV

Godfrey D' Souza : The Teaching of English, Chapter XIV

Govt. of India, Ministry of Education Pamphlet containing the Report of Experiments with Basic English in India.

अभ्यासार्थ प्रश्न

बेसिक अँग्रेजी क्या है ? इसकी क्या आवश्यकता है ? इसके मूलतत्त्वों का वर्णन करो और इसकी त्रुटियाँ बताओ ।

अध्याय २२

नवीन प्रणालियों तथा उपकरणों का प्रयोग

शिक्षा में नये विकास---

वर्तमान समय में शिक्षाजगत के अन्तर्गत नित्य नवीन प्रणालियाँ, पद्धतियाँ, तन्त्रविधियाँ, युक्तियाँ तथा उपकरण आविष्कृत तथा प्रयुक्त किए जा रहे हैं। विदेशी भाषा-शिक्षण में भी इनकी कमी नहीं है। इन सभी का मुख्य ध्येय है, विषय को रुचिकर बना कर ऐसी प्रेरणा तथा प्रोत्साहन प्रदान करना कि बालक खूब एकाग्रचित्त होकर यथाशक्ति परिश्रमपूर्वक विषय को सीख ले। ऐसा होने से निश्चय ही बालक को सफलता मिलेगी, जो स्वयं उत्साह का स्रोत है। इस प्रकार अँग्रेज़ी जैसा कठिन विषय भी बालकों को अत्यधिक सुबोध तथा चित्ताकर्षक बन जायगा। इन सब साधनों को जुटाने या उनके प्रयोग का प्रबन्ध करने में जो धन, श्रम, या समय व्यय करना पड़ता है उसका प्रतिमूल्य विषय के प्रति विद्यार्थियों की इस परिवर्तित मनोवृत्ति अथवा अनुकूल प्रतिक्रिया के रूप में कई गुना चुक जाता है। अतएव इनके एकत्र करने, सम्हाल कर रखने, विधि-पूर्वक प्रयुक्त करने आदि में आवश्यक प्रशिक्षण प्राप्त करने या दिलाने, तथा इसमें धन व्यय करने के प्रश्न पर अधिक आगा-पीछा नहीं करना चाहिए। शिक्षेण-कार्य की सुचारुता के लिए यह सब नितान्त आवश्यक है।

इन सभी शिक्षेण साधनों के विशद् विवेचन के लिये उनमें से प्रत्येक का प्रयोजन, क्रियाविधि, प्रकार, उपयोग-क्षेत्र, लाभ-हानि, सम्भव अड़चनें, सफलता के उपाय, परीक्षणात्मक अनुभव तथा शिक्षकोपयोगी परामर्श आदि का विस्तार-पूर्वक अङ्कन होना चाहिए। इतना यहाँ सम्भव नहीं। अतः केवल कुछ मुख्य-मुख्य साधनों का अत्यन्त

संक्षिप्त उल्लेख-मात्र किया जायगा। जिन्हें इनकी विस्तृत जानकारी प्राप्त करनी हो वे इस विषय के कुछ पृथक ग्रन्थों का अवलोकन करें तभी उनकी जिज्ञासा तृप्त हो सकेगी। अब तक के परीक्षणात्मक अनुभव से विदेशी भाषा-शिक्षण में तीन नवीन प्रणालियाँ विशेष उपयोगी सिद्ध हुई हैं—(१) डाल्टन योजना (२) प्रोजेक्ट पद्धति तथा (३) खेल-विधि। भारतवर्ष में भी अँग्रेज़ी-शिक्षण में इनका प्रयोग रायबर्न जैसे अग्रणी कार्यकर्त्ताओं ने किया है। इनके अनुभवों का यथास्थान उल्लेख किया जाएगा।

डाल्टन-योजना—

सामूहिक कक्षा-शिक्षण में बालकों की व्यक्तिगत कठिनाइयों तथा समस्याओं की अधिक परवाह न करके "औसत विद्यार्थी" को ही ध्यान में रखते हुए कार्य सम्पन्न किया जाता है। कक्षा-कार्य सभी के लिए एक ही गति से अग्रसर होता है। इसके फलस्वरूप प्रतिभा-सम्पन्न बालक तो आगे बढ़ने के लिए उतावले तथा बेचैन रहते हैं और न बढ़ पाने पर कुछ शैतानी करने लगते हैं। मन्दगति बालक पिछड़ जाते हैं और साथ चलने में निराश होकर पढ़ने की अपेक्षा किसी अन्य क्रिया में समय व्यतीत करते हैं। इन सब अवाञ्छनीय परिस्थितियों से छुटकारा पाने के लिए कुमारी हेलेन पार्क हर्स्ट ने अमेरिका के डाल्टन नामक नगर में ठेके पर कक्षा-कार्य कराने की एक नवीन शिक्षा-पद्धति चलाई जिसे डाल्टन-योजना कहते हैं।

इस पद्धति की क्रिया-विधि यह है कि शिक्षक कुछ सामान्य परामर्श आरम्भ में देकर एक निश्चित अवधि तक के लिए कार्य सबको सौंप देता है। कार्य की रूपरेखा भली-भाँति सबको सामान्य परामर्श में ही समझा दी जाती है। प्रश्नों या कार्य-सूची के साथ-साथ सहायक ग्रन्थों आदि की सूची भी दी रहती है। कक्षा-पुस्तकालय में ये पुस्तकें प्राप्य रहती हैं और शिक्षक हर समय सहायतार्थ प्रस्तुत रहता है। हर एक बालक अपनी गति के अनुसार कार्य सम्पन्न करके अगला कार्य-खण्ड

लेता और लौटाता रहता है। प्रत्येक बालक की व्यक्तिगत प्रगति के सूचक ग्राफ-कार्ड भी कक्षा में लगे रहते हैं।

अँग्रेज़ी-शिक्षण में इस पद्धति का प्रयोग रायबर्न महोदय ने व्याकरण-शिक्षण तथा पाठ्य पुस्तक-शिक्षण में किया है और इसे बहुत उपयोगी भी पाया है। इस पद्धति को अँग्रेज़ी के अन्य-पक्षों के शिक्षण में भी सुगमता-पूर्वक कार्यान्वित किया जा सकता है। शब्दार्थज्ञान तथा प्रयोग एवं उच्चारण-सम्बन्धी, अनुवाद-सम्बन्धी, निबन्ध-लेखन-सम्बन्धी तथा सहायक पुस्तक एवं अपठित-सम्बन्धी कार्य-पत्र सहज ही बनाए जा सकते हैं और बालकों से उनके अनुसार कार्य सम्पन्न कराया जा सकता है। यह अवश्य है कि कक्षा की प्रचलित दिनचर्या को बदलना पड़ेगा और कक्षा-पुस्तका-लयों को अधिक समृद्ध बनाना पड़ेगा।

प्रोजेक्ट-पद्धति—

इस पद्धति के प्रवर्त्तक हैं—डीवी तथा किल्पैट्रिक नामक अमेरिकन शिक्षा-दार्शनिक। इन महाशयों को कक्षा विषयों को पृथक्-पृथक् विद्याओं के रूप में पढ़ाना बड़ा असंगत तथा अनुपयोगी प्रतीत हुआ। अतएव प्रचलित शिक्षा-प्रणाली की आलोचना करते हुए इन्होंने इस नवीन पद्धति का सुझाव दिया। "प्रोजेक्ट" का शाब्दिक अर्थ है, स्वाभाविक परिस्थितियों में सम्पन्न किया गया प्रयोजन-पूर्णकार्य"। इन्हीं प्रयोजन-पूर्ण कार्यों को एक के बाद एक सम्पन्न करते हुए आवश्यक ज्ञानोपार्जन या विद्योपार्जन अग्रसर होता रहता है। एक ही प्रयोजनपूर्ण-कार्य से संयुक्त होकर सभी कक्षा-विषयों का अध्ययन होता चलता है। उदाहरणार्थ, कक्षा में कोई उत्सव मनाने के कार्य से संयुक्त करके प्रायः सभी विषयों को पढ़ाने का क्षेत्र निकल आता है। उसी में विदेशी भाषा के विविध पक्षों का अध्ययन भी हो जाता है। इसी प्रकार से अनेकों प्रयोजनपूर्ण-कार्य सम्पन्न किये जाते हैं। परन्तु वे सदैव बालकों के जीवन की वास्तविक आवश्यकताओं पर ही आधारित होते हैं और स्वयं बालकगण ही यह निर्णय करते हैं कि अब कौन सा कार्य लिया जायगा। शिक्षक

तो केवल परामर्शदाता या पथप्रदर्शक-मात्र के रूप में उपस्थित रहता है।

इस पद्धति को कार्यान्वित करने में कुछ सुनिश्चित अवस्थाएँ लक्षित की जा सकती हैं जो निम्नाङ्कित हैं:—

(१) प्रयोजन-निरूपण तथा प्रोजेक्ट का चुनाव—यह सामूहिक वार्तालाप द्वारा बहुमत से तय किया जाता है।

(२) नियोजन तथा कार्यक्रम-निर्माण—यह भी अधिकांशतः बालकगण सम्पन्न करते हैं; परन्तु शिक्षक की अनुमति तथा अनुमोदन आवश्यक है।

(३) योजनानुसार कार्य तथा सामग्री-संकलन—इस पद्धति का मुख्य सोपान यही है कि इसमें सर्वतोमुखी गहन अध्ययन-निरीक्षण तथा सचेतन-अनुभव एवं अभ्यास कराया जाय। समस्त कार्य समन्वित तथा संयुक्त-रूप में सम्पन्न कराते हुए भी अत्यन्त सुव्यवस्थित तथा क्रमविन्यास-युक्त ढँग से अग्रसर होने दे और समूह के अन्तर्गत हर एक विद्यार्थी के कार्य का सूक्ष्म निरीक्षण होता रहे।

(४) कार्यसमीक्षा तथा मूल्याङ्कन—इस अवस्था में प्रयोजन सिद्धि तथा कार्य की सन्तोषप्रदता आदि के विषय में निर्णय किया जाता है। हर एक पक्ष का विश्लेषण संश्लेषण करते हुए आगे के लिए शिक्षाप्रद अनुभव संग्रहीत करके यह पद समाप्त होता है।

इस पद्धति का प्रयोग करने पर अँग्रेज़ी पठन, लेखन, भाषण आदि की प्रक्रियाओं से सम्बद्ध अनेक प्रकार के अभ्यासों का अवसर सहज ही निकल आता है। किन्तु इस पद्धति के कार्यान्वित करने के लिए पूरी शिक्षा-व्यवस्था में ही आमूल परिवर्तन करना पड़ता है, निर्धारित पाठ्यक्रम का स्वरूप बिलकुल बदल देना होगा जो हमारे यहाँ किसी एक शिक्षक या संस्था के वश की बात नहीं। परन्तु कुछ उपयोगी प्रकार के प्रोजेक्ट फिर भी अपनाए जा सकते हैं। उदाहरणार्थ, अँग्रेजी भाषा की कक्षा-पत्रिका या स्कूल-पत्रिका प्रकाशित करने का प्रोजेक्ट अथवा वार्षिकोत्सव में कोई अँग्रेज़ी ड्रामा, कथोपकथन या इसी प्रकार के अन्य

कार्यक्रम प्रस्तुत करने के प्रोजेक्ट आदि। इनके द्वारा दीर्घकालीन बहुमुखी अभ्यास कार्यक्रम अँग्रेजी विषय से ही सम्बन्धित करके चलाया जा सकता है।

खेल-विधि—

जैसा कि नाम से ही प्रकट है, यह विधि शिक्षण-कार्य में खेलतत्त्व का समावेश करती है। प्राचीन काल से ही खेल, कार्य तथा श्रम का अन्तर क्रियाओं के मध्य चला आ रहा है। खेल का प्रधान लक्षण है, स्वतन्त्रता तथा उत्फुल्लता। इसे सभी लोग पसन्द करते हैं और बालकगण तो विशेषकर इसमें अनुरक्त रहते हैं। मानव-जीवन में इसकी उपयोगिता भी कम नहीं है। विविध भाँति से खेल शक्ति बाहुल्य के व्यय, शक्ति-क्षय की पूर्त्ति, आगामी जीवन-चर्या के पूर्वाभिनय, विगत-कालीन जातिगत अनुभवों की पुनरावृत्ति, अनुकरण, मनोरञ्जन, रेचन तथा उदात्तीकरण में सहायक सिद्ध होता है और व्यक्तित्व के समुचित विकास में भी। अतएव इस महत्वपूर्ण तत्त्व को शिक्षा-कार्य में स्थान देने का भी प्रयत्न हुआ है। सर्वप्रथम फ्रोबेल महोदय ने अपनी किन्डरगार्टन शिक्षा-प्रणाली में खेल द्वारा शिक्षा देने की क्रिया सम्पन्न की। यह अल्पायु बालकों के लिए ही प्रयुक्त हुई। तदुपरान्त खेल-विधि को अनेक रूपों में बड़ी अवस्था के बालकों की शिक्षा में भी प्रयोग करने के रचनात्मक सुझाव काल्डवेल कुक महोदय ने अपने खेल-विधि (Playway) नामक ग्रन्थ में दिए हैं।

अँग्रेज़ी-शिक्षण के क्षेत्र में इस विधि पर आधारित अनेकों प्रकार के अभ्यास प्रचलित हैं। इनमें से मुख्य निम्नाङ्कित हैं:—

(१) प्रश्नोत्तर प्रतियोगिता—दो-दो व्यक्तियों के जोड़े बनाकर या कक्षा को दो बड़े समूहों में विभक्त करके जिनमें से एक प्रश्न करे तो दूसरा उत्तर दे।

(२) शब्द-निर्माण—एक-एक अक्षर एक-एक विद्यार्थीसे जुड़वा कर।

(३) वाक्य-निर्माण—एक-एक शब्द एक-एक विद्यार्थी से जुड़वा कर।

(४) कथा-निर्माण—एक-एक वाक्य एक-एक विद्यार्थी से जुड़वा कर।

(५) आत्म वर्णित वस्तु की पहचान—उत्तम पुरुष में किसी वस्तु का संक्षिप्त वर्णन सुनकर उसका नाम बताना।

(६) शब्द-प्रयोग या शब्दार्थ-प्रतियोगिता—कक्षा को दो समूहों में विभक्त करके।

(७) अन्त्याक्षरी—शब्द के अन्तिम अक्षर से आरम्भ होने वाला नवीन शब्द देने की प्रतियोगिता।

(८) शब्द-सूची-पुनरावृत्ति—एक साथ कई शब्द देकर उनकी सही अक्षर-क्रम सहित पुनरावृत्ति कराना।

(९) शब्दपूर्त्ति—सुने हुए या पढ़े हुए वाक्य में कोई शब्द हटा देने पर उसे स्मृति द्वारा बताना।

(१०) कण्ठाग्र कृत सामग्री सुनाना—गद्य अथवा पद्य।

(११) नाटकीय वार्तालाप या कथोपकथन।

(१२) कहो और करो विधि के अभ्यास—पुरुष बदल-बदल कर कभी उत्तम, कभी मध्यम तथा कभी अन्य में।

(१३) अभिनय—किसी एक प्राकारिक पात्र का या सामूहिक रूप से नाटक।

(१४) लघुजन व्याख्यान।

(१५) हास्य-इन्टरव्यू—कक्षा-प्रवेश या पद-नियुक्ति सम्बन्धी।

(१६) हास्य-अभियोग-निर्णय या हास्य-निर्वाचन, या हास्य-संसद-पूर्वाभ्यासकृत भाषणों द्वारा।

इसी प्रकार के कितने ही नए-नए अभ्यास अँग्रेज़ी-शिक्षक स्वयं सोचकर प्रयोग कर सकता है। इन सभी से कार्य का भार या उसकी नीरसता कम हो जाती है और बालकगण उत्साह-पूर्वक खेल ही खेल

में एक दूसरे से सीखने व उनको सिखाने में प्रवृत्त होते हैं। परन्तु यह कार्य अत्यन्त सुव्यवस्थित तथा नियमित ढंग से सम्पन्न किया जाय। उसे खिलवाड़ के स्तर पर न पतित होने दिया जाय अन्यथा उससे लाभ के स्थान पर हानि ही होगी।

सामान्य उपकरण—

इन विधियों के अतिरिक्त कुछ उपयोगी उपकरण भी विदेशी भाषा की कक्षा में समुचित वातावरण सृजन करने में अत्यन्त सहायक सिद्ध होते हैं। ऐसे उपकरण दो प्रकार से प्रयुक्त किए जाते हैं—एक तो स्थिर रूप में और दूसरे परिवर्तनीय रूप में। परिवर्तनीय ढँग स्थिर की अपेक्षाकृत अधिक वाञ्छनीय है। मुख्य उपकरण निम्नाङ्कित हैं :—

(१) समाचार-पत्रों के शीर्षक ।

(२) प्रसिद्ध स्थानों या ऐतिहासिक इमारतों के चित्र।

(३) प्रसिद्ध पुरुषों तथा स्त्रियों के चित्र ।

(४) विविध प्रकार के चित्रित विज्ञापन ।

(५) आकर्षक चित्रकथाएँ—गम्भीर तथा विनोद-पूर्ण ।

(६) व्ययचित्र।

(७) पहेली-पत्र।

(८) विदेशी हस्तलेख के नमूने—टिप्पणी-सहित।

(९) विदेशी और देशी तुलनात्मक सूचनाओं के व्यवहारिक चार्ट यथा—पासपोर्ट, विनिमय दर, दूरियाँ, भ्रमण-मार्ग, किराये के दर आदि आदि ।

बहुमूल्य यन्त्र-सामग्री—

ये सब तो सस्ते प्रकार की सामग्री है जो सभी कक्षाओं में नित्य नियमित रूप से प्रयुक्त होती रहे या अदल बदल कर लगाई जाती रहे। इसके अतिरिक्त कुछ अधिक बहुमूल्य प्रकार की यन्त्रसामग्री भी अँग्रेज़ी-शिक्षण में प्रयोग की जा सकती है। परन्तु उसमें विशेषज्ञ, प्रयोगकर्त्ता तथा

विशेष कक्षा-प्रबन्ध आवश्यक है। अतएव वह यदाकदा ही प्रयुक्त हो सकेगी। यह यन्त्र सामग्री मुख्यतः निम्नाङ्कित है :—

(१) मैजिक लैन्टर्न तथा स्लाइड।

(२) प्रोजेक्टर तथा चलचित्र—मौन अथवा ध्वनित।

(३) ग्रामोफोन तथा रेकार्ड।

(४) लिंग्वाफोन—उच्चारण तथा पठन-क्रिया के लिए।

(५) रेडियो।

(६) टेलीविज़न—यह अभी भारत में अप्राप्य है।

अब अनेकों शिक्षोपयोगी स्लाइड, चलचित्र, रेकार्ड आदि निर्मित होने लगे हैं, जिनमें से बहुत सावधानी-पूर्वक चयन करना चाहिए। अँग्रेज़ी या विदेशी भाषा सम्बन्धी निम्नाङ्कित प्रकार के चलचित्र अधिक उपयोगी सिद्ध होंगे—(१) ध्वनि-शास्त्र सम्बन्धी (२) भाषण-ध्वनि सम्बन्धी (३) बाल-गीत (४) दैनिक जीवन के चित्र (५) सार्वभौमिक कथाओं या पशु कथाओं-सम्बन्धी (६) महाकाव्यों या प्रसिद्ध नाटकों के दृश्य (७) टिप्पणी सहित वर्णनात्मक चित्र (८) वर्त्तमान घटनाओं तथा महत्त्वपूर्ण कार्यों-सम्बन्धी चल-चित्र।

इसी भाँति ग्रामोफोन के रेकार्डों का चयन करने में विभिन्नता तथा रोचकता का विशेष ध्यान रक्खा जाय। जहाँ तक हो सके निम्न सभी प्रकार के रेकार्ड लिए जायँ—(१) पारिवारिक स्थितियों सम्बन्धी—यथार्थवादी (२) बालकों द्वारा अपने खेल-कूद का वर्णन करने वाले (३) विभिन्न अवस्था के लोगों की बातचीत तथा बोली का परिचय देने वाले जैसे छोटे बच्चों, बालकों, बालिकाओं तथा सयाने स्त्री-पुरुषों आदि की। (४) सभी प्रकार के भावावेश का चित्रण करने वाले जैसे—योजना अथवा सलाह करते हुए बालकगण, झगड़ा करती हुई स्त्रियाँ, शोकार्त्त विलाप, मालिक की घुड़की-धमकी, भयभीत बालिकाओं की बोली अथवा चिन्तातुर जन की वाणी इत्यादि।

उपकरण-प्रयोग के नियम—

इन बहुमूल्य उपकरणों के समुचित प्रयोग के लिए निम्न बातों पर

ध्यान देना आवश्यक है—(१) समुचित आरम्भिक वस्तु नियोजन—इससे अवसर की प्रतिष्ठा भी रक्षित रहती है और समय की भी बचत होती है।

(२) श्रोता या दर्शकगण का चयन तथा उन्मुखीकरण—इससे उपयोगिता तथा प्रभावोत्पादकता की वृद्धि होती है।

(३) प्रयोग करने का वैशेषिक प्रशिक्षण—इससे उपकरणों तथा यन्त्रों आदि के टूटने-फूटने या खराब होने का भय नहीं रहता।

(४) ठीक प्रकार का कमरा या हाल, जिसका ध्वनि-गुंजन ठीक हो—इससे प्रभावोत्पादकता बढ़ती है और थकान या नीरसता दूर रहती है।

(५) पूर्व तैय्यारी कार्य—वास्तविक उपकरण प्रयोग के पहले ही बालकों को कुछ उन्मुख करने तथा जिज्ञासा बनाने के लिए पठन-क्रिया, शिक्षक के भाषण, बाह्य अभ्यागत के व्याख्यान, दूसरे विषय में किए गये कार्य बाह्य क्रियाओं अथवा पूर्व प्रदत्त प्रश्नों द्वारा ।

(६) अनुसरण-कार्य—उपकरण प्रयोग के उपरान्त शिक्षक द्वारा टीका-टिप्पणी, या पूरक भाषण द्वारा, प्रश्न सूची द्वारा, साराँश-कथन द्वारा, सामूहिक विवेचन द्वारा अथवा अनुकरणात्मक या सृजनात्मक लिखित भाषण कार्य या अभिनय कार्य आदि के रूप में।

पूर्व तैयारी कार्य तथा अनुसरण कार्य वैसे तो सभी उपर्युक्त बहुमूल्य उपकरणों में आवश्यक है परन्तु चलचित्रों तथा रेडियो कार्यक्रम के सम्बन्ध में विशेषकर उपयोगी सिद्ध होते हैं।

मानसिक या बौद्धिक अभ्यास—

इन स्थूल अथवा समूर्त यन्त्रों तथा उपकरणों के अतिरिक्त कुछ मानसिक या बौद्धिक अभ्यास भी अँग्रेज़ी-शिक्षण-कार्य में प्रयुक्त किए जा सकते हैं। इनके कुछ उदाहरण ये हैं—

(१) पुनर्विन्यास के अभ्यास—अक्षरों, शब्दों, वाक्याँशों या वाक्य में।

(२) छाँटने के अभ्यास—सर्वोपयुक्त शब्दों या विशेषणों का छाँटना।

(३) पूर्तिकरण के अभ्यास—स्मृति या कल्पना द्वारा शब्द सोचकर वाक्य के रिक्त-स्थानों की पूर्ति, शब्दाक्षर पूर्ति, तुलनापूर्ति आदि।

(४) शब्दान्तरण के अभ्यास—वाक्य के शब्द-विशेष का परिवर्तन करके।

उपयोगी भाषा-आदतें—

इस प्रकार के मानसिक या बौद्धिक अभ्यासों द्वारा अँग्रेज़ी-शिक्षण से सम्बन्धित निम्न पाँच उपयोगी आदतें निर्मित होती हैं, जिन्हें बैलर्ड ने बहुत श्रेय दिया है :—

(१) शब्द-कोष की आदत (लघु ऑक्सफोर्ड शब्द-कोष बालकों के लिए सर्वोत्तम है)

(२) संशोधन की आदत (लिखित कार्य में अधिक आवश्यक)

(३) दोहराने की आदत (पूर्वकृत लिखित भाषा कार्य का एक दो महिने पश्चात् स्वयं ही दोहरा कर ठीक करना)

(४) अंकन-पुस्तिका या संकलन-पुस्तिका की आदत (हर एक बालक की अलग पुस्तिका)

(५) प्रश्न करने की आदत (अपनी शंकाओं का समाधान करने के लिए)

कहा भी गया है कि बालक के प्रश्न करने से पढ़ाने की सफलता प्रकट होती है।

साराँश यह है कि इस सभी उपकरण-सामग्री तथा युक्ति-समूह का प्रयोग करके अथवा नवीन शिक्षा-पद्धतियों का अनुसरण करके अँग्रेज़ी-जैसे कुख्यात पाठ्य विषय को भी लोकप्रिय बनाया जा

सकता है। यही कर दिखाने में अँग्रेज़ी-शिक्षक की व्यवसाय-निपुणता तथा कला-कुशलता है।

तुलनात्मक अध्ययनार्थ ग्रन्थ-सूची

John Eades	:	The Dalton English Course
Helen Parkhurst	:	Dalton Plan
Caldwell Cook	:	The Play Way
French	:	The Teaching of English Abroad, Book I, Chapter XI ; Book II, Chapters VIII, IX, X & XI; Book III, Chapter III
Ryburn	:	Suggestions for the Teaching of English in India, Chapters VI, VII, VIII, IX & XII
Thompson & Wyatt	:	The Teaching of English in India, Chapter VI
Stott	:	Language Teaching in the New Education, Chapter V
Bhatia	:	Suggestions for the Teaching of English Spelling in India, Chapter XXIII
The Incorporated Association of Assistant Masters in Secondary Schools	:	The Teaching of Modern Languages, Chapter VI

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) अँग्रेज़ी-शिक्षण में किन नवीन शिक्षा-प्रणालियों को स्थान दिया जा सकता है ? इससे क्या लाभ है ?

(२) अँग्रेज़ी विषय को हृदयग्राही तथा सरस बनाने के लिए तुम किन सामान्य तथा यन्त्रात्मक उपकरणों का प्रयोग करोगे ? इनका पूर्ण लाभ उठाने के लिए किन बातों का ध्यान रक्खोगे ?

(३) अँग्रेज़ी-शिक्षण के लिए कक्षा में समुचित वातावरण किस प्रकार उत्पन्न करोगे ? किस प्रकार के चित्र इस कार्य में सहायक सिद्ध हो सकते हैं ?

(४) अँग्रेज़ी-शिक्षण के लिए कुछ उपयोगी खेल-विधि के अभ्यासों का वर्णन करो और यह बतलाओ कि कक्षा में उनका व्यावहारिक प्रयोग करते हुए तुम्हें क्या सावधानियाँ रखनी होंगी ?

अध्याय २३

परीक्षा की समस्या

वर्तमान मनोवृत्ति—

अनुभव की कटुता के कारण ।८। तो शिक्षा-व्यवस्था का कलङ्क समझी जाती है। इस विषय में हमारे देश में जितनी अँग्रेज़ी भाषा बदनाम है उतना कोई अन्य पाठ्य-विषय नहीं। हर वर्ष सरकारी तथा गैर सरकारी सभी प्रकार की परीक्षाओं में जितने विद्यार्थी अँग्रेज़ी विषय में फेल होते हैं उतने अन्य विषयों में नहीं। ऐसे भी विद्यार्थियों की संख्या पर्याप्त बड़ी है जो केवल अँग्रेज़ी विषय में ही फेल होते हैं और अन्य सभी विषयों में पास। इन्हीं परीक्षा-फलों के आधार पर अँग्रेज़ी बड़ी कठिन भाषा समझी जाती है और यह भी तर्क दिया जाता है कि ऐसे विषय को पाठ्यक्रम में स्थान ही नहीं देना चाहिए। इसी प्रकार यह भी सुझाव दिया जाता है कि जब परीक्षा वस्तुतः हेय तथा दूषित है तो उसे ही त्याग दिया जाय। न रहेगा बाँस और न बजेगी बाँसुरी। परन्तु युगों की अनवरत निन्दा तथा आलोचना के उपरान्त भी अँग्रेज़ी तथा परीक्षाएँ यथावत् चलती आ रही हैं, और चलती रहेंगी-यह भी निश्चय है। अँग्रेज़ी के चलते रहने का कारण हम स्पष्ट कर चुके हैं। यहाँ परीक्षा के चल ते रहने के कारण तथा उसके दोष-निवारण पर ही हम ध्यान केन्द्रित करेंगे।

परीक्षा की आवश्यकता—

परीक्षा-कार्य-शिक्षण कार्य का अभिन्न अङ्ग है। किसी भी विषय का अध्ययन तथा शिक्षण करते हुए अनेकों बार देखने की आवश्यकता रहती है कि बालकों की यथेष्ट प्रगति हो रही है अथवा नहीं? कुछ अवसरों पर शिक्षक जानना चाहता है कि मेरी शिक्षण-कला कहाँ तक

सफल तथा प्रभावोत्पादक हो रही है? अन्य अवसरों पर बालकों या संस्थाओं की सापेक्ष योग्यता की तुलना का मापन अनिवार्य हो जाता है। इसी प्रकार किसी-किसी समय यह भी जानना पड़ता है कि दो विधियों में से कौन सी विधि अधिक लाभदायक सिद्ध हो रही है? कभी बालकों को प्रोत्साहित तथा प्रेरित करने के लिए, कभी शिक्षण-व्यवस्था की सुचारुता ज्ञात करने के लिए, कभी विद्यार्थियों की कठिनाइयाँ ज्ञात करने के लिए, कभी छात्र-वृत्ति या पदक आदि प्रदान करने के लिए, कभी विद्यार्थी की कक्षोन्नति निर्णय करने के लिये तो कभी शिक्षक की पदोन्नति के लिए या पाठ्यक्रम में सुधार के ही लिए विद्योपार्जन तथा ज्ञानोपार्जन की मात्रा का मापन या उसकी जाँच करना आवश्यक हो जाता है। अतएव इन सभी मन्तव्यों की पूर्त्ति के साधन-रूप में परीक्षाओं की आवृत्ति और पुनरावृत्ति समय-समय पर होती रहती है। अँग्रेज़ी भाषा के पाठ्य-विषय में भी इन्हीं सब उद्देश्यों से परीक्षाएँ ली जाती हैं। परन्तु यह निश्चित तथा प्रकट नहीं रहता कि कब क्या उद्देश्य है क्या नहीं?—क्या प्रधान है और क्या गौण? और क्या कितनी मात्रा में है। इन सभी उद्देश्यों की पूर्ति एक ही प्रकार की परीक्षा से करने की चेष्टा व्यर्थ है—व्यर्थ ही नहीं अनर्थ है। अनर्थ इसलिए कि उससे बहुत अन्यायपूर्ण तथा गलत निर्णय तथा कार्य हो जाते हैं। जब जैसा उद्देश्य हो तदनुसार उपयुक्त परीक्षा निर्मित करके उसका उचित प्रयोग करने पर परीक्षा अत्यन्त उपयोगी साधन बनाई जा सकती है।

प्रचलित परीक्षाएँ—

अँग्रेज़ी विषय के लिए प्रचलित परीक्षाएँ अन्य विषयों की ही भाँति लिखित निबन्ध या प्रश्नोत्तर प्रकार की होती हैं। मौखिक परीक्षा बहुत कम ही होती है—एक तो सबसे आरम्भिक अर्थात् सर्वप्रथम कक्षा में और सबसे अन्तिम अर्थात् एम०ए० फाइनल कक्षा में। यह वास्तव में बड़ा विचित्र संयोग है। ये परीक्षाएँ अधिकांशतः शिक्षा वर्ष के मध्य तथा अन्त में एक या दो प्रश्न-पत्र देकर ली जाती हैं। एक प्रश्न-पत्र ढाई या तीन घंटे में हल करना पड़ता है। हर एक प्रश्न-पत्र में ५-६ से लेकर

१०-१२ तक प्रश्न होते हैं। कभी प्रश्नों के साथ ही उपप्रश्न जुड़े रहते हैं। इन सभी प्रश्नों के अलग-अलग पूर्णाङ्क नियत रहते हैं। कभी-कभी वैकल्पिक चुनाव भी दिया जाता है कि दस में से ६ प्रश्न करो—आदि-आदि। अधिकाँश प्रश्न निबन्धात्मक होते हैं—कभी वर्णनात्मक कभी कथात्मक, कभी विवेचनात्मक प्रकार के लिखित लम्बे उत्तर माँगने वाले। इन्हीं में कभी-कभी व्याकरण जैसे पद-व्याख्या, विश्लेषण या वाच्य या कथन प्रकार परिवर्तन आदि भी पूछ लेते हैं और कभी शब्दार्थ तथा वाक्य-प्रयोग भी, परन्तु ऐसे प्रश्नों की संख्या बहुत कम होती है। इन्हीं एक या दो प्रश्नपत्रों में इतने ही प्रश्नों के द्वारा अँग्रेज़ी भाषा की सभी प्रकार की क्रियाओं तथा प्रक्रियाओं की परीक्षा करली जाती है—क्या शब्दार्थ ज्ञान तथा प्रयोग, क्या शब्दाक्षर न्यास, क्या वाक्य-रचना, क्या निबन्ध-लेखन, क्या व्याकरण, क्या अनुवाद, क्या पठन, क्या भावग्रहण, क्या भावप्रकाशन, क्या पठित पुस्तक का ज्ञान, क्या अपठित गद्य-पद्य का बोध, क्या सुलेख और क्या साहित्यिक सुरुचि तथा रसानुभूति। वर्ष-भर या छः माह के समस्त विदेशी भाषा-कार्य की जाँच उन्हीं ३ या ६ घंटे के अन्दर दिए गए लिखित उत्तरों के आधार पर होती है। इन उत्तरों के जाँचने में कोई नियत मानस्तर या पथ-प्रदर्शक परीक्षक के पास नहीं रहता। वह अपनी इच्छानुसार उनका मूल्याङ्कन करता हुआ प्राप्ताङ्क देता रहता है—जिन तत्त्वों को चाहे प्रधानता या अप्रधानता देता हुआ। इन्हीं प्राप्ताङ्कों के आधार पर अन्ततोगत्वा विद्यार्थियों का भाग्य-निर्णय होता है।

उनके दोष—

इस सर्वविदित परीक्षा-विधि का यह उपर्युक्त शब्द-चित्रण ध्यान में रक्खे बिना उसके दोषों का सम्यक स्पष्टीकरण नहीं हो सकेगा। इसीलिए इसे यहाँ दिया गया। इन परीक्षाओं के इस प्रकार के सम्पन्न किये जाने पर अनेकों दोष तथा त्रुटियाँ इनमें लक्षित की गई हैं। यह स्मृति-शक्ति तथा लिखित भाषा-अभिव्यक्ति पर अधिक निर्भर करती हैं।

अतः इनमें सफलता या विफलता इन दो तत्त्वों की प्रचुरता या अभाव के कारण ही हो सकती है। इनके परीक्षा-फल को विद्यार्थी के विषय-वस्तु-ज्ञान या विषय-बोध का परिचायक मान लेना भूल है। बहुधा इसी लिए यह लाँछन परीक्षाओं पर लगाया जाता है कि वे ज्ञान या विद्या की सही जाँच नहीं कर पातीं। कई महिनों के कार्य की जाँच इतने थोड़े समय में इतनी असाधारण परिस्थिति में करना अनुचित है, इससे बालकों के मानसिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य की क्षति होती है। प्रश्न बहुधा अस्पष्ट तथा भ्रामक होते हैं जिससे उनका गलत अर्थ लगा कर विद्यार्थी कुछ का कुछ उत्तर दे डालते हैं, यद्यपि सही उत्तर उन्हें विदित रहता है। अत्यधिक लम्बे पाठ्य क्रम से थोड़े प्रश्न पूछने के कारण विद्यार्थियों में केवल चुने हुए प्रकरण पढ़ लेने या प्रश्न हल करने की आदत पड़ जाती है। तोता-रटन भी इसीलिए होने लगता है। और शिक्षक-गण भी केवल महत्वपूर्ण अंशों को रटवा कर परीक्षा पास करा देने में अपनी कला की सफलता समझते हैं। इससे बालकों को ठोस तथा स्थायी ज्ञान नहीं प्राप्त हो पाता।

अँग्रेज़ी के मौखिक भाषण की कुशलता शब्दोच्चारण की शुद्धता तथा सस्वर-पठन की उत्तमता की जाँच तो इस प्रकार की परीक्षा से हो ही नहीं पाती। अन्य पक्षों की जाँच भी अत्यन्त त्रुटिपूर्ण होती है। परीक्षकगण अपनी व्यक्तिगत रुचि, धारणा तथा भावावेश के अनुसार अङ्क प्रदान करते हैं जिनकी कोई स्थिरता या विश्वसनीयता नहीं। एक ही उत्तर पर भिन्न-भिन्न परीक्षक बहुत भिन्न-भिन्न अङ्क प्रदान करते हैं और यह अन्तर प्रथम-श्रेणी से लेकर तृतीय श्रेणी तक का हो सकता है। कोई परीक्षक स्वयं ही यदि पुनः वे ही उत्तर किसी अन्य समय पर जाँचे तो प्रथम बार से भिन्न अङ्क देता है विभिन्न छात्रों के उत्तरों के तुलना-त्मक मूल्याङ्कन में भी यही अविश्वसनीयता देखी गई है। इससे परीक्षा का वास्तविक मूल्य तथा महत्व ही नष्ट हो जाता है। अनावश्यक तत्त्वों को महत्व देकर या आवश्यक तत्त्वों को महत्व न देने पर परीक्षा की ध्येय-निष्ठता समाप्त हो जाती है। बहुधा तो ध्येय परीक्षक को स्पष्ट ही

नहीं रहता या ध्येय के अनुरूप प्रश्न तथा परीक्षा ही नहीं होती किन्तु ध्येय निश्चित होने पर भी उस ध्येय का कोई निश्चित बाह्य मापदण्ड नहीं होता और न उस परीक्षा की उस ध्येय के अनुकूल हो अग्रसर होने की शक्ति ही निर्धारित की रहती है। कुछ परीक्षक चालाकीवश विषय के महत्वहीन अंशों या अप्रत्याशित पक्षों पर ही या निर्धारित पाठ्यक्रम के बाहर प्रश्न दिया करते हैं और वह भी बहुत घुमा-फिरा कर जटिल या दुरूह भाषा में। ऐसे प्रश्नों की विश्वसनीयता, तथा ध्येय-निष्ठता निम्न-कोटि की होती है। और कभी-कभी तो इसके फलस्वरूप परीक्षार्थियों में बहुसंख्यक अनुशासन-हीनता फैल जाती है और वे प्रश्न-पत्र हल करने से ही इनकार कर देते हैं।

उनके दुष्परिणाम—

इस सब का सम्मिलित प्रभाव वही होता है जो हम सब के समक्ष नित्य प्रदर्शित होता है। परीक्षाओं की निन्दा, परीक्षकों की निन्दा, निरीक्षकों के साथ दुर्व्यवहार, अध्ययन के प्रति उदासीनता, नकल करने का दुर्गुण, अनुशासन-हीनता, पक्षपात-शिक्षण-कला की अवनति, दल-बन्दी तथा उच्छृङ्खलता यहाँ तक कि हत्या और आत्महत्या आदि-आदि, जिससे आजकल के शिक्षा-क्षेत्र का समस्त वातावरण व्याप्त है। इसीलिये परीक्षाओं को अनिवार्य व्याधि कहा गया है। शिक्षा-संगठन के अनेक दुर्गुणों का मूल यही दूषित परीक्षा-प्रणाली ही है। इसके सुधार से ही अन्य कुरीतियों का भी निराकरण सुगमतापूर्वक हो सकेगा। इसके लिए सर्व-प्रथम हमें यह विश्लेषण करना होगा कि अच्छी परीक्षा में कौन-कौन सी विशेषताएँ होनी चाहिएँ। तदुपरान्त उन अपेक्षित गुणों से युक्त परीक्षाओं का निर्माण करके उनके प्रयोग का प्रबन्ध करना होगा।

अच्छी परीक्षाओं में वाञ्छनीय गुण—

प्रचलित लिखित-निबन्ध प्रकार की परीक्षाओं में सुधार करने के लिए हमें इन परीक्षाओं में निम्न-गुणों का समावेश करना चाहिए :—

१—ध्येय-निष्ठता—

जो हमारा निर्दिष्ट लक्ष्य है उसी की जाँच परीक्षा द्वारा हो। अन्य अनर्गल पक्षों से हमारे प्रदत्ताङ्क प्रभावित न होने पाएँ—अर्थात् हमारी परीक्षा ठीक उन्हीं गुणों की वास्तविक जाँच करे, जिन्हें जाँचना हमें इष्ट है।

२--विश्वसनीयता

हमारी परीक्षा जो भी जाँच करे वह पूर्ण स्थिरता तथा दृढ़ निश्चय-पूर्वक। यह नहीं, कभी कुछ—तो कभी कुछ। चाहे जितनी बार उत्तर को जाँचा जाय वही प्राप्ताङ्क मिलें तो परीक्षा परम विश्वसनीय मानी जायगी।

३--बहिरंगता या वस्तुपरता—

परीक्षक की व्यक्तिगत भावनाओं या धारणाओं का परीक्षाफल पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सके—अर्थात् चाहे जो व्यक्ति उत्तरों की जाँच करे परन्तु प्राप्ताङ्क वही आवें। यह नहीं कि कोई परीक्षक तो कुछ प्राप्ताङ्क दे और अन्य परीक्षक कुछ और।

४--व्यापकता—

विषय-वस्तु के समग्र क्षेत्र की व्यापक जाँच की जाय। सभी पक्षों को यथेष्ट महत्त्व देकर उनके लिए अलग से प्रश्न-शृंखला निर्मित की जाय। प्रश्न छोटे-छोटे, बहुसंख्यक, थोड़ा उत्तर माँगने वाले तथा आसानी से जाँचे जाने योग्य हों। उनकी भाषा सरलतम तथा सीधी एवं स्पष्ट हो। उनके उत्तर के लिए विषय-वस्तु का बोध तथा अध्ययन आवश्यक हो और उनके उत्तर अत्यन्त सुनिश्चित तथा असंदिग्ध हों।

५—मितव्ययता—

धन, समय तथा श्रम का न्यूनतम व्यय हो। परीक्षाएँ देने में कठिनाई न हो। उनके लिए प्रबन्ध करने में, विद्यार्थियों को हल करने में तथा शिक्षकों या परीक्षकों को जाँचने में अधिक परिश्रम न करना पड़े। विद्यार्थियों, शिक्षकों, परीक्षकों, अधिकारियों तथा कर्मचारियों का

उसमें बहुत समय न लगे और न संस्थाओं का बहुत रूपया या साधन ही उसमें नष्ट हो। ऐसी हों कि वे पुनः पुनः अधिक बार प्रयुक्त की जा सकें।

६--पूर्वनिर्धारित मानस्तर तथा तुलनात्मक मापदण्ड—

अनेकों परीक्षणों के द्वारा कक्षा का औसत प्राप्य मानस्तर तथा किसी प्राप्तांक विशेष का विद्यावय समतुल्य या प्रतिशत पद आदि निर्धारित हो। विभिन्न क्षेत्रों की उन्हीं कक्षाओं की परीक्षा ले लेकर हर क्षेत्र के विद्यार्थियों की किसी विषयज्ञान की मात्रा का मानस्तर अन्य क्षेत्र से तुलना करने के लिए तुलनात्मक मापदण्डों से युक्त परीक्षाएँ ही अधिक उपयुक्त होती हैं। अपने अध्ययनकार्य की सफलता तथा अपने विद्यार्थियों की योग्यता की तुलना सभी शिक्षक अन्य क्षेत्रों में करना चाहते हैं और बिना इसके प्रोत्साहन तथा प्रेरणा नहीं प्राप्त होती। प्रतियोगिता तथा प्रतिस्पर्धा अध्ययन का स्तर अधिकाधिक ऊँचा करती हैं।

सुचारुता तथा व्यावहारिकता—

यह इन्हीं सब उपर्युक्त गुणों के संयोग से उत्पन्न विशेषता है। जो परीक्षा व्यावहारिकता तथा सुचारुता से युक्त न हो वह व्यर्थ ही रहेगी।

नवीन बहिरंग परीक्षाएँ--

इन्हीं सब विशेषताओं से युक्त नवीन बहिरंग ज्ञानोपार्जन तथा विद्योपार्जन परीक्षाएँ सभी पाठ्य विषयों में निर्मित की गई हैं और कुछ प्रगतिशील शिक्षा-व्यवस्थाओं में उनका प्रयोग भी होने लगा है। इन परीक्षाओं का प्रयोग वर्ष में अनेक बार कर के हर बार के प्राप्ताङ्क संकलित करके वर्ष भर के कार्य की प्रगति का लेखा रक्खा जाता है। इसी के आधार पर विद्यार्थियों का शिक्षात्मक तथा व्यावसायिक पथ-प्रदर्शन भी होता है। अँग्रेज़ी विषय में इस प्रकार की बहिरंग परीक्षाएँ शब्दाक्षरन्यास, व्याकरण, वाक्यसंगठन, सुलेख, भावबोध, मौन-पठन, अनुवाद-उच्चारण, सस्वर-पठन आदि पक्षों के लिए बनी हैं। परन्तु

प्रचलित लिखित निबन्ध प्रकार की परीक्षाओं को भी पूरक परीक्षाओं की भाँति प्रयोग करने की आवश्यकता इस विदेशी भाषा में है। साथ ही साथ अन्य अवशेष पक्षों यथा भाषण-योग्यता, रसानुभूति की क्षमता आदि पर भी बहिरंग परीक्षाएँ निर्मित होनी चाहिएँ। दुर्भाग्यवश हमारी शिक्षा-व्यवस्था में अभी इस प्रकार की नवीन परीक्षाएँ स्थान नहीं पा सकी हैं और न अधिक संख्या में वे निर्मित तथा प्रमाणित ही हुई हैं। इस दिशा में शीघ्र ही पर्याप्त कार्य होना चाहिए। इस प्रकार की परीक्षाओं के नमूने आगामी पृष्ठों पर संलग्न हैं।

अँग्रेज़ी-ज्ञान-परीक्षा—कक्षा ८

प्रथम भाग—शब्दार्थ

आदेश—

हर एक प्रश्न के प्रथम शब्द का सही अर्थ देने वाला शब्द उसी के आगे दिए हुए पाँच शब्दों में से पहचान कर रेखाङ्कित करो :—

उदाहरण—

(क) Large—मूर्ख, सुन्दर, बड़ा, बेकार, लड़का
(ख) Sick—Sleep, Ill, Kick, Bad, Thick

अभ्यास करो—

(क) Book—चित्र, कागज, दूकान, देखना, पुस्तक
(ख) Market—सौदागर, मारपीट, बाजार, मौसम, निशान
(ग) Small—Little, Low, Quick, Bottom, Mouse
(घ) Real—Old, Good, Fear, True, Nice

इसी प्रकार निम्न प्रश्न भी हल करो :—

(१) Clever—कुली, चालाक, चोर, नटखट, लोमड़ी
(२) Wealth—खुशी, स्वभाव, नीचता, स्वास्थ्य, धन
(३) Solid—ठोस, बिका हुआ, अभिमानी, ऐनक, सिपाही

(४) Costly—निश्चित, बुरे ढँग से, धैर्यपूर्वक, कीमती, पुराना
(५) Shelter—शोभा, शरण, शिकार, बस्ती, गिरफ़्तारी
(६) Centre—नश्तर, कैद, संतरी, केन्द्र, निगरानी
(७) Worthy—योग्य, पोशाक, नौकरी, अधिकार, कर्त्तव्य
(८) Haste—स्वाद, शीघ्रता, अधिकता, देर, दोहरा
(९) Quiet—झगड़ा, डरपोक, नतीजा, शान्त, बिलकुल
(१०) Worry—नुकसान, नाहक, चिन्ता, विकार, विद्रोही
(११) Road—Ran, Market, Killed, Street, Gate
(१२) Cottage—Hut, Cloth, Plain, Bed, Hold
(१३) Surely—Chiefly, Suddenly, Certainly, Care fully, Only
(१४) Hate—Huge, Fate, Cap, Possess, Dislike
(१५) Gentle—God, Kind, Grow, Man, Creature
(१६) Wide—Open, Wild, Round, Broad, Deep
(१७) Pretty—Half, Colour, Song, Silk, Beautiful
(१८) Seem—Appear, Sail, Scenery, Agree, Meeting
(१९) Offer—Driver, Give, Mostly, Cover, Worship
(२०) Swiftly—Neatly, Daily, Quickly, Really, At-once

द्वितीय भाग—अक्षरान्वय

आदेश—

नीचे लिखे शब्दों के जोड़ों में से एक का अक्षरक्रम सही है और एक का गलत। हर एक जोड़े में से सही अक्षर-क्रम वाले शब्द को पहचान कर रेखाङ्कित करो।

उदाहरण—(क) Bueatiful <u>Beautiful</u>
(ख) <u>Soldier</u> Soldeir
अभ्यास—(ग) Tailor Tailer

(घ) Explane Explain

इसी प्रकार निम्न प्रश्न करो—

(२१)	Deceive	Decieve
(२२)	Separate	Seperate
(२३)	Boundry	Boundary
(२४)	Villege	Village
(२५)	Declair	Declare
(२६)	Visitor	Visiter
(२७)	Hight	Height
(२८)	Believe	Beleive
(२९)	Almost	Allmost
(३०)	Judgment	Judgement
(३१)	Comming	Coming
(३२)	Fruit	Frute
(३३)	Truely	Truly
(३४)	Gaint	Giant
(३५)	Custom	Costum
(३६)	Arise	Arrise
(३७)	Piece	Peice
(३८)	Arguement	Argument
(३९)	Realy	Really
(४०)	Absence	Abscence

तृतीय भाग—व्याकरण

आदेश—

नीचे लिखे वाक्यों में एक-एक पद रेखाङ्कित है। हर वाक्य के आगे उसी रेखाङ्कित पद की व्याकरण-विशेषता कोष्ठ में लिखी है। यदि वह

सही है तो उस पर सही का निशान ✓ बनाओ और यदि गलत है तो गलत का निशान × लगाओ।

उदाहरण—

(क) *Ram* is a good boy. (Proper Noun) ✓
(ख) *Sita* plays with her doll (Masculine Gender) ×

अभ्यास करो—

(ग) I *read* a book. (Transitive Verb)
(घ) He *knew* me well. (Present Tense)

इसी प्रकार निम्न प्रश्न हल करो :—

(४१) *Silence* is golden. (Common Noun)
(४२) *Never* tell a lie. (Adverb)
(४३) *Who* called me here ? (Relative Pronoun)
(४४) Govind *read* a story. (Past Tense)
(४५) He loved his *people.* (Collective Noun)
(४६) My house is *best* of all. (Comparative Degree)
(४७) *Do* it at once. (Imperative Mood)
(४८) Put the book on the *table.* (Objective Case)
(४९) Farmer does not feed his *cattle* properly. (Plural Number)
(५०) *That* gives a wrong idea. (Demonstrative Pronoun)
(५१) The weather was bad but they moved *on* (Preposition)
(५२) Students *have returned* from the tour. (Present Perfect Tence)

(५३) *Our* team has been defeated. (Possessive Case)

(५४) A *twice* told tale is no good. (Adjective of Number)

(५५) I want to know your address. (Second Person)

(५६) Return his *money* today. (Subject to the Verb 'Return')

(५७) I am unable to bear the *loss*. (Abstract Noun)

(५८) His hair is not *curly*. (Adverb)

(५९) If I *were* rich I would have helped the poor. (Singular Numbeı)

(६०) I refused to tell *though* I knew it. (Conjunction)

इलाहाबाद अँग्रेज़ी-परीक्षा—

उत्तर-प्रदेश में इस प्रकार की बहिरंग अँग्रेज़ी-ज्ञान-परीक्षा का निर्माण तथा प्रमाणीकरण डा० सोहनलाल ने इलाहाबाद की मनोविज्ञान-शाला में सम्पन्न किया था। यह परीक्षा ११ + आयुवर्ग के लिए उत्तर-प्रदेश के सभी राजकीय हाईस्कूलों की छात्र-जन-संख्या के आधार पर प्रमाणित की गई थी। इसमें १०० प्रश्न हैं जिन्हें ४५ मिनट में करना है। विभिन्न प्रकार की भाषा-योग्यताओं में प्रश्न-वितरण का ढँग निम्नाङ्कित था—अर्थबोध २२; व्याकरण–१६; शब्द-प्रयोग २६; शब्दार्थ—१०; अक्षरान्वय १३; विरामचिह्न—४; उच्चारण ६। यह वस्तुतः बड़ा सराहनीय अग्रणी कार्य है; परन्तु वर्त्तमान समय में इसका मूल्य दो, चार कारणों से घट जाता है। एक तो यह कि हमारी शिक्षा-प्रणाली में कक्षा-विभाजन के आधार पर बालकों की शिक्षा अग्रसर होती है। यह परीक्षा

आयुवर्ग ११+ मात्र के लिए है, अतः किसी कक्षा-विशेष के लिए उपयोगी नहीं। विषय का ज्ञानोपार्जन कक्षा के ही आधार पर करने की अधिक आवश्यकता पड़ती है। दूसरी बात यह कि यह स्वतंत्रता पूर्व की अँग्रेज़ी-ज्ञान-परीक्षा है, जब अँग्रेज़ी की पढ़ाई तीसरी कक्षा से आरम्भ हो जाती थी। आज-कल यह स्थिति बिलकुल बदल गई है। अब अँग्रेज़ी विषय छठवीं कक्षा से आरम्भ होता है। तीसरी बात यह कि परीक्षा सम्बन्धी निर्देश-वाक्य तथा प्रश्नों की भाषा अँग्रेज़ी नहीं प्रत्युत हिन्दी होनी चाहिए थी, क्योंकि प्रश्नों की भाषा समझने की परीक्षा यहाँ नहीं ली जा रही है। अतः वास्तविक मापन कार्य में यह व्यर्थ ही बाधक है।

अन्तिम आपत्ति कुछ वैशेषिक या तन्त्रात्मक है। राजकीय स्कूलों का छात्र-वर्ग प्रान्त के समस्त छात्रवर्ग का प्रतिनिधि नमूना नहीं है। वह तो अनेक प्रकार से बहुत छँटा हुआ समुदाय है। अतः उस पर आधारित मानदण्ड का प्रयोग गैरसरकारी संस्थाओं के छात्रवर्ग पर करना अनुचित होगा। इसीलिए इस प्रकार की अनेकों नवीनतर और नवीनतम परीक्षाएँ निर्मित हों तब काम चलेगा।

तुलनात्मक अध्ययनार्थ ग्रन्थ-सूची

Ballard	:	Teaching & Testing English, Part II
Ballard	:	The New Examiner
Jordan	:	Measurement in Education, Chapter VI
Weaver, Borcher & Smith	:	The Teaching of Speech, Chapter XXII
French	:	The Teaching of English Abroad, Book III, Chapter IX
Thompson & Wyatt	:	The Teaching of English in India, Chapter XIII
Incorporated Association of Assistant Masters in Secondary Schools	:	The Teaching of Modern Languages, Chapter X

V. S. Mathur : Studies in the Teaching of English in Indian Schools, Chapter IX
Otto Jespersen : How to Teach a Foreign Language
Dr. Sohan Lal : The Allahabad English Test

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) अँग्रेज़ी-शिक्षण के क्षेत्र में कक्षा-परीक्षाओं का क्या महत्व है? इनसे पूर्ण लाभ उठाने के लिए इनमें क्या सुधार आवश्यक हैं?

(२) नवीन बहिरंग परीक्षाओं तथा प्रचलित परीक्षाओं में क्या अन्तर है? अँग्रेज़ी के किन-किन पक्षों पर बहिरंग परीक्षाएँ बनाना आसान है तथा किन पक्षों पर कठिन, और क्यों?

अध्याय २४

उपसंहार

सिंहावलोकन—

इस समस्त पूर्वगामी पर्यवेक्षण तथा विवेचन में हमने देखा कि सर्वप्रथम हमारे सामने अँग्रेज़ी-शिक्षण के उद्देश्यों का समुचित निर्धारण करने की समस्या है। इसमें एक ओर तो व्यापक मानवतावादी तथा उपयोगितावादी उद्देश्यों का संतुलन करने की आवश्यकता है और दूसरी ओर इन व्यापक उद्देश्यों को कक्षा-परिस्थिति में घटित करके इनकी प्राप्ति के कुछ सुनिश्चित मापदण्ड स्थिर करने का प्रश्न है। कक्षा-शिक्षक के चतुर्मुखी सीमित ध्येय का यही रहस्य है; किन्तु उसका अधिकाधिक स्पष्ट निरूपण वाञ्छनीय है। तदुपरान्त विधि-निर्वाचन की विकट समस्या है, क्योंकि इनकी संख्या अनन्त है। जितने विचारक उतनी विधियाँ। सामान्य विधियों में से चार का विवेचन करके हमने पुनः अनुभव किया कि विविध विधियों के वाञ्छनीय तत्त्वों का सामञ्जस्य तथा समाहार करके किसी नवीन पूर्ण अथवा त्रुटि-हीन विधि का विकास करना आवश्यक है। परन्तु अनुवाद-विधि, प्रत्यक्ष-विधि, नूतन-विधि तथा शब्द-परिवर्तन-विधि के अतिरिक्त हर भाषा पक्ष की पृथक्-पृथक् विधियाँ भी हैं। भाषण से सम्बन्धित अनुकरण-विधि तथा ध्वनि-शास्त्र-विधि, पठन से सम्बन्धित अक्षर-विधि, या वर्णमाला-विधि, शब्द-विधि या देखो और कहो विधि, तथा वाक्य-विधि एवं कथाविधि; लेखन से सम्बन्धित किन्डरगार्टन विधि, साँचे भरने की विधि तथा मुक्तहस्त अनुकरण-विधि; व्याकरण की आगमन-विधि, निगमन-विधि, रटन-विधि, संयोग-विधि, व्यवस्थित-विधि, तुलना-विधि, अभ्यास-विधि; संशोधन कार्य की आत्म-संशोधन, परस्पर-संशोधन या सामूहिक-संशोधन

विधियाँ, पुनः पुनः कोई समन्वित तथा सर्वग्राही-विधि विकसित करने की चुनौती देती प्रतीत होती हैं।

इन उद्देश्यों और विधियों की समस्या के अतिरिक्त हमने विविध प्रकार के भाषण, पठन-लेखन आदि के अभ्यास, व्याख्या की युक्तियाँ, सहायक उपयोगी उपकरण तथा नवीन पद्धतियों के प्रयोग, परीक्षा-कार्य की कठिनाइयों तथा नई प्रकार की बहिरंग परीक्षाओं की सम्भावनाओं का भी अध्ययन किया। बारम्बार हमारा यही अनुभव रहा कि वास्तविक परिस्थितियों में व्यावहारिक प्रयोग द्वारा प्रमाणित उपयोगिता वाले साधनों को विकसित तथा ग्रहण करने में ही कल्याण है। परन्तु इस प्रकार के साधन की मात्रा अभी तक तो अत्यन्त सीमित है, कारण कि भारतीय स्थिति में परीक्षणात्मक कार्य-क्रम ही सम्पन्न हुआ है। अतः उस दिशा के कार्यक्रम में परीक्षणात्मक कार्य द्वारा ऐसे साधनों का विकास तथा प्रमाणीकरण एक मुख्य अँग रहेगा।

निष्कर्ष—

सारांश यह है कि शिक्षा के अन्य पक्षों की समस्याओं की ही भाँति अँग्रेज़ी-शिक्षण की समस्याएँ भी निरन्तर परिवर्तनशील परिस्थिति के साथ नित्य नवीन रूप धारण करती रहेंगी। एक ही सुधार-प्रयास में उनका पूर्ण समाधान असम्भव है। उनके स्थायी समाधान के लिए चिरकालीन परीक्षण तथा अभ्यास-कार्य और उस पर आधारित गहन तत्त्व-विवेचन तथा सूक्ष्मचिन्तन निरन्तर करते रहने की आवश्यकता रहेगी। बिना इस प्रकार विषय का अवगाहन किए, विरोधी सिद्धान्तों के मूल्यवान पक्षों को संकलित करके प्रभावोत्पादक नवीन रूप प्रदान करने की क्रिया भी सफल नहीं होगी। अन्य समस्यात्मक स्थलों की भाँति इस स्थल पर भी विजय प्राप्त करने के लिए बहुमुखी आक्रमण करना होगा। इनमें से दो मुख्य उपगमन मार्ग होंगे, शिक्षा-विज्ञान अर्थात् शिक्षा-क्रिया के विधिवत विश्लेषण-परीक्षण आदि, तथा शिक्षणकला अर्थात् विधिपूर्वक शिक्षा-क्रिया को व्यावहारिक रूप से सम्पन्न करने की

कुशलता आदि के। शिक्षा के कला तथा विज्ञान पक्षों को अँग्रेज़ी-शिक्षण के क्षेत्र में अवतरित करके ही इसकी समस्याओं का हल हो पाएगा।

कर्त्तव्य निर्देश--

इन निष्कर्षों के प्रकाश में इस क्षेत्र में शिक्षाधिकारियों तथा शिक्षकों का महत्वपूर्ण कर्त्तव्य स्वयं ही स्पष्टतः आभासित हो जाता है। वे ही शिक्षापोत के वास्तविक नायक तथा कर्णधार हैं। उन्हें चाहिए कि वे इस क्षेत्र के नवीनतम विकासों से परिचित रह कर उन्हें यथा-शक्ति उपयुक्त अवसर प्रदान करके परीक्षणात्मक कसौटी पर चढ़ाते रहें। शिक्षाधिकारी रचनात्मक उदारवादी नीति को ग्रहण करें और शिक्षक आशावादी तथा प्रयोगवादी मनोवृत्ति के साथ अग्रसर होते हुए एक ओर तो अधिकारी-वर्ग के विश्वासपात्र तथा कृपा-पात्र बनें तथा दूसरी ओर विद्यार्थियों के श्रद्धापात्र बन कर उनका पथप्रदर्शन और चरित्र-निर्माण करें। विदेशी भाषा उनके जीवन का विध्वंसक तथा विगठन-कारक तत्त्व न बनने पावे, प्रत्युत उसमें अन्तर्गठन की एक नई कड़ी जोड़ कर उसे एक नवीन ज्योति और आभा से निखार दे। नवनिर्माण के इस स्पृहणीय कार्य में तत्परता-पूर्वक क्रियाशील रहने पर ही आज का यह सुनहला स्वप्न किसी आगामी शुभ-दिवस में साकार हो सकेगा।

- पारिभाषिक शब्दावली
- अनुक्रमणिका

- परिशिष्ठ
- संगठन-विधि

परिशिष्ट

संगठन-विधि

परिचय

अँग्रेज़ी शिक्षण के क्षेत्र में इधर कुछ वर्षों से एक नवीन सामान्य विधि का प्रचार हो रहा है जिसे संगठन-विधि (Structure Method) की संज्ञा दी गई है। जैसा कि इस विधि के नाम से ही प्रकट है यह वाक्य-रचना या वाक्य-संगठन के आधार पर अँग्रेज़ी सिखाने की प्रणाली है। अँग्रेजी के वृहत् शब्द-भंडार में से न्यूनतम अनिवार्यतः आवश्यक शब्दावली सँग्रह करके उसे सर्वप्रथम सिखाने के हेतु जिस प्रकार थार्नडाइक, वेस्ट, ओगडेन आदि विद्वानों ने परामर्श दिया था उसी प्रकार अँग्रेज़ी भाषा के असंख्य सम्भव वाक्य-संगठनों में से परमावश्यक वाक्य-संगठनों का चयन करके उन्हें सर्वप्रथम सिखाने का परामर्श इस विधि के समर्थकों ने दिया है। इनमें से प्रमुख हैं श्री सी० सी० फ्राइस (C. C. Fries) तथा श्री जे० जी० ब्रूटन महोदय। इन महाशयों का यह मत है कि विदेशी भाषा को सीखनें में शब्दावली-उपार्जन करने की अपेक्षाकृत वाक्य-संगठन पर अधिकार करना अधिक उपादेय है। अतः तदर्थ परमाश्यक वाक्य-संगठनों में बालकों को विविध रूप से घनीभूत अभ्यास कराना चाहिए। इस क्रिया को पर्याप्त अवसर प्रदान करने में शब्दावली तो अनायास ही गौण वस्तु के रूप में उपलब्ध हो जाती है।

मूल तत्त्व

लन्दन विश्वविद्यालय की शिक्षा इंस्टीट्यूट में तथा अमेरिका के मिचिगान, कार्नेल तथा जार्जटाउन आदि विश्वविद्यालयों में संगठन-विधि के समर्थकों ने वैज्ञानिक गवेषणान्वेषण-कार्य द्वारा प्रायः २७५ परमावश्यक वाक्य-संगठनों की सूची तैयार की है, और उन संगठनों का सर्वोपयुक्त तारतम्य या क्रम भी निर्धारित किया है। इसके साथ ही

उन्होंने प्रायः तीन हज़ार अत्यावश्यक मूल शब्दों की सूची भी प्रस्तुत की है, जिनका सक्रिय प्रयोग इन्हीं वाक्य-संगठनों को सीखते समय किया जाता है। इन संगठनों को आधार बनाकर भाषा के विविध पक्षों का अधिकार निम्न क्रम से अग्रसर होता है—

१—मौखिक भाषा-बोध।

२—भाषण-क्रिया।

३—पठन-क्रिया।

४—लेखन-क्रिया।

प्रयोगात्मक या व्यावहारिक व्याकरण तो इस विधि की मुख्य आधार-शिला ही है, परन्तु सैद्धान्तिक (formed) व्याकरण इससे हेय है। वाक्य-सँगठनों के अभ्यास में व्यक्तिगत तथा सामूहिक बाह्य कियाओं का समावेश किया जाता है। उपयुक्त तथा रोचक सामग्री का प्रयोग भी प्रचुरता से होता है।

वाक्य-सँगठनों का यह अभ्यास अत्यन्त सक्रिय, व्यावहारिक, क्रमिक तथा ठोस ढंग से अग्रसर होता है। इसमें मौखिक श्रुत (aural-ral) तथा कृत पक्षों पर अत्यधिक जोर दिया जाता है। वाक्य संगठनों को क्रमबद्ध करने में अर्थ तथा शब्द-विन्यास दोनों पक्षों पर ध्यान दिया जाता है। एक समय में किसी शब्द या संगठन का एक ही अर्थ सिखाया जाता है—वह भी प्रचलिततम। तदुपरान्त उसी एक अर्थ को खूब अभ्यास द्वारा स्थिर कर देते हैं। तब दूसरा अर्थ लेकर उसका प्रथक अभ्यास दिया जाता है। हर एक नया अर्थ या नया प्रयोग एक नए संगठन का स्वरूप धारण कर लेता है और इसीलिए उसे प्रथक अभ्यास करने की प्रणाली अपनाई जाती है।

अन्य विधियों से तुलना—

संगठन-विधि कोई सर्वथा नवीन या मौलिक विधि नहीं है। इसके मूलसूत्र अन्य पूर्वगामी विधियों में सहज ही लक्षित किए जा सकते हैं। फ्रेंञ्च तथा रायबर्न द्वारा समर्थित अँग-परिवर्तन-विधि तो इसका ही

आरम्भिक लघुरूप प्रतीत होती है। उसमें भी भाषा के प्रचलित प्रयोग के रूपों का अत्यधिक अभ्यास करके उन्हें अत्यन्त स्वभावगत बना देने का प्रयत्न किया जाता है। वही प्रक्रिया अधिक सुव्यवस्थित तथा परिष्कृत रूप में संगठन-विधि के अन्तर्गत स्थान पाती है। यहाँ सँगठनों को उनकी सरलता, उत्पादकता तथा अध्यापनीयता के आधार पर क्रमबद्ध कर दिया गया है और उनके शिक्षण में अधिक सरसता, क्रिया-शीलता तथा व्यावहारिकता का पुट दिया जाता है। इसी प्रकार प्रत्यक्ष के समान ही संगठन-विधि में मौखिक श्रुत अनुभूतियों की प्रधानता है तथा समूर्त्त पदार्थों एवं वास्तविक क्रिया-प्रदर्शन के संयोग द्वारा भाषा-कार्य अग्रसर होता है। दोनों ही मौखिक अभ्यास को प्रथम स्थान प्रदान करती हैं तथा लेखन-क्रिया को अन्तिम। सैद्धान्तिक व्याकरण का निराकरण ये दोनों विधियाँ समान रूप से करती हैं। साथ ही साथ ये दोनों ही भाषा कार्य की इकाई "वाक्य" को ही मानती हैं। परन्तु प्रत्यक्ष विधि में वाक्यों या संगठनों का चुनाव इतने वैज्ञानिक ढँग से नहीं सम्पन्न किया गया और न मौखिक कार्य में प्रयुक्त होने वाले संगठनों का कोई पूर्व निर्धारित क्रम ही स्थिर किया गया है। उदाहरणार्थ प्रत्यक्ष विधि के अंतर्गत प्रश्नोत्तर आरम्भ से ही प्रयुक्त होने लगते हैं परन्तु संगठन-विधि के अंतर्गत कुछ प्रकार के साधारण वाक्य-सँगठन सीख चुकने के उपरान्त ही 'प्रश्न रूप' लिए जाते हैं। इस प्रकार सँगठन-विधि प्रत्यक्ष विधि की अपेक्षा अधिक ठोस वैज्ञानिक आधार पर स्थित प्रतीत होती है।

डा० वेस्ट की नूतन विधि से इस विधि ने क्रमबद्धता, विशिष्ट अभ्यास तथा सीमित शब्दावली के तत्त्व ग्रहण किए हैं। परन्तु भाषा के विविध पक्षों के सापेक्ष महत्व के विषय में इन दोनों में मतभेद है। नूतन विधि पठन-क्रिया को प्रथम स्थान देती है जबकि संगठन-विधि मौखिक कार्य को। डा० वेस्ट ने शब्दों तथा अक्षरों के क्षेत्र में जो अन्वेषण कार्य किया था उसी प्रकार का कार्य संगठन-विधि के प्रवर्त्तकों ने वाक्य-रचना या वाक्य-संगठन क्षेत्र में सम्पन्न किया है। अतः यह कहा जा सकता है कि दोनों

की आधारभूत क्रियाएँ तथा सिद्धान्त तो एक से हैं परन्तु प्रकट व्यावहारिक रूप अलग-अलग।

सँगठन-विधि के गुण

सँगठन-विधि इस प्रकार अपनी सभी पूर्वगामी विधियों के मूल्यवान तत्त्वों तथा प्रक्रियाओं का सुन्दर व्यावहारिक समन्वय है। भाषा के गतिशील पक्ष को यह पर्याप्त महत्व प्रदान करती है। भाषा-विकास के अनुकूल ही भाषा के विविध पक्षों को यह क्रमानुसार लेती है। अनुकरण तथा अभ्यास के नियम द्वारा सीखने की क्रिया को सफल बनाने में यह समर्थ है। यह शिक्षा के वैज्ञानिक तथा मनोवैज्ञानिक दोनों आधारों पर आश्रित है। बालक की क्रियाशीलता को यह पर्याप्त मात्रा में प्रयोग करके भाषा को उसके अनुभव का अँग बना देती है।

भाषा को एक कुशलता स्वरूप मान कर यह अग्रसर होती है और आदत के स्तर तक उसे स्वभावगत कर देना चाहती है, जो आधुनिक जीवित भाषाओं के शिक्षण में सर्वमान्य सिद्धान्त है। स्थूल अनुभवों पर जोर देना भी सर्वथा युक्ति-संगत है। विदेशी भाषा-शिक्षण की सामान्य परिस्थिति के प्रति भी यह उदासीन नहीं है। संगठनों तथा शब्दों की सीमित मात्रा लेकर उन पर अधिकार कराने का इसका उद्देश्य अधिक महत्वाकाँक्षी उद्देश्यों की भाँति अप्राप्य तथा हतोत्साह करने वाला नहीं सिद्ध होगा। अतः यह विधि बाल-रुचि के अनुकूल होगी और विदेशी भाषा-शिक्षण के कार्य को सुचारुता तथा सफलतापूर्वक सम्पन्न कर सकेगी।

सँगठन-विधि के दोष

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है इस विधि में कोई विशेष मौलिकता नहीं है अतः इसे कोई अलग विधि न मान कर उन्हीं प्रसिद्ध विधियों के उपयोगी अँगों का परीक्षणात्मक समन्वय मानना अधिक उपयुक्त है। अभी यह विधि परीक्षणाधीन है और अधिकाँशतः एक उपगमन मात्र है कोई सर्वाङ्ग-पूर्ण विधि नहीं। इस विधि के कुशल प्रयोग के लिए विशेष दीक्षा प्राप्त अध्यापकों की आवश्यकता है। प्रचलित प्रकार का परम्परागत

वैशेषीकरण भी इसमें कुछ सहायता न दे सकेगा क्योंकि यह विधि अभी सब प्रशिक्षण विद्यालयों में प्रयोग ही नहीं होती। अतः पहले की दीक्षा प्राप्त सभी विदेशी भाषा-शिक्षकों को एक पुनर्दीक्षा की योजना द्वारा इस विधि के प्रयोग में दक्ष बनाने पर ही इसका प्रयोग सफलता-पूर्वक हो सकेगा। और इतना प्रबन्ध होने में बहु धन, श्रम तथा समय अपेक्षित है जो सहसा जुटाया नहीं जा सकता—अतः इस विधि को व्यापक रूप से कार्यान्वित करने में अभी बहुत विलम्ब है।

यह विधि भाषा-शिक्षण के यान्त्रिक पक्ष को ही सर्वेसर्वा मान बैठती है। भाषा के रसास्वादनात्मक तथा सृजनात्मक पक्षों की ओर इसका ध्यान ही नहीं जाता। हम साहित्य रसास्वदान तब तक के लिए स्थगित करके कि जब तक भाषा-सँगठनों पर पूर्ण न अधिकार हो जाय, बालक के प्रति अन्याय करते हैं। वाक्य-संगठनों पर बिना यान्त्रिक अधिकार किए भी पर्याप्त साहित्य रसास्वादन सम्भव है। एक समय में एक सँगठन विशेष की पुनः पुनः आवृत्ति अरुचिकर भी सिद्ध होगी। कुछ विशेष प्रकार के सँगठनों पर अधिकार कर चुकने पर भी किसी अँग्रेज़ी कलाकृति के नमूने का अवलोकन करने पर नवीन ही प्रकार के सँगठनों का सामना हो जाने की संभावना रहेगी—अतः इस अवसर को व्यर्थ ही विलम्ब करके लाना लाभप्रद नहीं होगा। भाषा-शिक्षण के क्षेत्र में हमें यन्त्र को अधिकृत करने की प्रक्रिया और उसको प्रयोग करने की आनन्दानुभूति एकदम पृथक नहीं कर देना चाहिए। यह दोनों प्रक्रियाएँ यहाँ अन्योन्याश्रित हैं।

अभी तो सँगठन-विधि परीक्षणाधीन ही है अतः इसके वास्तविक मूल्य को समय की कसौटी पर ही छोड़ देना न्यायोचित होगा।

तुलनात्मक अध्ययनार्थ ग्रन्थ-सूची

Fries, C. C : The Structure of English.
Mittins, W. H : Pattern in English.
Horby, A. S : A Guide of Patterns and Usage in English.
Allen, W. S : Living English Structure.
Eckersley, C. E : Essential English for foreign Students.
Bruton, J. G : The Sentence Structures.
Menon & Patel : The Teaching of English as A Foreign Language (Structural Approach).

The Graded Sentence Structures, Institute of Education, University of London.

अभ्यासार्थ प्रश्न

संगठन-विधि की विवेचना करो और सिद्ध करो कि यह पूर्व प्रचलित विधियों का समन्वय-मात्र है। इस विधि में क्या गुण-दोष हैं ?

- पारिभाषिक शब्दावली
- अनुक्रमणिका

पारिभाषिक शब्दावली

(अ) हिन्दी-अँग्रेज़ी

अकर्मक Intransitive
आगमन विधि Inductive Method
अङ्ग परिवर्तन तालिका Substitution Table
अङ्ग परिवर्तन विधि Substitution Method
अधिकृत करना To Master
अनर्गल Irrelevant
अनिवार्य Compulsory
अनुच्छेद Paragraph
अनुभवपरक Empirical
अनुभूतियाँ Impressions
अनुवाद विधि Translation Method
अनुवादित Translated
अनुवादीपन Translationisn
अनुशासनात्मक Disciplinary
अनुसरण कार्य Follow-up Work
अनेकरूपता Variety
अन्तर्दृष्टि Insight
अन्तर्विरोध Contrast
अन्तर्सम्बन्ध Correlation, Coordination, Intercorrelation
अन्वेषण कार्य Research Work
अपदस्थ करना Replace
अपरिमेय Immeasurable
अपवाद Exceptions
अपव्यय Wastage
अमूर्त Abstract
अराष्ट्रीय Antinational
अर्थप्रतीक Meaning symbol
अल्प स्मृति विस्तार Short memory span
अवसरवादी Opportunistic
अविवेकशील Irrational
अशुद्धियाँ Errors, Mistakes
असङ्गत Inconsistent, Incompatible
असङ्गति Inconsistency
अक्षर Letter
अक्षर-विधि Alphabet Method

आ

आकारिक दीक्षा Forral Training
आत्मसंशोधन Self-correction
आत्मसंशोधिनी Self Correcting
आदतें Habits
आदर्श पठन Model reading
आद्योपान्त Throughout
आधारभूत Fundamental
आन्तरिक वाणी Inner speech
आयोग Commission
आरम्भिक वस्तु नियोजन Preliminary set up
आरोह अवरोह Rise and Fall
आलेखों Records

इ

इञ्जीनियरी Engineering

उ

उच्चारण Pronunciation
उच्छलगति Saccadic
उन्मुखीकरण Orientation
उपयोगितावादी Utilitarian
उपसर्ग Prefix
उपादेय Efficacious
उपार्जन Acquisition
उपेक्षित Neglected
ऊहा Intuition

ए

एकरूपता Uniformity

क

कड़ी आपत्ति Strong objection
कच्चा कार्य Rough work
कण्ठस्थीकरण विधि Memorizing Method
कथात्मक Narrative
कथा-विधि Story Method
कथोपक्‌थन Dialogue
कथोपकथन विधि Conversational method
करके सीखना Learning by doing
कला Art
कलावर्ग Arts
कल्पनात्मक Imaginative
कविता Poetry
कविता-पठन Poetry reading
कविता-पाठ Recitation
कानून Law
कामचोर Shirker
कार्य प्रदर्शन Demonstration

काल Tense
कुख्यात Notorious
कौशल Skill
कृत्रिम Artificial
कृत्रिमता Artificiality
क्रमपूर्त्ति Routine
क्लिष्टता Difficulty

ख

खेलभाव Play spirit

ग

गतिपूर्णता Speediness
गतिमूलक Motor
गतिशील Dynamic
गतिसम्बन्धी असंतुलन Motor disbalance
गद्य Prose
गद्यान्वय Prose order
गहन पठन Intensive reading
गिरामूलक Vocal
गुणानुवाद Praise
गैर सरकारी Non-government

च

चक्रादेश Circular
चयन Collection, selection, Compilation
चक्षु-ध्वनि विस्तार Eye voice span
चित्र पठन Picture-reading
चेतावनी Warning

छ

छिछला अध्ययन Shallow study, skipping
छोटा अक्षर Small letter

ज

जनतन्त्रवाद Democracy
जिह्वा चालक Tongue twisters
जीवन विज्ञान Biology
जोर Emphasis

ड

डाक्टरी Medicine

त

तत्परता पूर्वक Persistently
तर्कपरक Logical
तार्किकता पूर्वक Logically
तुलना Comparison

द

दीर्घ Long
देखो और कहो विधि Look and Say method
द्रुतपठन Rapid reading

ध

धातु Root
धारणा शक्ति Retention
धारा-प्रवाह Continuous
धीरे चलो नीति Go slow policy
ध्यान हीनता Inattention
ध्येय निष्ठता Validity
ध्वनि sound, Voice
ध्वनि उत्पादक अवयव Speech organs
ध्वनि गुञ्जन Accoustics
ध्वनि चिह्न Phonetic Symbols Sound symbols
ध्वनित करना Vocalize
ध्वनि प्रतीक Phonetic symbol, Sound symbol
ध्वनि विन्यास sound sequence sound arrangement
ध्वनिशास्त्र Phonetics
ध्वनिशास्त्र लिपि Phonetic Script
ध्वन्यात्मक Phonetic
ध्वन्यात्मक लिपि Phonetic script
ध्वंसात्मक Destructive

न

नगण्य Insignificant
नवीन बहिरंग परीक्षाएँ New Objective Tests
नवीन विधि New Method
नारे slogans
निजी चेष्टा Initiative
निबन्ध Composition
नियमहीनता Lawlessness
निरपेक्ष Absolute
निर्धारित Prescribed
निर्भयता पूर्वक Boldly
निषेधात्मक Negative
निष्क्रिय Passive
निष्क्रिय पक्ष Passive aspect
नूतन विधि New Method
न्यूनतम अवरोध पथ Path of Least Resistence

प

पक्का कार्य Fair Work
पठन Reading
पठन के प्रकार Kinds of Reading
पठनीयता Legibility
पण्डिताऊ Pedantic
पथ प्रदर्शन Guidance

पद Post, step
पदार्थ साक्षात Object presentation
परस्पर संशोधन Mutual Correction
परामर्श-दात्री समितियाँ Advisory Committees
परिपक्व Mature
परिभाषा Definition
परिष्कृत विधि Reformed Method, Refined Method
पर्याय Synonym
पक्षों Aspects
पाठ्य पुस्तक Text book
पारितोषिक Reward
पारिभाषिक Technical
पाश्चात्यवादी Occidentalist
पुनर्व्यवस्था Reorganisation
पुरातन विरोधी विधि Anticlassical method
पुस्तकालय पठन Library reading
पुस्तकें Books
पूरक पुस्तक Supplementary reader
पूरक शब्द Form Words
पूर्व तैयारी कार्य Preparatory work
पूर्वाभ्यास पठन Prepared reading
पृथक मानसिक शक्तियाँ Faculties
प्रक्रियाएँ Processes
प्रतिक्रियावादी Reactionary
प्रतिगमन Regression
प्रतिद्वन्द्वी Rivals
प्रतिवर्तनात्मक निरोध Retroactive Inhibition
प्रतिशत पद Percentile rank
प्रतिस्पर्धा Rivalry
प्रतीक परिचय Symbol recognition
प्रत्यय Suffix concept
प्रत्यय सम्बन्ध Association
प्रत्यक्षीकरण Perception
प्रत्युत्तर Response
प्रभावपूर्वक Effectively
प्रयोग Application
प्रयोगिक Functional
प्रवाह-पूर्वक Fluently
प्रस्तुतीकरण Presentation
प्राकारिक Typical
प्राच्यवादी Orientalist
प्रेरणा Motivation

ब

बड़ा अक्षर Capital letter
बचकानी Childish
बल Emphasis
वहिरंगता Objectivity
बद्धिहीनता Mental deficiency
बोली Speeeh
बौद्धिक पहेलियाँ Intellectual puzzles

भ

भारतीयतावाद Indianism
भारतीयपन Indianism
भावचिन्ह Semantic symbol, Meaning symbol
भाषण Speech
भाषा योग्यता Verbal ability
भाषा विज्ञान Philology
भाषा बिज्ञान विशेषज्ञ Philologist
भूत Past
भूमिका Introduction, Preparation
भेदनीति के तत्व Catches Pitfalls

म

मञ्चभय Stage fright
मनोविज्ञान Psychology
मनोवृत्ति Attitude
मनोशारीरिक संस्थान Psycho-physical system
मातृभाषा Mother tongue
माध्यम Medium
माध्यमिक Secondary
मानवतावादी Humanistic
मानसिक अनुशासन Mental discipline
मानसिक तनाव Mental tension
मानस्तर Standard
मान्यता Recognition
मापदंड Measurement
मितव्ययता Economy
मितव्ययपूर्ण Economical
मितव्ययशील Economical
मुखाकृति पठन Face reading
मुक्तहस्त अनुकरण Freehand imitation
मुद्रण लिपि Print script
मुहाविरे Idioms
मौखिक कार्य Oral work
मौखिक निबन्ध Oral composition
मौखिक विधि Oral method
मौन पठन Silent reading

मौलिक Original

य

युक्तियाँ Devices
युक्ति संगत Justified, Rational
यंत्रविधि Mechanism
यांत्रिक Mechanical

र

रचना शक्ति Creativity
रचना संगठन Structure
राष्ट्र भाषा National language
रुचि Interest
रूपरेखा कृति Gestalt
रोचकता Interest
ऋकार त्रय Three R's

ल

लघुजन व्याख्यान Littlemen's lectures
लचीलापन Plasticity
लापरवाही Carelessness
लिखित अभ्यास Written Exercises
लिखित प्रतीक Graphic symbols
लिङ्ग Gender
लिपि चिन्ह Script symbols
लिपि परिवर्तन Transcription
लेख Essay
लेखन Writing
लोक-प्रिय Popular

व

वयस्क Adult
वर्णनात्मक Descriptive
वर्णमाला Alphabet
वर्णमाला विधि Alphabet method
वस्तुपरता Objectivity
वाक्य Sentence
वाक्य विधि Sentence method
वाक्य व्यूह Paragraph
वाक्य शृँखला Series of sentence
वाक्यांश Clause
वाङ्मय Literature
वाचक शब्द Content words
वाणिज्य Commerce
वाणी Speech
वाद-विवाद Debate
विकल्प Option
विचार विभ्रम Confusion
विचारात्मक Reflective
विदेशी भाषा Foreign Language

विद्यावय समतुल्य Equivalent achievement age
विधि Method
विधेयात्मक Positive, Constructive
विनिमय Exchange
विनोद-पूर्ण Humorous
विलोम Antonym
विवेकपरक Rational
विवेक-पूर्ण विधि Rational method
विशिष्ट विधियाँ Special methods, Particular methods
विशेषज्ञ Expert specialized
विशेषज्ञता Specialization
विश्लेषण-विधि Analytical method
विश्वविद्यालय University
बिश्वसनीयता Reliability
विस्तृत पठन Extensive Reading
विज्ञान Science
विज्ञापन Advertisement
वैकल्पिक Optional
वैमनस्य Enmity
वैशेषिक Technical, Specialized
वैशेषिक अभ्यास Specific Practice
व्यञ्जकता Expressiveness
व्यक्तिगत विभिन्नता Individual differences
व्यवस्थित विधि Systematic Method
व्याकरण Grammar
व्याकरण विरोधी विधि Antigrammatical Metho
व्याख्या Interpretation, Explanation
व्यापकता Comprehensiveness
व्यावहारिकता Practicability
व्युत्पत्ति Derivation

श

शब्दकोष आदत Dictionary Habit
शब्द खण्ड Syllable
शब्द चेतना Word Consciousness
शब्दविधि Word method
शब्द व्याख्या Word Meanin
शब्द ज्ञान Vocabulary
शब्दान्तरीकरण Paraphrase
शब्दाक्षरन्यास Spelling
शरीरक्रिया विज्ञान Physiolog

शासनात्मक Administrative
शास्त्रीय वर्गीकरण Theoretical Classification
शिक्षक Teacher
शिक्षण सामग्री Teaching Materials
शिक्षा व्यवस्था Educational system
शीर्षक Heading, Title
शुद्ध विधि Correct Method
शोधन Correction

श्र

श्रवण गोचरता Audibility
श्रवण मूलक Auditory
श्रवणमूलक मनोप्रतिभा Auditory image
श्रुति लेख Dictation
शृँखला Series

स

सकर्मक Transitive
सक्रिय पक्ष Active aspect
सचेतन Conscious
संदर्भ Context
समकक्ष Equivalent
समझ-पूर्ण विधि Sensible method
समतुल्य Equivalent
समयविभाग चक्र Time-table
समरूप Parallel
समवेत पठन Chorus reading
समानता Similarity
समानान्तर Parallel
समाहार Compromise
समूर्त Concrete
समृद्धि Richness
सरकारी Government
सर्वसामान्य सूत्र Maxims
सस्वर पठन Loud Reading
सहचारितागुणक Coefficient of Correlation
सह सम्बन्ध Coordination
सहायक यंत्र सामग्री Apparatus
सापेक्ष Relative
सामान्य विधियाँ General methods
सारांश Substance
साहित्य Literature
साहित्यरसास्वादन Literary Appreciation
साहित्य सौन्दर्यानुभूति Literary Appreciation
साहित्यिक सुरुचि Literary Taste
सुखद आश्चर्य Pleasant surprise

सुचारुता Efficiency
सुडौलता Proportionateness
सुव्यवस्थित विधि Organised method
सूझ पूर्ण विधि Intuitive method
सूक्ष्म क्रम बद्धता Fine Gradation
सूत्र Hints
सूत्रीकरण Generalization
सोपान Steps
संकलन Compilation
संतुलन पूर्ण Balanced
संदिग्धता Ambiguity
संनिरीक्षण Supervision
संयोग जन्य Accidental
संयोग विधि Incidental Method
संविधान Constitution
संवेगात्मक संतुलन Emotional Balance
संशोधन Correction
संश्लेषण विधि Synthetic Method
संस्कार Dispositions
संक्षिप्तीकरण Summary
साँचे भरने की विधि Tracing Method
सांस्कृतिक Cultural
स्थिरता के बिन्दु Points of Fixation
स्थूल विधि Concrete Method
स्पष्टता-पूर्वक Clearly
स्पष्टीकरण Clarification
सृजनात्मकता Creativity
स्रोत Source, Fountain
स्वप्नपठन Dream Reading
स्वयंचालित Automatic
स्वरित Voiced
स्वाभाविकतापूर्वक Naturally
स्वाभाविक विधि Natural Method

ह

हस्तलिपि Manuscript
हस्त-लेख Handwriting
हीनता ग्रन्थि Inferiority Complex
ह्रस्व Short
क्षेत्राधिकार Jurisdiction
त्रुटिमुक्त Correct, faultless
ज्ञानोपार्जन Achievement

पारिभाषिक शब्दावली

(ब) अँग्रेज़ी-हिन्दी

Absolute निरपेक्ष
Abstract अमूर्त, सूक्ष्म
Accidental संयोग जन्य
Accoustics ध्वनि गुञ्जन
Achievement ज्ञानोपार्जन
Acquisition उपार्जन
Active aspect सक्रिय पक्ष
Administrative शासनात्मक
Adult वयस्क, प्रौढ़
Advertisement विज्ञापन
Advisory Committees परामर्श-दात्री समितियाँ
Alphabet वर्णमाला
Alphabet method वर्णमाला विधि, अक्षर विधि
Ambiguity सदिग्धता
Analytical method विश्लेषण विधि
Anticlassical पुरातन विरोधी
Antigrammatical व्याकरण विरोधी
Antinational राष्ट्रद्रोही, अराष्ट्रीय
Antonym विलोम
Apparatus सहायक यंत्र सामग्री
Application प्रयोग
Artificial कृत्रिम
Artificiality कृत्रिमता
Arts कला-वर्ग
Aspects पक्षों
Association प्रत्यय सम्बन्ध
Attitude मनोवृत्ति
Audibility श्रवणगोचरता
Auditory श्रवणमूलक
Auditory images श्रवणमूलक मनो-प्रतिमा
Automatic स्वयंचालित

B

Balanced संतुलित, संतुलन-पूर्ण
Biology जीवन विज्ञान
Boldly निर्भयता पूर्वक
Books पुस्तकें

C

Capital letter बड़ा अक्षर
Carelessnese लापरवही

Catches भेदनीति के तत्व
Childish बचकानी
Chorus reading समवेत पठन
Circular चक्रादेश
Clarification स्पष्टीकरण
Clause वाक्यांश
Clearly स्पस्टतापूर्वक
Coefficient of correlation सहचारिता गुणक
Collection चयन, सँग्रह
Commerce वाणिज्य
Commission आयोग
Comparison तुलना
Compilation संकलन
Conposition निबन्ध
Comprehensiveness व्यापकता
Compromise समाहार
Compulsory अनिवार्य
Concept प्रत्यय
Concrete समूर्त्त, स्थूल
Concrete method स्थूल विधि
Confusion विचार विभ्रम
Conscious सचेतन
Constitution संविधान
Content word वाचक शब्द
Context संदर्भ
Continuous धारा-प्रवाह
Contrast विरोध, अन्तर्विरोध
Conversational method कथोपकथन विधि
Coordination सह-सम्बन्ध
Correct त्रुटि मुक्त
Correction संशोधन
Correct method शुद्ध विधि
Correlation सहचारिता अन्तर्संम्बन्ध
Creativity रचनाशक्ति, सृजनात्मकता
Cultural सांस्कृतिक

D

Debate वाद-विवाद
Definition परिभाषा
Democracy जनतन्त्रवाद
Demonstration कार्य-प्रदर्शन
Derivation व्युत्पत्ति
Descriptive वर्णनात्मक
Destructive ध्वंसात्मक
Devices युक्तियाँ
Dialogue कथोपकयन
Dictation श्रुति लेख
Dictionary habit शब्दकोष आदत
Difficulty क्लिष्टता

Disciplinary अनुशासनात्मक
Disposition संस्कार
Dream reading स्वप्न पठन
Dynamic गतिशील

E

Economical मितव्ययशील, मितव्ययपूर्ण
Economy मितव्ययता
Educational System शिक्षा व्यवस्था
Effectively प्रभाव-पूर्वक
Efficacious उपादेय
Efficiency सुचारुता
Emotional balance संवेगात्मक संतुलन
Emphasis जोर, बल
Empirical अनुभवपरक
Engineering इञ्जीनियरी
Enmity वैमनस्य
Equivalent समकक्ष, समतुल्य
Equivalent Achievement Age विद्यावय समतुल्य
Essay लेख
Exception अपवाद
Exchange विनिमय
Expert विशेषज्ञ
Expressiveness व्यञ्जकता
Extensive reading विस्तृत पठन
Eye Voice Span चक्षु-ध्वनि विस्तार

F

Face readiag मुखाकृति पठन
Faculties पृथक मानसिक शक्तियाँ
Fair work पक्का कार्य
Fine gradation सूक्ष्म क्रम-बद्धता
Fluently प्रवाह-पूर्वक
Followup work अनुसरण कार्य
Foreign language विदेशी भाषा
Formal trainning आकारिक दीक्षा
Form words पूरक शब्द
Freehand imitation मुक्तहस्त अनुकरण
Functional प्रायोगिक
Fundamental आधारभूत

G

Gender लिङ्ग
General सामान्य
Generalization सूत्रीकरण
General method सामान्य विधियाँ

Gestait रूपरेखाकृति
Go slow policy धीरे चलो नीति
Government सरकारी
Grammar व्याकरण
Graphic symbol लिखित प्रतीक
Guidance पथ प्रदर्शन

H

Habits आदतें
Handwriting हस्तलेख
Headings शीर्षक
Hints सूत्र
Humanistic मानवतावादी
Humorous विनोदपूर्ण

I

Idioms मुहावरे
Imaginative कल्पनात्मक
Immeasurable अपरिमेय
Impressions अनुभूतियाँ
Inattention ध्यान हीनता
Incidental method संयोग विधि
Incompitable असंगत
Inconsistency असंगति
Inconsistent असंगत
Indianism भारतीयपन, भारतीयतावाद
Individual differences व्यक्तिगत विभिन्नता
Inductive method आगमन विधि
Inferiority comlex हीनता-ग्रन्थि
Initiative निजी चेष्टा
Inner speech आन्तरिक वर्णन
Insight अन्तर्दृष्टि
Insignificant नगण्य
Intellectual puzzles बौद्धिक पहेलियाँ
Intensive reading गहन पठन
Intercorrelation अन्तर्सम्बन्ध
Interest रोचकता, रुचि
Interpretation व्याख्या
Intransitive अकर्मक
Introduction भूमिका
Intuition ऊहा, सूझ
Intuitive method सूझपूर्ण विधि
Irrational विवेकशून्य, विवेक-हीन, अविवेकशील
Irrelevant अनर्गल

J

Jurisdiction क्षेत्राधिकार
Justified न्यायसंगत, युक्तिसंगत

K

Kinds of reading पठन के प्रकार

L

Law कानून, नियम
Lawlesness नियम हीनता
Learning by doing करके सीखना
Legibility पठनीयता
Letters अक्षर
Library reading पुस्तकालय पठन
Literature साहित्य, वाङ्मय
Literay appreciation साहित्य सौन्दर्यानुभूति, साहित्य रसास्वादन
Literay taste साहित्यिक सुरुचि
Littlemen's lectures लघुजन व्याख्यान
Logical तर्कपरक
Logically तार्किकता पूर्वक
Long दीर्घ
Look and say method देखो और कहो विधि
Loud reading सस्वर पठन

M

Manuscript हस्तलिपि
(to) master अधिकृत करना
Mature परिपक्व
Maxims सर्वसामान्य सूत्र
Menaing symbols अर्थ प्रतीक
Measurement माप-दण्ड
Mechanism यंत्र विधि
Medium माध्यम
Medicine डाक्टरी
Memorizing method कण्ठस्थीकरण विधि
Mental deficiency बुद्धिहीनता
Mental discipline मानसिक अनुशासन
Mental tension मानसिक तनाव
Method विधि
Mistakes अशुद्धियाँ
Model reading आदर्श पठन
Mothertongue मातृ-भाषा
Motivation प्रेरणा
Motor गति मूलक
Motordisbalance गतिसंबन्धी असंतुलन
Mutual Correction परस्पर संशोधन

N

Narrative कथात्मक
National language राष्ट्र-भाषा

Naturally स्वाभाविकता-पूर्वक
Natural Method स्वाभाविक विधि
Negative निषेधात्मक
Neglected उपेक्षित
New method नवीन विधि, नूतन विधि
New Objective tests नवीन बहिरंग परीक्षाएँ
Nongovernment गैर सरकारी
Notorious कुख्यात

O

Objectivity वस्तुपरता बहिरंगता
Object presentation पदार्थ साक्षात
Occidentalist पाश्चात्य वादी
Opportunist अवसर वादी
Option विकल्प
Optional वैकल्पिक
Oral Composition मौखिक निबन्ध
Oral method मौखिक विधि
Oral Work मौखिक कार्य
Organised Method सुव्यवस्थित विधि
Orientalist प्राच्यवादी
Orientation उन्मुखीकरण
Original मौलिक

P

Paragraph वाक्य-व्यूह, अनुच्छेद
Parallel समरूप, समानान्तर
Paraphrase शब्दान्तरीकरण
Passive निष्क्रिय
Passive aspect निष्क्रिय पक्ष
Past भूत
Path of least resistence न्यूनतम अवरोध पथ
Pedantic पण्डिताऊ
Percentile Rank प्रतिशत पद
Perception प्रत्यक्षीकरण
Persistently तत्परतापूर्वक
Philologist भाषा विज्ञान विशेषज्ञ
Philology भाषा विज्ञान
Phonetic ध्वन्यात्मक
Phonetics ध्वनिशास्त्र
Phonetic script ध्वन्यात्मक लिपि, ध्वनिशास्त्र लिपि
Phonetic Symbol ध्वनि प्रतीक, ध्वनि चिन्हों
Physiology शरीर-क्रिया विज्ञान
Picture reading चित्र-पठन
Plasticity लचीलापन
Playspirit खेल भाव
Pleasant surprise सुखद आश्चर्य

Poetry कविता
Poetry reading कविता पठन
Points of fixation स्थिरिता के विन्दु
Popular लोक-प्रिय
Positive विधेयात्मक
Post पद
Practicability व्यावहारिकता
Praise गुणानुवाद
Prefix उपसर्ग
Preliminary set up आरम्भिक वस्तु नियोजन
Preparatory work पूर्व तैयारी कार्य
Prepared reading पूर्वाभ्यास पठन
Prescribed निर्धारित
Presentation प्रस्तुतीकरण
Print Script मुद्रण लिपि
Processes प्रक्रियाएँ
Pronunciation उच्चारण
Proportionateness सुडौलता
Prose गद्य
Prose order गद्यान्वय
Psychology मनोविज्ञान
Psychophysical system मनोशारीरिक संस्थान

R

Rapid Reading द्रुत पठन
Rational विवेक परक
Rational method विवेक पूर्ण विधि
Reactionary प्रति-क्रिया वादी
Reading पठन
Recitation कविता पाठ
Recognition मान्यता
Records आलेख
Reflective विचारात्मक
Reformed method परिष्कृत विधि
Regression प्रतिगमन
Relative सापेक्ष
Reliabiltiy विश्वसनीयता
Reorganisation पुनर्व्यवस्था
Replace अपदस्थ करना
Research work अन्वेषण-कार्य
Response प्रत्युत्तर
Retention धारणा शक्ति
Retroactive inhibition प्रतिवर्त्तनात्मक विरोध
Reward पारितोषिक
Richness समृद्धि
Rise and Fall आरोह अवरोह
Rivalry प्रतिस्पर्धा
Rivals प्रतिद्वन्द्वी

Root धातु
Rough work कच्चा कार्य
Routine क्रमपूर्ति

S

Saccadic उच्छल गति
Science विज्ञान
Script symbols लिपि चिन्ह
Secondary माध्यमिक
Self correcting आत्म संशोधिनी
Self correction आत्म-संशोधन
Semantic symbols भावचिन्ह
Sensible method समझपूर्ण विधि
Sentence वाक्य
Sentence method वाक्य विधि
Series शृँखला
Series of sentences वाक्य शृँखला
Shallow study छिछला अध्ययन
Shirker काम-चोर
Short ह्रस्व
Short memory span अल्प स्मृति विस्तार
Silent reading मौन पठन
Similarity समानता
Skill कौशल
Slogan नारे
Small letter छोटा अक्षर
Sound ध्वनि
Sound sequence ध्वनि विन्यास
Source स्त्रोत
Spceial method विशिष्ट विधियाँ
Specific practice विशिष्ठ अभ्यास
Speech भाषण, वाणी, बोली
Speech organs ध्वनिउत्पादक अवयव
Speediness गतिपूर्णता
Spelling शब्दाक्षरन्यास
Stage fright मञ्च भय
Standard मानस्तर
Steps सोपान, पद
Story meteod कथा विधि
Strong objection कड़ी आपत्ति
Structure रचना संगठन
Structure method संगठन विधि
Substance सारांश

Substitution method अँग परिवर्तन विधि
Substitution tables अंग परिवर्तन तालिकाएँ
Suffix प्रत्यय
Summary संक्षिप्तीकरण
Supervision संनिरीक्षण
Supplementary reader पूरक पुस्तक
Syllable शब्द खण्ड, शब्दाँश
Symbol प्रतीक चिन्ह
Symbol recognition प्रतीक परिचय
Synonym पर्याय
Synthetic method संश्लेषण विधि
Systematic method व्यवस्थित विधि

T

Teacher शिक्षक, अध्यापक
Teaching materials शिक्षण सामग्री
Technical वैशेषिक, पारिभाषिक
Tense काल
Textbook पाठ्य पुस्तक
Theoretical classifcation शास्त्रीय वर्गीकरण
Three R's त्रकार त्रय
Throughout आद्योपान्त
Time table समय विभाग चक्र
Tongue twisters जिह्वा चालक
Tracing method साँचे भरने की विधि
Transcription लिपि परिवर्तन
Transitive सकर्मक
Translated अनुवादित
Translation अनुवाद
Translation method अनुवाद विधि
Translationism अनुवादीपन
Typical प्राकारिक

U

Uniformity एकरूपता
University विश्वविद्यालय
Utilatarion उपयोगिता वादी

V

Validity ध्येयनिष्ठता
Variety अनेकरूपता
Verbal ability भाषा योग्यता
Vocabulary शब्दज्ञान
Vocal गिरामूलक
Vocalize ध्वनित करना
Voiced स्वरित

W

Warning चेतावनी

Wastage अपव्यय

Writing लेखन

Written Exercises लिखित अभ्यास

Word consciousness शब्द चेतना

Word meaning शब्द-व्याख्या शब्दार्थ

Word method शब्द-विधि

अनुक्रमणिका

अशुद्धियों की सूची

पृष्ठ १६ ऊपर से १४ वीं पंक्ति में
सफलता से के स्थान पर सफलता के पढ़ें

पृष्ठ १७ ऊपर से चौथी पंक्ति में
नाव से के स्स्थान पर नाव के पढ़ें ।

पृष्ठ १७ नीचे से चौथी पंक्ति में "संचालित" के स्थान पर "सुसंचालित" पढ़ें ।

पृष्ठ १७ नीचे से छठवीं पंक्ति के अन्त में विराम समझें ।

पृष्ठ १८ पर लिखित ग्रन्थ तथा प्रश्न अध्याय ३ से संबंधित हैं और पृष्ठ २३ पर लिखित ग्रन्थ तथा प्रश्न अध्याय २ से ।

पृष्ठ ३६ पर बारहवीं पक्ति में (पूर्ण विराम) के स्थान पर 'तो' पढ़ें ।

पृष्ठ ४१ पर प्रथम पंक्ति में 'Ratinal' के स्थान पर 'Rational' पढ़ें ।

पृष्ठ ४१ पर छठवीं पंक्ति में "श्लेषण" के स्थान पर 'संश्लेषण' पढ़ें ।

पृष्ठ ४१ पर नीचे से छठवीं पंक्ति में 'ही' अनावश्यक है ।

पृष्ठ ४२ पर पाँचवीं पंक्ति में 'को' के स्थान पर 'का' पढ़ें और उसके बाद पूर्ण विराम है ।

पृष्ठ ४४ पर नीचे से आठवीं पंक्ति में 'वृत्ति' के स्थान पर 'की' पढ़ें ।

पृष्ठ ५३ पर तीसरी पंक्ति में "Five" के स्थान पर fine पढ़ें ।

पृष्ठ ७२ पर १३ वीं पंक्ति में 'निरासा' के स्थान पर 'निराशा' पढ़ें ।

पृष्ठ ७७ पर नीचे से पाँचवीं पंक्ति में 'पीड़ी' के स्थान पर 'पीढ़ी' पढ़ें ।

पृष्ठ ८३ पर अंतिम पंक्ति में 'ध्वनि के विस्तार के स्थान पर 'चक्षु-ध्वनि-विस्तार पढ़ें ।

पृष्ठ १३५ पर सातवीं पंक्ति में 'यघातथ्य' के स्थान पर 'यथातथ्य' पढ़ें ।

पृष्ठ १३६ पर सातवीं पंक्ति में "विस्तृत विश्लेषण करते हुए" अनावश्यक है ।

पृष्ठ १३६ पर नीचे से तीसरी पंक्ति में 'यह' अनावश्यक है ।

पृष्ठ १४८ पर आठवीं पंक्ति में 'सीखना' के स्थान पर 'सिखाना पढ़ें ।

पृष्ठ १५० पर नीचे से दूसरी पंक्ति में 'गद्यान्वय' पढ़ें ।

पृष्ठ १६६ पर प्रथम पंक्ति में (Did, Went) के स्थान पर (Did went) पढ़ें ।

पृष्ठ १६८ पर तीसरी पंक्ति में "भत्नी" के स्थान पर "भर्त्सना" पढ़ें ।

पृष्ठ १७४ पर दसवी पंक्ति में -'लिखिल" के स्थान पर "लिखित" पढ़ें।

पृष्ठ १७५ पर अन्तिम पंक्ति में "विधि" के स्थान पर "एवं विधि" पढ़ें।

पृष्ठ १७८ पर चौदहवीं पंक्ति में 'Usaje' के स्थान पर 'Usage' पढ़ें ।

पृष्ठ २०० पर प्रथम पंक्ति के आरम्भ में 'ष' की जगह विशेष पढ़े ।

पृष्ठ २१४ में आदेश के अन्तर्गत 'रेखाङ्कित' के स्थान पर टेढ़े लिखे' पढ़ें ।